"'नागार्जुन के काव्य में शिल्प विधान'"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी-एच.डी. (हिन्दी)
उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
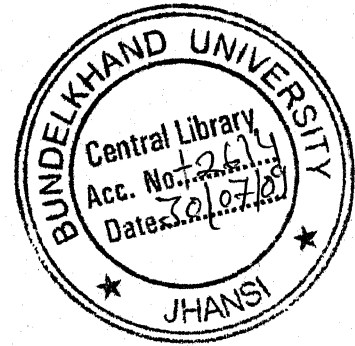
शोध निर्देशिका :
डॉ० (श्रीमती) मनोरमा अग्रवाल
रीडर, हिन्दी विभाग

शोधार्थिनी :
बबिता वर्मा
एम०ए०

अनुसंधान केन्द्र -
परास्नातक हिन्दी-विभाग
पं0 जवाहरलाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बाँदा (उ0प्र0)
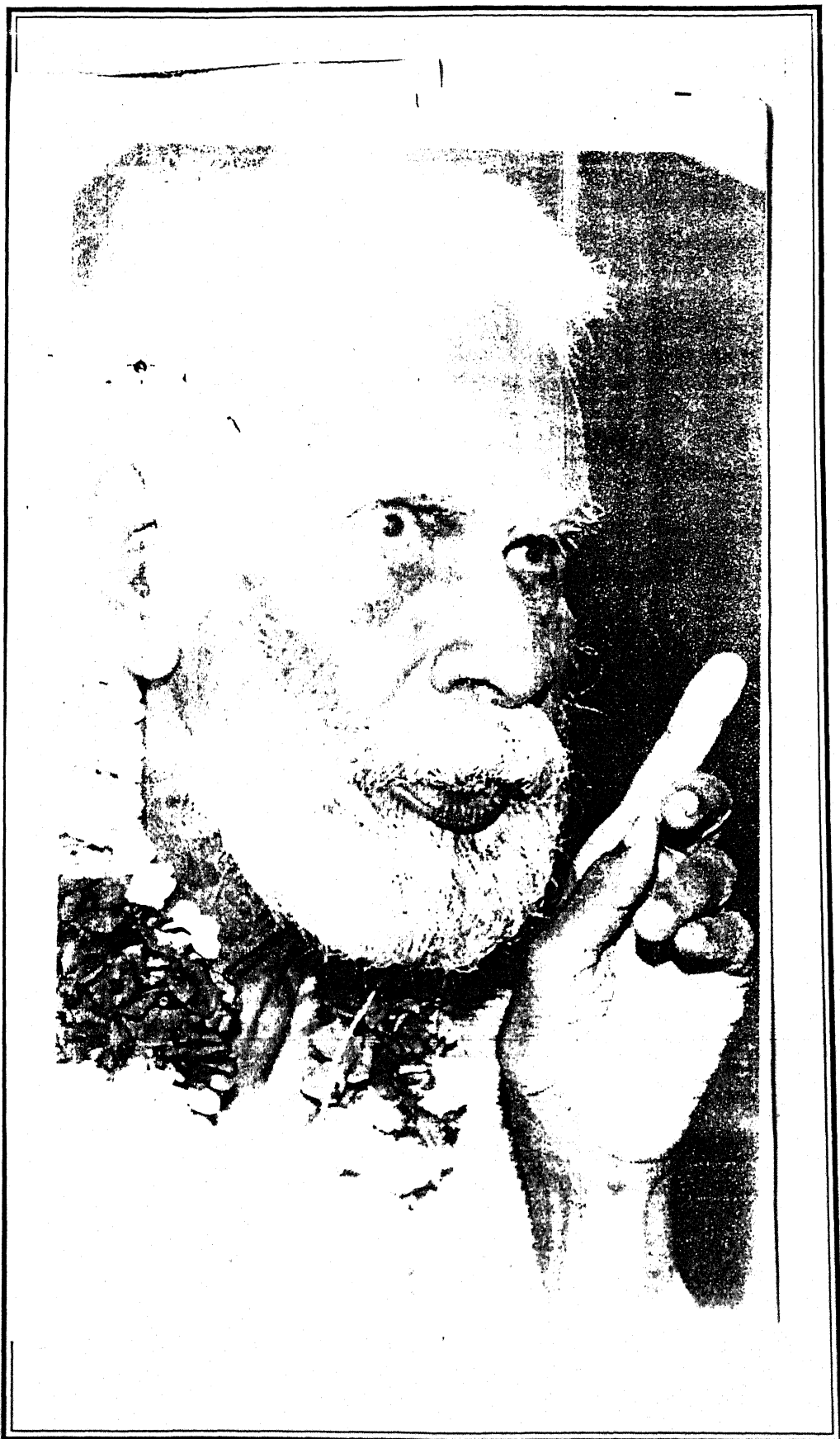
2007

चरण छूऊँ आपके...

देवि, अब तो कहीं बन्धन पाप के
लगइए, मैं चरण छूऊँ आपके
सौ नमूने बने इनकी छाप के
लगइए, मैं चरण छूऊँ आपके
खो गए लय बोल के, आलाप के
लगइए, अब चरण छूऊँ आपके
कहीं आहें, गमें बादल भाप के
दीजिए अब चरण छूऊँ आपके
थक गए हैं हाथ गोबर थाप के
लगइए, अब चरण छूऊँ आपके

'74.
पटना.

डॉ० मनोरमा अग्रवाल
एम० ए०, डी० फिल०
रीडर, हिन्दी विभाग,
पं० जवाहर लाल नेहरू पी० जी० कालेज, बाँदा

अदिति
बी-6, आवास विकास कालोनी,
सिविल लाइन्स, बाँदा (उ० प्र०)
दूरभाष : 05192-221557
दिनांक 11.09.07

प्रमाण पत्र

मै प्रमाणित करती हूं कि सुश्री बबिता वर्मा पुत्री श्री नन्हे लाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के अन्तर्गत हिन्दी विषय डॉक्टर आफ फिलासफी की उपाधि हेतु *'नागार्जुन के काव्य में शिल्प विधान'* शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय की नियमावली के अन्तर्गत निर्धारित अवधि में पूरा कर लिया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अत्यंत श्रमपूर्वक नवीन मान्यताओं से युक्त एवं मौलिक चिंतन के साथ प्रस्तुत किया गया है ।
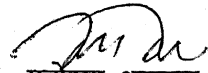
शोध प्रबन्ध मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय में प्रेषित करने की संस्तुति करती हूँ।

मै शोधार्थिनी के उज्जवल भविष्य की आंकाक्षी हूँ।

दिनांक
11.9.07

शोध निर्देशिका
डॉ० मनोरमा अग्रवाल

प्राक्कथन

नागार्जुन की कविता में एक गहन चिन्तन और सुदृढ़ वैचारिकता के दर्शन होते हैं । सौन्दर्य जगत की सभी वस्तुओं में रहता है । इसकी व्यापकता अनादि -अनन्त सम्पत्ति के रूप में विश्व में अपनी महत्ता का उद्घोष करती हैं। सम्पूर्ण जगत ही नाम रूपात्मक है। रूप के साथ सौन्दर्य की सत्ता जड़ जगत से लेकर सब कही विद्यमान है।

बीसवीं शताब्दी के आधुनिक युग का समय और समाज भयावह परिस्थितियों , विद्रूपताओं , मानव मूल्यों के पतन एवं चेतना के तनाव का सिक्त बवंडर और विस्फोट है। कविता , मानवीय संवेदना की प्रक्रिया है । वह न केवल मर्म का सहलाती है बल्कि मर्म को कुदेरती भी है । संवेदना हमारे मनोवेगों को उत्तेजित करने का साधन है। किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि कविता में संवेदना कही भावुकता का पर्याय बनकर ही न रह जाय। इसलिये उसके साथ ज्ञान और विवेक को जोड़ना जरूरी है। अच्छी कविता में हृदय और मस्तिष्क का सही संतुलन होता है । संवेदन में ही वह शक्ति निहित है, जो पाठक-श्रोता के संस्कारों को भी संस्कारित कर सकती है। नागार्जुन की कविता में ऐसे क्रियाशील ऐन्द्रिक बिम्बों का संचयन देखने को मिलता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की ध्वनि -झंकार के स्वर वहां बराबर गूँजते हैं। उनकी तीक्ष्ण अनुभूति ही कविता को संवदेनामय बनाती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में नागार्जुन की युगीन परिस्थितियाँ -राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक का उद्घाटन किया गया है, क्योंकि इन समसमायिक परिस्थितियों का नागार्जुन के व्यक्तित्व निर्माण में महत्ववूर्ण योगदान है। दूसरे अध्याय में नागार्जुन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला

गया है। तीसरा अध्याय नागार्जुन के शब्द विधान से सम्बन्धित है। चौथा अध्याय नागार्जुन बिम्ब विधान पर केन्द्रित है। पांचवा अध्याय नागार्जुन के प्रतीक विधान से सम्बन्धित है , छठवाँ अध्याय नागार्जुन के अलंकार तथा छन्द विधान (गीत एवं शैली) से सम्बन्धित है। सप्तम अध्याय में शिल्पगत उपलब्धियां एवं देन का आकलन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता पर सर्वप्रथम मै उक्त शोध प्रबन्ध की निर्देशिका डॉ० मनोरमा अग्रवाल जी (रीडर, हिन्दी विभाग, पं० जवाहर लाल नेहरू, पी०जी० कालेज, बांदा) के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ जिनके विद्वतापूर्ण निर्देशन में उन्ही की प्रेरणा एवं उन्हीं के निरन्तर प्रोत्साहन के फलस्वरूप उक्त कार्य को पूर्ण कर सकी। आपकी आत्मीयता एवं स्नेह ने ही मेरे कठिन पंथ को सरल बनाया है। आशा के अनुरूप डॉ० अग्रवाल जी ने इस कार्य में मेरी भरपूर मदद की , पग-पग पर मेरा मार्ग दर्शन किया , जरूरी पुस्तकें उपलब्ध कराई, मेरे द्वारा तैयार की गयी पाण्डुलिपि का अवलोकन किया तथा उसमें यथा संभव संशोधन किये । वस्तुतः यह शोध प्रबन्ध उन्हीं के आर्शीवाद, प्रोत्साहन और अनुग्रह का प्रतिफल है। अतः इसकी पूर्णता का सम्पूर्ण श्रेय उन्हीं को जाता है। मै अपनी शोध निर्देशिका डॉ० अग्रवाल जी के इस सहयोग और मार्गदर्शन के लिये हृदय से आभारी हूँ।

कृतज्ञता व्यक्त करने के इस पावन अवसर पर डॉ० राम गोपाल गुप्त जी के प्रति कृतज्ञता अर्पित करती हूँ जिन्होनें समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर सदैव मेरे मार्ग को ज्योर्तिमय किया। इस क्रम में डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' , डॉ० ज्ञान प्रकाश तिवारी के प्रति भी मै अत्यन्त आभारी हूँ जिनके सस्नेहिल वातावरण के बीच बैठकर समय-समय पर प्रेरणा प्रोत्साहन ,मार्गदर्शन प्राप्त कर लाभान्वित हुयी।

इस मंगल अवसर पर अपने पिता श्री नन्हे लाल वर्मा जी एवं माता जी श्रीमती

सावित्री वर्मा जी की असीम कृपा का स्मरण भी आवश्यक है जिन्होंने मेरी रूचि को केन्द्रित कर शोध कार्य हेतु अपनी अमूल्य सहमति प्रदान की एवं अध्ययन हेतु मुझे पूरा समय दिया। इस क्रम में मै अपने अनुज आशीष एवं अनुजा अंकिता को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होने सदैव मेरे मनोबल को बढ़ाया है। इस पुनीत अवसर पर मै अपने जीजा जी श्री बृजेश नामदेव, एवं बहन श्रीमती ममता नामदेव, श्री अजय सक्सेना एवं श्रीमती सरिता सक्सेना , श्री कृष्ण कुमार नामदेव एवं श्रीमती मोहिनी नामदेव जी को भी आदर के साथ स्मरण करती हूँ , जिन्होंने इस कार्य को पूरा करने में न केवल मेरा मनोबल बढ़ाया, अपितु अध्ययन के लिये आवश्यक सुविधायें जुटाने में भी अपेक्षित सहयोग किया। अपने चाचा जी श्री केशव तिवारी को भी आदर के साथ स्मरण करना चाहती हूँ जिन्होने नागार्जुन से सम्बन्धित साहित्य उपलब्ध कराकर मेरे उक्त कार्य को गति प्रदान की । इसी क्रम में श्री रविशंकर विश्वकर्मा (नवोदय विद्यालय लाइब्रेरियन) के प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। जिनसे समय समय पर अमूल्य सुझाव एवं सहयोग पाती रही हूँ।

इस अवसर पर मै हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद , नागरी प्रचारिणी बाँदा, जिला पुस्तकालय बाँदा, पं० जवाहर लाल नेहरू पी०जी० कालेज बांदा एवं भारत भवन लाइब्रेरी भोपाल, हरिसिंह गौर विश्व विद्यालय सागर(म०प्र०) एवं राजकमल प्रकाशन दिल्ली के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ,जिन्होने नागार्जुन साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकें समय से उपलब्ध कराने में यथा सम्भव सहयोग प्रदान किया।

अपने समस्त सहपाठियों तथा इष्टमित्रों में सर्वप्रथम अनिल सिंह के ममत्वपूर्ण सहयोग एवं अपार स्नेह का स्मरण करती हूँ जिन्होने अपने शोध कार्य से बहुमूल्य समय निकालते हुये नागार्जुन से सम्बन्धित साहित्य उपलब्ध कराकर मेरे उक्त कार्य को गति

प्रदान की।

इस क्रम में अपने समस्त इष्ट मित्रों - पूजा पुष्पकार , नूतन तिवारी, निर्मला यादव, सुनील दीक्षित, दीपक विश्वकर्मा आदि को धन्यवाद देना चाहूंगी जिनसे समय समय पर सहयोग एवं स्नेह पाती रही हूँ।

अन्त मे मैं इस शोध प्रबन्ध के आकर्षक टंकण के लिये श्री सौरभ खरे जी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होने इसे इतना सुव्यवस्थित आकार प्रदान करने में सहायता प्रदान की ।

दिनांक 11.9.07

स्थान- बाँदा (उ०प्र०)

शोधार्थिनी

बबिता वर्मा

(बबिता वर्मा)

एम०ए०

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

नागार्जुन की युगीन परिस्थितियाँ

नागार्जुन की युगीन परिस्थितियाँ :-

रचनाकार एक संवेदनशील, द्रष्टा एवं महान विचारक भी होता है। वह अपने देश के अनेद परिदृष्यों, सामाजिक आंदोलनों, राजनीतिक उथल-पुथल तथा धार्मिक विद्रूपताओं का जहाँ चश्मदीद गवाह होता है, वहाँ आधुनिक युग के सुलभ संचार-माध्यमों से वैश्विक घटनाओं का श्रोता, पाठक तथा प्रस्तोता भी होता है। अगर वह 'जनकवि' की उपाधि से विभूषित होना चाहता है, तो उसे सम्पूर्ण विश्व की दलित, शोषित, उत्पीड़ित तथा क्रान्तिरत जनता की पीड़ा को आत्मसात कर सम्प्रेषण के द्वार पर लाना होगा। रचनाकार अपने युग की राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं समस्याओं से अनुप्राणित भी होता है और उन्हें वाणी भी देता है। युगीन परिवेश रचनाकार के व्यक्तित्व का विधायक होता है। नागार्जुन की कृतियों की पड़ताल करने पर पता चलता है कि उनमें लगभग सात दशकों का पुराण छिपा हुआ है।

युगीन परिवेश से तात्पर्य तत्कालीन वातावरण अर्थात् उन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों से है, जो कवि के जन्म के समय बाल्यकाल, किशोरकाल, यौवनकाल और यौवनोत्तर काल में विद्यमान थीं। कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से अप्रभावित रहकर अपने साहित्यकार के उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में समर्थ नहीं हो सकता। साहित्यकार वातावरण से अस्पृश्य रहकर सृजन नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी भाषा का साहित्य अपने काल के समाज का दर्पण होता है। अतः युगीन परिवेश को अलग रखकर किसी भी साहित्यकार के साहित्य का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सकता।

साहित्य हर युग का सर्वाधिक सशक्त एवं महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति का

साधन होता है। साहित्य का अपने समाज के भूत और वर्तमान से बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रेरित और प्रभावित होता है। डा० सरोज प्रसाद के अनुसार - "साहित्य अपने व्यापक अर्थ में समाज के मूक इतिहास का मुखर सहोदर भाई है।"[१] साहित्य में प्रधानतः साहित्यकार की युगीन परिस्थितियों का ही चित्रण होता है। प्रेमचन्द के शब्दों में - "साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिये उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विफलता से वह रो उठता है, पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"[२]

अतीत साहित्यकार को अनुभव प्रदान करता है, भविष्य उसमें आशा का संचार कर उसे प्रगतिशील बना देता है, परन्तु युग साहित्यकार का निर्माण करता है। साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्यकार जिस युग में जीवन-यापन करता है, उसकी व्यक्ति और समाज विषयक समस्याओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, साहित्यकार उनसे आँख नहीं मूँद सकता। अतः उसके साहित्य में इन समस्याओं का प्रतिबिम्ब हो उठना स्वभाविक है।

कोई भी कवि या कलाकार युग-निरपेक्ष नहीं रह सकता। अपने युग की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियों से पोषण सामाग्री ग्रहण करके कवि का व्यक्तित्व पुष्ट होता है, और यदि कवि अपनी अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार है, तो उसकी रचनाओं में उसके सबल व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है। इस दृष्टि से नागार्जुन की कविता का मर्म समझने के लिए उनकी युगीन

---

१. डॉ० सरोज प्रसाद : प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिपादन, पृ०सं० ४

२. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ० ६

परिस्थितियों से अवगत होना आवश्यक है।

१. राजनीतिक परिस्थितियाँ :-

लेनिन के नेतृत्व में २४ अक्टूबर १६१७ को रूस की रक्तरंजित क्रान्ति की सफलता के कारण विश्व-रंगमंच का दृश्य ही बदल गया। संसार के नौजवानों को एक नयी प्रेरणा मिली। ब्रिटिश सरकार भी रूसी क्रान्ति की सफलता के प्रभाव से अछूती न रही।

भारत के राष्ट्रवादियों तथा जनता को शान्त करने के लिये माण्टेक्यू चेम्सफोर्ड ने १६१६ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा राजनीतिक सुधारों का एक कानून पारित किरवाया। इस कानून द्वारा द्वितंत्र शासन प्रणाली प्रारम्भ हुई। गृह सरकार और केन्द्रीय शासन के कुछ विभाग प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिए गए, परन्तु राजस्व, कानून और व्यवस्था तथा न्याय आदि विभागों पर ब्रिटिश सरकार का कब्जा बरकरार रहा। राजस्व के लिये भारतीय मंत्रियों को ब्रिटिश सरकार पर ही आश्रित रहना पड़ा। केन्द्रीय सरकार का वर्चस्व बना रहा। प्रान्तीय स्वशासन की प्रतिष्ठा नहीं हो पायी। इस कानून के कारण भारतीय जनता की आकांक्षाओं पर पानी फिर गया। आहत होकर भारतीय कांग्रेस के नेताओं ने अपने आन्दोलन को व्यापक रूप दे दिया।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में १६१६ का वर्ष विशेष महत्वपूर्ण है। इसी वर्ष भारतीय राजनीति में प्रवेश कर महात्मा गांधी ने स्वतंत्रा संग्राम को एक नयी दिशा दी। अंग्रेजी सत्ता के साथ सशस्त्र संघर्ष का मार्ग न अपनाकर उन्होंने अहिंसा और सत्याग्रह का सहारा लिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्र रूप को देखकर ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र विकराल रूप धारण करने लगा। आन्दोलनों को कुचलने के लिये ब्रिटिश सरकार ने १६१६ में 'रौलट एक्ट' पारित किया। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को

राजद्रोह के महाभियोग में दंडित किया जा सकता है। इस कानून को 'काले कानून' की संज्ञा दी गई और इसका तीव्रतम विरोध हुआ। इसके विरोध में ८ अप्रैल, १९१९ को सारे देश में हड़ताल हुई और जगह-जगह पर सभाएँ आयोजित की गईं। भारतीय नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। नेताओं की गिरफ्तारी का विरोध करने के लिये जलियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा हुई। क्रूर अंग्रेज अधिकारी जनरल डायर ने बाग की चारों ओर से नाकेबन्दी करके असंख्य नारियों और पुरुषों को गोलियों से भुनवा दिया। क्रांतिवीर सरदार ऊधम सिंह ने नरपिशाच डायर को १९४० में इंग्लैण्ड जाकर गोली मार दी।

अमृतसर की अमानवीय क्रूर घटना से महात्मा गांधी का हृदय विदीर्ण हो उठा। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को पुनः सहयोग न देने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने यह घोषणा की कि "इस पैशाचिक सरकार को किसी रूप में सहयोग देना पाप है।" महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित होकर १९२० के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के विरोध में असहयोग आन्दोलन छेड़ने का निर्णय किया।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब ब्रिटिश सरकार ने अपने मित्र राष्ट्रों के साथ टुर्किश साम्राज्य को आपस में बाँट लिया और खलीफा के कार्यालय को समाप्त कर दिया तब मुसलमानों ने उसके विरोध में अली ब्रदर्स के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन शुरू किया। महात्मा गांधी ने इस आन्दोलन का व्यापक रूप से समर्थन किया। गांधी जी के नेतृत्व में जब असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ तब सारे देश की जनता ने उसका भव्य समर्थन किया। वकीलों ने न्यायालयों का तथा विद्यार्थियों ने विद्यालयों और महाविद्यालयों का परित्याग कर दिया। देश भर में राष्ट्रीय-शिक्षण संस्थाओं की नींव पड़ने लगी। लोगों ने सरकार द्वारा प्रदत्त पदवियों और उपाधियों को त्याग दिया। लोगों ने दिल खोलकर असहयोग आन्दोलन को प्रबल बनाने के लिए आर्थिक सहायता दी। १९२१ में जब राजकुमार वेल्स भारत आए तब बड़े पैमाने पर

उनके खिलाफ प्रदर्शन हुए।

जब असहयोग आंदोलन जोरों पर था, उसी समय गोरखपुर जनपद में स्थित "चौरीचौरा" पुलिस स्टेशन पर क्रुद्ध भीड़ ने २२ पुलिस सिपाहियों को मार डाला। इस दुर्घटना का समाचार मिलते ही महात्मा गांधी ने आन्दोलन को स्थगित कर दिया। सुभाषचन्द्र बोस, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, सी०आर० दास तथा दूसरे नेता आन्दोलन को रोकना नहीं चाहते थे, पर गांधी की दृढ़ता के सामने उन्हें मूक रह जाना पड़ा। १० मार्च को गांधीजी को गिरफ्तार करके ६ वर्ष का कारावास दे दिया गया।

यद्यपि इस देश-व्यापी आन्दोलनों को सारे देश का समर्थन प्राप्त था, पर गांधीजी के आग्रह पर जब सविनय अवज्ञा आन्दोलनों को स्थगित कर दिया गया तब सारे देश में निराशा की लहर व्याप्त हो गयी। सभी प्रसिद्ध नेता जेल की दीवारों के अन्दर बन्द थे। देश की जनता को उचित मार्ग दिखलाने वाला कोई प्रभावशाली व्यक्ति बाहर नहीं था। अतः ब्रिटिश सरकार की 'बाँटो और राज करो' वाली नीति के प्रसार को सुनहला अवसर प्राप्त हो गया। ब्रिटिश सरकार ने जिन्ना के माध्यम से साम्प्रदायिक दंगे करवाए, जिसमें हिन्दू और मुसलमानों का भीषण रक्तपात हुआ। हिन्दू, मुस्लिम एकता मिट्टी में मिल गई।

कांग्रेस नेताओं के बीच में दरारें पड़ गई। पं० मोतीलाल और देशबन्धु चितरंजनदास के द्वारा एक नयी राजनीतिक पार्टी की नींव डाली गयी जिसे स्वराज्य पार्टी के नाम से अभिहित किया गया। ५ फरवरी १९२४ को गांधीजी जेल से छूट गए। उन्होंने कांग्रेस की एकता को कायम रखने का अथक प्रयास किया, पर उनके प्रयास के बाद भी कांग्रेस में दो दल बन गए। १९२३ के चुनाव में स्वराज पार्टी के नेताओं ने ४२ सीटों पर कब्जा किया। एक बात जरूर है कि जिस समय सविनय अवज्ञा आन्दोलन अलसायी हुई मुद्रा में था, उस समय स्वराज्य पार्टी ने जनता के मन में

राजनीतिक चेतना को जीवित करने का प्रयास किया।

१६१६ के संवैधानिक सुधारों की योजना में संवैधानिक प्रावधान यह था कि दस वर्ष के बाद सुधारों की सफलता पर विचार करने के लिए एक नवीन आयोग की नियुक्ति की जाएगी, पर विधानमण्डल में स्वराज पार्टी की बार-बार माँग के कारण ब्रिटिश सरकार ने नवम्बर १६२७ में सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक आयोग भेजा। इस साइमन आयोग के सभी सदस्य अंग्रेज थे। एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। अतः सभी पार्टियों ने इसका बहिष्कार किया। सारा वायुमण्डल 'साइमन वापस जाओ' के नारों से निनादित हो उठा। जगह-जगह पर कमीशन के सदस्यों को काले झण्डे दिखाए गए। अंग्रेजों को पूरा विश्वास था कि हिन्दू और मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। इसलिए उस समय अंग्रेजों ने नेताओं से यह कहा कि आप लोग एक होकर अपनी माँगों को पेश करें। देश के नेताओं ने अंग्रेजों के चुनौती भरे प्रश्न को मान लिया।

अंग्रेजी सरकार की चुनौती को स्वीकार कर तत्कालीन कांग्रेसी महारथियों ने लखनऊ में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। मुसलमानों और हिन्दुओं द्वारा मिलकर पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में निर्मित समिति की रिपोर्ट को ब्रिटिश सरकार के सामने प्रस्तुत किया गया, पर सरकार ने 'नेहरू रिपोर्ट' को अस्वीकार कर दिया।

बिहार के चम्पारन जिले में नील की खेती करने वाले गोरे जमींदार किसानों और मजदूरों के साथ केवल अमानवीय व्यवहार नहीं करते थे, उनका शोषण भी करते थे। वहाँ किसान और मजदूर अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्षरत होना चाहते थे। उन्हें एक मार्ग दर्शक और नेतृत्व करने वाले दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति की आवश्यकता थी। गांधीजी किसानों के संघर्ष का मार्गदर्शन करने के लिये चम्पारन पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने अपनी सत्याग्रह शक्ति द्वारा एक तरफ तो किसानों और मजदूरों में

आत्मविश्वास और सम्मान की ज्योति जला दी तथा दूसरी तरफ नील की खेती करने वाले तथा नील बनाने के कारखाने को चलाने वाले अंग्रेजों को अत्याचार पर सोचने के लिए विवश कर दिया।

गांधीजी की नीति से मिल मजदूर भी अनभिज्ञ न रहे। १९२८ में बम्बई की सूती कपड़ा बनाने वाले कारखानों के मजदूर हड़ताल पर चले गये। सरदार बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में खेड़ा जिले में बारदोली के किसानों ने 'लगान बन्दी' अभियान छेड़ दिया। उन्होंने सिंहगर्जना करते हुए घोषणा की कि सरकार जब तक नये कर कानून वापस नहीं लेती, तब तक हम किसी प्रकार का कर नहीं देंगे। २ अगस्त, १९२९ में गांधीजी बारदोली गये। उनके हस्तक्षेप से कर-कानून में संशोधन कर दिया गया। 'सरदार' की उपाधि से बल्लभभाई पटेल को विभूषित किया गया।

असहयोग आन्दोलन सचमुच जन आन्दोलन बन गया। इसी समय क्रान्तिकारियों के सुगठित आक्रमणों से ब्रिटिश सरकार की नींद हराम हो गई। लॉर्ड इरविन ने भारतीय नेताओं को बुलाकर कह दिया कि सरकार स्वशासन का अधिकार नहीं दे सकती है। ३१ दिसम्बर, १९२९ को मध्यरात्रि के समय रावी के तट पर एक बैठक हुई। हजारों लोगों की भीड़ में पं० जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया और पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की। महात्मा गांधी ने २६ जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाने की घोषणा की। उस दिन करोड़ो लोगों ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा की। २६ जनवरी सन् १९५० को भारतीय संविधान जब लागू हुआ तभी से २६ जनवरी को गणतंत्र दिवस मनाया जाता है।

लाहौर के सम्पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव की घोषणा के बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया। गांधीजी ने नमक कानून भंग कराने का निश्चय किया। इसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए डांडी नामक स्थान को चुना गया। सरकार के सामने बहुत बड़ी चुनौती थी। १२ मार्च १९३० को गांधीजी की डाण्डी यात्रा

प्रारम्भ हुई। २४ दिन की यात्रा के बाद गांधीजी डाण्डी पहुँचे और अपने हाथों से नमक बनाकर 'नमक कानून' को तोड़ दिया। नमक कानून तोड़ने का कार्यक्रम गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद भी अनवरत चलता रहा। लोगों को पुनः जोश आ गया। सोलापुर में जनता के आक्रोश को नियंत्रित करने के लिए मार्शल ला लागू कर दिया गया।

विदेशी समानों का बहिष्कार और शराब दुकानों की पिकेटिंग का काम भी सत्याग्रहियों ने तीव्र कर दिया। बहुत बड़ी संख्या में नारियों ने भी इस सत्याग्रह में भाग लिया। सारे देश में प्रभात-फेरियाँ निकाल कर जनता को उद्बोधित किया गया। बारदोली में 'नोटैक्स' अभियान पुनः प्रारम्भ हुआ। सरकार ने देशवासियों की एकता को तोड़ने का असफल प्रयास किया। सन् १९३०-३३ गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा पेशावर के सैनिक विद्रोह से सरकार डर गई।

सरकार ने भारतीय शासन में सुधार लाने के लिये नयी योजनाओं के निर्माण पर विचार किया। गोलमेज सम्मेलन में राजनीतिक समझौते के लिये गांधी जी को आमंत्रित किया गया। गांधी जी ने सरकार से लगातार सम्पर्क बनाये रखा, पर कोई हल नहीं निकला। सरकार ने इस बीच हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़काने का प्रयास किया। १३ अगस्त, १९३१ को कांग्रेस ने यह फैसला किया कि गांधीजी गोलमेज-सम्मेलन में शामिल नहीं होंगे। विलिंगटन और गांधी को यह आश्वासन मिला कि सरकार दमनकारी साधनों के खिलाफ जाँच करेगी। तब वे २९ अगस्त १९३० को लंदन रवाना हुए। गोलमेज सम्मेलन में इस बात पर जोर दिया गया कि सुरक्षा, राजस्व तथा विदेश विभाग ब्रिटिश सरकार के अधीन रहेंगे। बाकी विभाग जनता को सौंपे जायेंगे। गाँधीजी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पर अटल रहे। २४ दिसम्बर को गांधी जी खाली हाथ लौटे। अंग्रेजी सरकार का दमन चक्र चरम सीमा पर पहुँच गया। 'लगान बन्दी' आन्दोलन ने तीव्र रूप धारण कर लिया। २८ दिसम्बर, १९३१ को आजाद मैदान में

गांधीजी के स्वागत में एक विशाल सभा आयोजित की गई। हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गयी। १६३२ के आन्दोलन में लगभग एक लाख बीस हजार लोगों को जेल में डाल दिया गया।

तीन गोलमेज सम्मेलनों के बाद भारत को प्रान्तीय स्तर पर स्वशासनाधिकार प्राप्त हो गया। गवर्नर को केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में प्रान्त का प्रधानपद प्राप्त हुआ। उसको कुछ विशेषाधिकार कर दिये गये। प्रान्तीय मंत्री अब जनता के हितों के लिये कुछ नीति कार्यान्वित करने का अवसर पा गये। सविनय अवज्ञा आन्दोलन रोक दिया गया। १६३४ में बम्बई में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। ३१ जुलाई, १६३५ को इस अधिवेशन में रियासतों की जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता देने का प्रस्ताव पारित किया गया।

१६३७ के चुनाव में कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का फैसला किया। नेहरू ने जन सभाओं में यह घोषणा की कि हम संविधान को तोड़ने के लिये चुनाव लड़ रहे हैं। चुनाव में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हो गया, पर कांग्रेस ने कार्यभार सँम्भालने से इन्कार कर दिया। जब कांग्रेस को यह आश्वासन प्राप्त हो गया कि गवर्नर प्रान्तीय सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तब जुलाई १६३७ में आठ प्रान्तों में कांग्रेस ने अपनी सरकारें बनाईं। एक तरफ तो उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी ताकतें आपस में ही संघर्ष करने लगी थीं और दूसरी तरफ राष्ट्रीय आन्दोलन की जड़ गांवों में जम गई। प्रान्तीय सरकारों को कार्यभार संभाले दो वर्ष से कुछ ही अधिक समय बीता था कि द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

१६३६ में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश सत्ता ने भारत के लोगों को जोर-जुल्म के द्वारा सेना में भरती करके युद्धाग्नि में झोंक दिया। अंग्रेजी सरकार के इस व्यवहार से रूष्ट होकर कांग्रेसी नेताओं ने मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिये। ब्रिटिश सरकार से नाराज होकर १६४० में लोगों को व्यक्तिगत सविनय-अवज्ञा

आन्दोलन चलाने की सलाह दी गई। १७ अक्टूबर, १६४० को विनोबा जी ने पवनार से 'व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा' आन्दोलन का उद्घाटन किया और यह आन्दोलन ध ीरे-धीरे सारे देश में व्याप्त हो गया।

मार्च, १६४१ में स्टेफोर्ड, क्रीप्स ब्रिटानिया सरकार की ओर से भारत भेजे गये। उस समय चर्चिल युद्ध केबिनेट के प्रधान थे। उनकी तरफ से यह वचन दिया गया कि कांग्रेसी नेता ब्रिटिश सरकार को युद्ध में मदद करेंगे तो युद्ध के बाद उनके आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान लिया जायेगा। कांग्रेस के नेताओं ने क्रीप्स के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

क्रीप्स का प्रस्ताव अस्वीकृत करने के बाद समझौते का मार्ग अवरुद्ध हो गया। बम्बई के अधिवेशन में ८ अगस्त, १६४२ को 'भारत छोड़ो' और 'करो या मरो' आन्दोलन छेड़ने का प्रस्ताव पारित हुआ।

प्रस्ताव के बाद क्षुब्ध ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र ताण्डव-नृत्य के रूप में परिणत हो गया। रक्षा कानून के अन्तर्गत राष्ट्रीय नेताओं के साथ-साथ हजारों लोगों को जेल में ठूँस दिया गया। महात्मा गाँधी को आगा खाँ महल में नजर बन्द रखा गया। अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों के विरोध में गाँधी जी ने २१ दिन का अनशन किया। गाँधी जी की रिहाई के लिये लोगों ने आवाज उठाई, पर ब्रिटिश सरकार अपने निर्णय पर अड़ी रही।

कांग्रेस से अलग होकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लॉक नाम की एक नयी पार्टी को जन्म दिया। उन्होंने २६ नवम्बर, १६४० को भूख हड़ताल की। स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण ५ दिसम्बर को उन्हें जेल से रिहा कर दिया, पर कलकत्ता में उन्हें घर में ही नजरबन्द कर दिया गया। स्वप्नदृष्टा सुभाषचन्द्र, पठान का रूप धारण करके घर से निकल पड़े। काबुल होते जर्मनी में पहुँचकर उन्होंने

हिटलर से मुलाकात की। पनडुब्बी द्वारा वे वहाँ से जापान चले गये। टोक्यो-अधिवेशन में 'आजाद हिन्द सेना' के निर्माण करने का प्रस्ताव पारित हुआ। रास बिहारी बोस ने आजाद हिन्द सेना के नेतृत्व की जिम्मेदारी सुभाषचन्द्र बोस को दी। सिंगापुर और बर्मा में आजाद हिन्द सेना का संगठन ही नहीं किया गया, एक अस्थाई सरकार भी गठित की गई जिसे ९ राष्ट्रों ने स्वीकृत प्रदान कर दी। सुभाषचन्द्र बोस के आकस्मिक निधन के कारण आजाद हिन्द फौज लाल किले पर तिरंगा झंडा फहराने में सफल न हो सकी। आजाद हिन्द के सेनानियों पर जब मुकदमा चलाया गया तब सारे देश में उत्तेजना फैल गयी।

भारत छोड़ो आन्दोलन को विफल करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने क्रूरता पूर्वक दमनकारी नीति का सहारा तो लिया पर विद्रोहात्मक स्थिति से उसे यह आभास तो मिल ही गया कि अब अंग्रेजी सत्ता भारत में अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती। १८ फरवरी १९४६ को अंग्रेज 'नाविक विद्रोह' से ब्रिटिश सरकार भयाक्रान्त हो गई। साम्प्रदायिक विद्वेष भड़काकर ब्रिटिश सरकार ने जनशक्ति को चुनौती दी। लाहौर में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि के रूप में मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा पाकिस्तान की माँग उठाई गयी। लीग और राष्ट्रीय कांग्रेस का द्वन्द्व चरम सीमा पर पहुँच गया। तत्कालीन गवर्नर लार्ड वेवेल ने जून १९४५ में एक योजना के अनुसार कांग्रेस के सामने समझौते का एक प्रस्ताव पेश किया। वेवेल ने भारतीय नेताओं से विचार-विमर्श करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन किया। लार्ड वेवेल कार्यकारिणी समिति में ६ हिन्दू तथा ५ मुस्लिम सदस्य रखने के लिये तैयार थे, पर नामों का समझौता नहीं हो पाया। परिणामतः 'शिमला सम्मेलन' का लक्ष्य निरर्थक हो गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन में आम चुनाव हुआ। इस चुनाव में मजदूर दल को विजय श्री मिली। ब्रिटिश सरकार ने मार्च १९४६ में केबिने मिशन भारत में भेजा। इस मिशन में भारतीय नेताओं के सामने एक प्रस्ताव रखा, जिसमें

तीन बातें मुख्य थीं।

(१) प्रान्तों को तीन वर्गों में संगठित करना,

(२) सम्पूर्ण देश के लिए एक संविधान सभा का आयोजन,

(३) अन्तरिम शासन के लिए एक अन्तरिम सरकार।

केबिनेट मिशन की योजना के अनुसार नवम्बर, १६४६ में संविधान सभा के लिये चुनाव सम्पन्न हुआ। इस चुनाव में कांग्रेस को २०५ तथा मुस्लिम लीग को केवल ७३ सीटें प्राप्त हुईं। २ नवम्बर १६४६ को पं० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में एक अन्तरिम सरकार की घोषणा हुई, जिसमें मुस्लिम लीग पहले तो शामिल नहीं हुई, किन्तु बाद में ५ मुस्लिम लीगी सदस्य सरकार में शामिल हो गये।

मुस्लिम लीग का जुझारू एवं साम्प्रदायिक रूप उग्रतम हो गया। वेवेल मुस्लिम लीग की तरफ झुकने लगे। इतना ही नहीं, वे अधिकतर मुस्लिम लीग के समर्थक अफसरों की सलाह पर काम करते थे। क्षुब्ध होकर कांग्रेस द्वारा संदेश व्हाइट हॉल को भेज दिया गया कि वेवेल को यथाशीघ्र इंग्लैण्ड वापस बुला लिया जाय। अन्तरिम सरकार की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गई। फरवरी में नेहरू ने माँग की, कि मुस्लिम लीग के सदस्य त्याग-पत्र दे दें। इसी समय वेवेल की जगह पर लार्ड माउण्ट बैटन वायसरॉय नियुक्त हुए। मंत्रिमण्डल भंग होने से बच गया। पर लीग के नेता जिन्ना का तेवर पाकिस्तान-निर्माण के लिए दृढ़तर हो गया। माउण्ट बैटन ने विभाजन की योजना २ जून को भारतीय नेताओं के सामने प्रस्तुत की ।

देश का विभाजन तय हो जाने पर हिन्दुओं और मुसलमानों में तनाव बढ़ गया। लाहौर, अमृतसर और बंगाल में भीषण दंगे हुए। कलकत्ता और नोआखाली में भीषण नर-संहार से धरती रक्त-रंजित हो गई। मुस्लिम साम्प्रदायिकता का ताण्डव-नृत्य देखकर संसार थर्रा उठा। अहिंसा का दर्शन हिंसा में परिणित हो गया। विनोबा जी के

शब्दों में, "यह क्या हुआ, जब कि हमने अहिंसा का नाम लेकर काम किया और हमें आजादी हासिल हुई, हम उत्तम से उत्तम कामों में अहिंसा की मर्यादा रखते थे, वह अहिंसा की मर्यादा कहाँ टूट गई? वह अहिंसा का विचार कहाँ गया? इतने नीचे के स्तर तक चित्त कैसे गिरा?" '

२ जून को माउण्ट बैटन ने जन राष्ट्रीय नेताओं की बैठक में विभाजन की योजना पेश की तब सबसे पहले पटेल ने उसे स्वीकार कर लिया। जिन्ना की मनोकामना पूरी हो गयी। हिन्दुस्तान बँट गया और जिन्ना के स्वप्नों का पाकिस्तान अवतरित हो गया। हिन्दुस्तान आजाद हो गया। संविधान सभा ने अन्तरिम संसद के रूप में १४/१५ अगस्त की मध्यरात्रि को सत्ता ग्रहण की। स्वाधीनता के बाद भारत में शरणार्थियों और देशी रियासतों के विलय की समस्या उत्पन्न हुई, और दोनों का निराकरण भी सफलता पूर्वक हो गया। १५ अगस्त १९४७ में पं० जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने।

३० जनवरी, १९४८ को गांधी जी का स्वर्गवास हो गया और उनकी मृत्यु के बाद ही गांधी युग समाप्त हो गया और नेहरू युग प्रारम्भ हुआ। २६ नवम्बर, १९४९ को भारतीय संविधान पारित हुआ और २६ जनवरी, १९५० को भारत का लोकतांत्रिक संविधान लागू हुआ। नेहरू पटेल एक दूसरे के निकट आ गये। नेहरू ने प्रतिरक्षा संभाग अपने हाथ में लिया। पटेल जी ने गृह-विभाग सँभाला। देशी रियासतों का भारतीय राज्य में विलय करके उन्होंने दृढ़ता का परिचय दिया। सरदार पटेल ने प्रलोभन देकर बड़े राज्यों को भी अधिमिलन - लिखित दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने के लिये तैयार कर लिया था। पटेल ने एक तरफ उन्हें राज्य-प्रमुख बनाने का आश्वासन दिया और दूसरी तरफ 'निजी निधि' (प्रीवीपर्स पर)। पटेल की दृढ़ता से पराभूत होकर राजाओं ने अपनी सत्ता का परित्याग कर दिया। इस सम्बन्ध में

---

१. आत्म ज्ञान और विज्ञान, पृ० ११

दुर्गादास ने लिखा है, "वे यह जान गये थे कि अपना पद, अपने महल और अपनी निजी निधि के (प्रिवीपर्स पर) कायम रखने के लिए यह एक रास्ता था कि वे राजसी सत्ता त्याग दें।" [1] अपनी दूरदर्शिता और आत्मबल से पटेल ने २४ घण्टों की सैनिक घेराबंदी द्वारा हैदराबाद नरेश को आत्म समर्पण के लिए विवश कर दिया। निजाम ने १७ सितम्बर को आत्म समर्पण कर दिया।

नेहरू 'पंचशील' के सिद्धान्तों के प्रवर्तक हैं। सितम्बर में चीन कम्युनिस्ट रेडियो ने यह दावा किया था कि तिब्बत चीन का अंग है। नेहरू ने चीन के दावे का विरोध नहीं किया। वे तिब्बत के मसले पर चीन से झगड़ा नहीं करना चाहते थे। पर सरदार बल्लभ भाई पटेल और राजेन्द्र प्रसाद की प्रतिक्रिया कुछ और ही थी। "उनका यह कहना था कि तिब्बत हिमालय में भारत की धुर उत्तरी चौकी थी और कम्युनिस्ट रेडियो का दावा खतरे का संकेत था जिसकी ओर नयी सरकार का ध्यान देना आवश्यक है।"[२] तिब्बत पर अधिकार जमाने के बाद नेफा पर कब्जा करने के लिये चीन ने तिब्बत के अन्दर एक नये मार्ग का निर्माण किया। १० नवम्बर १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण करके नेफा को हथिया लिया। नेहरू तथा देशवासियों को चीन के विश्वासघात से बहुत बड़ा धक्का लगा।

नेहरू की मृत्यु २७ मई, १९६४ को हुई और उनके निधन के साथ ही नेहरू युग का अवसान हो गया। ९ जून, १९६४ को लाल बहादुर शास्त्री उनके उत्तराधिकारी हुए। लाल बहादुर शस्त्री की सूझ बूझ का लोहा सभी लोग मानने लगे। ५ अगस्त, १९६५ को अयूब खाँ ने भारत पर आक्रमण कर दिया। शास्त्रीजी की दृढ़ता और साहस से भारत को केवल विजयश्री ही नहीं मिली, पाकिस्तान की बहुत सी चौकियों पर भारत के सैनिकों ने अधिकार भी कर लिया। २३ सितम्बर, १९६५ को

---

१. कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात्। पृ० २९९

२. कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात्। पृ० ३१२

युद्ध विराम हो गया। ताशकन्द में संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद रात में शास्त्री जी का ह्रदय गति रुक जाने के कारण स्वर्गवास हो गया। लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद इन्दिरा गाँधी ने भारत के प्रधानमंत्री पद को सुशोभित किया। २४ जनवरी १९६६ को २:१५ बजे (अपराह्न) उन्होंने प्रधानमंत्री पद की शपथ लेकर कार्यारम्भ किया।

उनके नेतृत्व में १९६७ के चुनाव में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। १९६९ में इन्दिरा गांधी लोक कल्याण की भावना से अनुप्रमाणित होकर लोक कल्याण के लिये पुरानी कांग्रेस से अलग हो गईं। इन्दिरा के इस साहस् को देखकर देशवासी बहुत प्रसन्न हुए। १९७० में संसद को भंग करके उन्होंने आम चुनाव की घोषणा कर दी । मार्च १९७१ का समय प्रथम सप्ताह पंचम महानिर्वाचन के लिये निर्धारित किया गया। 'गरीबी हटाओ' के नारों से प्रभावित होकर जनता ने खुले दिल से उनकी पार्टी को वोट दिया। संसद में उन्हें लगभग ३२० स्थान मिले। दिसम्बर १९७१ में अमेरिका के प्रोत्साहन से पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। इन्दिरा गांधी ने केवल पाकिस्तान को पराजित ही नहीं किया, पूर्वी पाकिस्तान की प्रताड़ित, शोषित जनता की सहायता कर बांग्लादेश का निर्माण भी करवा दिया। १२ जून, १९७५ को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उनके १९७१ के लोकसभा की सदस्यता के चुनाव को अवैद्य घोषित कर दिया, पर ७ नवम्बर, १९७५ में उच्चतम न्यायालय ने उनकी सदस्यता को बहाल कर दिया। देश की सुरक्षा और विकास के लिये इन्दिरा गाँधी ने आपात् काल की घोषणा कर दी। मार्च १९७७ के छठी लोकसभा के चुनाव में पराजित होने के कारण २२ मार्च १९७७ को उन्होंने प्रधानमंत्री पद को त्याग दिया। १९७७ में कांग्रेस के कुछ स्वार्थी नेता इन्दिरा गांधी को छोड़कर एक और कांग्रेस का निर्माण किए। कांग्रेस एक बार फिर विभाजित हो गई।

२४ मार्च, १९७७ को जनता पार्टी ने मोरारजी को अपना चुना। खिचड़ी सरकार बनी। २५ मार्च को नये प्रधानमंत्री मोरारजी ने नीवन मण्डल की

घोषणा की। जुलाई १६७८ में खिचड़ी सरकार का पतन हो गया। कार्यवाहक प्रधानमंत्री चरण सिंह बने।

जनवरी, १६८० में सातवीं लोकसभा का चुनाव हुआ। २८ माह के बाद १४ जनवरी १६८० को इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं। ३१ अक्टूबर, १६८४ में बनीं। ३१ अक्टूबर १६८४ में ही उनके ही अंगरक्षकों ने उनकी हत्या कर दी। माँ के निधन के बाद राजीव गाधी कांग्रेस दल के नेता चुने गये और भारत के प्रधानमंत्री बने।

दिसम्बर १६८४ के अन्तिम सप्ताह में आठवीं लोकसभा में भारी बहुमत प्राप्तकर वे भारत के प्रधानमंत्री बने। नवीं लोकसभा का चुनाव १६८६ में प्रारम्भ हुआ और राजीव गांधी की पार्टी को पराजय का मुँह देखना पड़ा। इस चुनाव में किसी भी पार्टी को बहुमत नहीं मिला पर प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह बने। २३ अक्टूबर १६६० को भारतीय जनता पार्टी ने केन्द्र सरकार को अपना समर्थन वापस ले लिया। राजा विश्वनाथ प्रताप सिंह को प्रधानमंत्री पद से च्युत होना पड़ा। इसके बाद श्री चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री बने। चार माह बाद उनकी सरकार का भी पतन हो गया। १६६१ में दसवीं लोकसभा का चुनाव हुआ। इस चुनाव के बीच में २१ मई १६६१ को राजीव गांधी का स्वर्गवास हो गया। नरसिंह राव का सितारा चमका और चुनाव के बाद वे भारत के प्रधानमंत्री बन गये।

नागार्जुन के काव्य में स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आज तक की राजनीति के अनेक परिदृश्य मिलते हैं।

२. सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ :-

वर्णाश्रम धर्म में चार वर्णों की व्यवस्था की गयी - (१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय (३) वैश्य, (४) शूद्र। यह विभाजन श्रम-विभाजन के आधार पर हुआ और इसमें कर्म को ही प्रधानता दी गई थी, परन्तु बाद में यह वंश-परम्परा के रूप में बदलकर अत्यन्त ही संकीर्ण हो गया। उत्पादन और सेवा का काम तो अंत्यजों के ऊपर थोपा गया, पर उन्हें अस्पृश्य मानकर घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। हिन्दू जाति के वर्चस्व को बरकरार रखने के लिए जितना त्याग, साहस, धैर्य और विनम्रता का परिचय दलित वर्ग ने दिया है, उतना उच्च कही जाने वाली जातियों ने नहीं किया है। घृणा, अपमान, भूख, दरिद्रता तथा अत्याचारों को सहन करते हुए भी अस्पृश्यों ने अपने-आप को हिन्दू कहने में गौरव का अनुभव किया है। हिन्दू जाति और हिन्दू-संस्कृति अस्पृश्यों के त्याग के लिए हमेशा उनकी ऋणी रहेगी। हरिजनों के त्याग और तपस्या की ओर व्यापक दृष्टि से कांग्रेस का ध्यान १६१७ में आकृष्ट हुआ। १६१७ में समाज सुधार के लिए कांग्रेस ने एक प्रस्ताव रखा, "यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह करती है, कि परम्परा से दलित जातियों पर जो रुकावटें चली आ रहीं हैं, वे बहुत दुख देने वाली और क्षोभकारक हैं जिसमें दलित जातियों को बहुत कठिनाइयों, सख्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा है। इसलिये न्याय और भलमंसी का तकाजा यह है कि वे तमान बंदिशें हटा दी जाएँ।"[1]

अछूतों की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक दुर्दशा को देखकर अंग्रेज कूटनीतिज्ञों ने हिन्दू-व्यवस्था में ही सेंध लगाने की कोशिश की। मुस्लिम लीग की स्थापना करवाकर अंग्रेजों ने हिन्दुत्व को हिन्दू जाति से अलग करने के लिए विभिन्न निर्वाचित संस्थाओं में प्रतिनिधित्व देने का निश्चय कर हिन्दू धर्म के मर्मस्थल पर प्रहार किया। अंग्रेजों ने अपने नापाक इरादे का वशीकरण अछूत नेता डॉ० भीम राव

---

१. कांग्रेस का इतिहास, डॉ० पट्टाभि सीता रमैया, अनु० हरिभाऊ उपाध्याय

अम्बेदकर' और श्रीनिवास पर चलाया। इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमंत्री रामसे मॅक्डोनाल्ड ने १६३२ में हरिजनों को स्वतंत्र प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया। अंग्रेजों ने यह प्रचार किया कि अछूत हिन्दू नहीं है। गांधी जी ने अंग्रेजी सरकार की कूटनीति को परख लिया। डॉ० भीमराम अम्बेडकर स्वतंत्र प्रतिनिधित्व की मॉग पर दृढ़ थे। हिन्दुत्व के लिये महान संकट उपस्थित हुआ और अगर प्रस्ताव को अमल में लाया जाता तो हिन्दुत्व का नामो-निशान मिट जाता। १३ सितम्बर, १६३२ को गांधीजी ने मारकेशी संकट के समाधान के लये आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। डॉ० अम्बेडकर ने दूरदर्शिता का परिचय दिया और गांधीजी को बचाने के लिये उन्होनें समझौता कर लिया, जिसे 'पूना पैक्ट' के नाम से जाना जाता है। विधान सभाओं में अछूतों की सीटें बढ़ा दी गईं। उनके लिये सुरक्षित चुनाव-क्षेत्र भी घोषित किये गये।

जब हमारे देश का संविधान बना तो किसी को अस्पृश्य समझना कानूनी अपराध करार कर दिया गया। आज अछूतों को समान अधिकार प्राप्त हो गया है। अछूतों के मन में न्यायोचित अधिकार प्राप्त करने की नयी चेतना आयी है। इस चेतना के कारण सवर्ण और अछूतों का संघर्ष भी यत्र-तत्र प्रारम्भ हो गया है। वास्तव में जातीय विभाजन हमारे देश के लिये अशुभ है। भारत में साम्प्रदायिक और जातीय भेद-भाव को देखकर कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि "एक ऐसा देश, जो न केवल मुसलमान और हिन्दू में भी विभाजित है, बल्कि कबीले और कबीले तथा जाति और जाति में भी, एक ऐसा समाज जिसका ढ़ांचा एक तरह से सन्तुलन पर टिका हुआ था और यह सन्तुलन सभी सदस्यों के विकर्षण तथा वैद्यानिक उपवर्जिता से पैदा हुआ था। ऐसा देश और ऐसा समाज - क्या उनके भाग्य में ही पराजित होना लिखा था?"[1]

भारत में ब्रिटिश सत्ता का आरम्भ एक व्यापारिक कम्पनी (ईस्ट

---

१. नवभारत टाइम्स, बम्बई, १८ फरवरी, १६८४, ले. राजकिशोर, पृ० ४

इण्डिया कम्पनी) की स्थापना से हुआ था। बाद में इसी व्यापार की रक्षा और वृद्धि के लिए अंग्रेजों की राजनीति महत्वकांक्षा जागृत हुई और भारत पूर्ण रूप से अंग्रेजी शासन के अधीन हो गया। अपने व्यापार को समुन्नत बनाने के लिये अंग्रेजों ने एक ओर पूँजीपतियों को प्रोत्साहन दिया, तो दूसरी ओर सामन्ती व्यवस्था को मदद की, इस प्रकार पूरी अर्थ-व्यवस्था पर अपना अंकुश रखा। "उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत का पूँजीपति वर्ग सामने आने लगा था। १८५३ में बम्बई में कामयाब सूती मिल खुला। १८८० तक भारत में १५६ सूती मिल चालू हो गये, जिनमें ४४,००० मजदूर काम करते थे। १६०० तक मिलों की संख्या १६३ और उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या १,६१,००० हो गयी।" [१] दिनों दिन यहाँ वर्ग विभाजन होता गया, एक ओर पूँजीपति वर्ग का निर्माण हो गया और दूसरी ओर मजदूर वर्ग बढ़ता गया। अंग्रेजों के भारत में पदार्पण करने के पूर्व "हमारे देश में कुटीर-उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। हमारे इन उद्योगों से निर्मित वस्तुओं का विदेशों तक में बड़ा नाम था। अंग्रेजों ने इस देश में अपने शासन की जड़ें गहरी करने के साथ ही यहाँ के इन उद्योगों पर जीवन निर्वाह करने वाले असंख्य भारतीयों का जीवन दुर्वह हो गया। दूसरी ओर भारतीय पूँजीपति शासकीय सुविधाएँ प्राप्त कर जूट और सूती वस्त्रों की बड़ी-बड़ी मिलें प्रारम्भ कर अपनी पूँजी बढ़ाने में व्यस्त थे। इस शती के प्रथम चरण में यहाँ लगभग दो सौ मिलें क्रियाशील थीं। उनमें लगभग दो लाख श्रमिक पूँजीपतियों के गुलाम बनकर कार्य कर रहे थे।" [२] "१६०५ में पहली बार भारत की जनता ने स्वदेशी आन्दोलन के माध्यम से अंग्रेजों की आर्थिक नीति के प्रति विद्रोह भाव व्यक्त किया। सम्पूर्ण देश में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई और स्वदेशी वस्त्रों को ही धारण करने के संकल्प किये गये।" [३]

---

१. भारत : वर्तमान और भावी-रजनी पामदत्त, पृष्ठ १२१

२. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्णलाल हंस, पृष्ठ ८३

३. आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास - डॉ० जितराम पाठक पृष्ठ-११५

"सन् १९१३-१४ तक कपास की मिलों की संख्या २६४ तक तथा जूट मिलों की संख्या ६४ तक पहुँच गयी थी। सन् १९१४ में कोयले की खानों में, १, ५१, ३७३ मजदूर काम कर रहे थे।" [1] सन् १९१४ से १९१८ तक प्रथम महायुद्ध के दिनों में औद्योगिक विकास की गति और भी तेज हुई। यद्यपि इसके पीछे भी अंग्रेजों के अपने निजी स्वार्थ ही थे। अपनी आर्थिक और सैनिक स्वार्थों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस प्रकार की योजना बनाई गयी थी। इसमें भारतीयों के प्रति कोई सद्भावना या शुभकामना नहीं की गई थी। पर इसका एक अच्छा परिणाम यह अवश्य निकला कि इस नीति के कारण यहॉ औद्योगिक विकास का शिलान्यास हो गया। जगह-जगह रेलों का विस्तार किया गया और माल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की सुविधाओं में वृद्धि की गई।

युद्ध के दिनों में बाजार में कीमतों में वृद्धि हुई और जन-सामान्य को अपनी जरूरतें पूरी करने में कठिनाइयॉ उपस्थित हाने लगी। एस०जी० पन्दीकर के अनुसार प्रथम महायुद्ध का भारत पर बुरा आर्थिक परिणाम निकला। "युद्ध के दिनों में आयात और तीव्रता से बढ़ने लगा। यदि १९१३-१४ के कीमत स्तर को मापदण्ड माना जाये, तो १९१७-१८ और १८ -१९ में निर्यात की चीजों के दाम क्रमशः २५ और ५० प्रतिशत बढ़े तो आयात की चीजों के दाम इन वर्षों में क्रमशः १११ और १९८ प्रतिशत बढ़ गये।" [2] जन सामान्य के लिये यह युद्ध कितना ही त्रासकारी क्यों न रहा हो, परन्तु भारतीय पूँजी-पतियों के लिये यह एक वरदान ही सिद्ध हुआ। योरोपीय देशों के कल-कारखाने युद्ध सामग्री के उत्पादन में लगे हुये थे। विदेशों में सामान भेजना तो दूर रहा, वे स्वयं अपने देशवासियों की दैनिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते थे। इसके अतिरिक्त जर्मनी के पनडुब्बे जहाजों ने मित्र राष्ट्रों और विशेषकर ब्रिटिश जहाजों का समुद्र पर चलना बड़ा ही संकटमय और एक प्रकार

---

१. प्रगतिशील हिन्दी कविता - डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, पृष्ठ २६ पर उद्दृत

२. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत, पृ० १०९-११० पर उद्धत

से असम्भव सा बना दिया था। युद्ध क्षेत्र से दूर तथा विदेशी प्रतियोगिता के अभाव में भारतीय कल-कारखानों को फलने-फूलने का अच्छा अवसर मिल गया। भारतीय पूँजीपतियों ने इस स्वर्ण अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया और थोड़े ही समय मे बड़ी उन्नति कर ली। सन् १६१४ से सन् १६१८ तक कारखानों की संख्या २६३६ से बढ़कर ३४३६ हो गयी तथा १६२२ तक आते-आते यह संख्या पॉच हजार से भी अधिक हो गयी।"[1]

उसका परिणाम यह हुआ कि धनिक तो और भी अधिक धनिक होते गये, लेकिन गरीब जनता की आर्थिक स्थिति और भी दयनीय हो गयी। एक ओर पूँजीपतियों का एक छोटा-सा समुदाय शासकीय सुविधाएं प्राप्त करके उत्पादन के समस्त साधनों पर अपना अधिकार कर बैठा और दूसरी ओर इन मिलों और कारखानों में काम करने वाले लाखों, करोड़ों, श्रमिकों का जीवन पशुओं को भी लज्जित करने वाला बन गया। "पूँजीपति वर्ग जिस समय बाजार में सोना बटोर रहा था, उस समय भारत की सामान्य जनता विशेषकर मजदूर, किसान और निम्न मध्यम वर्ग के लोग गरीबी और भुखमरी से त्राहि-त्राहि कर रहे थे। युद्ध के बढ़ते हुये सैनिक व्यय को पूरा करने के लिये अंग्रेज सरकार तरह-तरह के टैक्स लगाकर भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण कर रही थी। खाने-पहिनने और दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जा रहे थे, परन्तु लोगों की मजदूरी और तनख्वाहें ज्यों-की-त्यों थी। युद्ध के कारण योरोपीय देशों की फसलें बरबाद हो चुकी थीं, अतः भारत के अन्न को प्रचुर मात्रा में विदेशों में भेजकर यहॉ के पूँजीपति लाभ उठा रहे थे। एक ओर देश का अन्न विदेशों में जा रहा था, तो दूसरी ओर कृषि की उपज घटती जा रही थी। क्योंकि खेतों में काम करने वाले स्वस्थ किसान बड़ी संख्या में फौज में भरती करके योरोप में मरने और मारने के लिये भेज दिये गये थे। फलतः अन्न संकट गम्भीर हो

---

१. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृष्ठ २१६ पर उद्धत

जा रहा था।[1]

"इस युद्ध में अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारत की जनता और भौतिक सम्पत्ति का खुलकर प्रयोग किया। युद्ध के दिनों में भारतीय सैनिकों की संख्या १५ लाख तक पहुँच गई। १६१७ में इंग्लैण्ड ने भारत सरकार को स्वेच्छा से १० करोड़ पाउण्ड का खिराज देने के लिये बाध्य किया। अगले वर्ष साढ़े चार करोड़ पाउण्ड और खिराज के रूप में वसूल किये गये। भारतीय धारा सभा में फाइनेंस मेम्बर वासिल ब्लेकेट के वक्तव्य के अनुसार इस खिराज और अन्य सैनिक खर्चों के कारण भारत का राष्ट्रीय ऋण जो १६१४ में ४१० करोड़ था, १६२३ में ७८१ करोड़ हो गया।"[२]

"युद्ध के कारण जनता की हालत बहुत खराब हो गयी थी। युद्ध का खर्चा चलाने के लिये भारत की गरीब जनता से इतना कसकर रुपया वसूल किया गया था कि उसकी कमर टूट गयी थी। मँहगाई की मार और अंधाधुंध नफाखोरी ने लोगों को तबाह और बरबाद कर दिया था। यह इसी का एक नतीजा था कि युद्ध समाप्त होने पर भारत में काले बुखार की ऐसी महामारी फैली, जैसी पहले कभी न आयी थी।"[३] "१६१८-१६ में भारत में अकाल पड़ा। संयुक्त प्रान्त बम्बई, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और हैदराबाद तथा मैसूर के राज्यों में अकाल की स्थिति बहुत व्यापक और गम्भीर थी। अकाल के साथ ही इन्फ्लुएंजा भी फैला। लोग खासतौर से, गॉवों के लोग अभूतपूर्व संख्या में मरने लगे। बी० नारायण के दिये हुए ऑकड़ों के अनुसार यूरोपीय रोग ग्रस्तों में मृत्युदर पॉच प्रतिशत, घनी भारतीयों में जिन्हें डाक्टरी सुविधाऍ प्राप्त थीं, ६ प्रतिशत और किसान जनता में ५० प्रतिशत तक थीं।"[४] ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले कृषकों की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी। वे एक ओर जमींदारों

---

१. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृष्ठ २१६

२. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत, पृष्ठ १०८ पर उद्धत

३. भारत : वर्तमान और भावी-रजनी पामदत्त, पृष्ठ १४२

४. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत, पृष्ठ १०६ पर उद्धत

और मालगुजारों की सामन्तवादी सत्ता के शिकार हो रहे थे और दूसरी ओर पूँजीवादी साहूकारों के ऋणभार से उनकी कमर टूट रही थी। शासन की दोषपूर्ण नीति, पूँजीवाद अर्थ-व्यवस्था और सम्पत्ति के असमान वितरण ने देश की आर्थिक स्थिति जर्जर बना दी थी।" [1]

सन् १६१७ ई० की रूसी क्रान्ति के पश्चात् वहाँ जारशाही के स्थान पर बोल्शेविक शासन स्थापित हो गया। रूस के मजदूरों की इस उपलब्धि का व्यापक प्रभाव भारत के किसान मजदूरों पर भी पड़ा। उनके नये-नये संगठन बनने लगे और वे अनेक रूपों में शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करने लगे। "सन् १६१८ में प्रयाग में एक किसान सभा के माध्यम से किसानों के प्रति हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध रोष प्रकट किया गया और किसानों के लिये अधिकाधिक सुविध ाओं की माँग की गई। "विश्वयुद्ध के समय से ही चला आने वाला किसान आन्दोलन २०-२१ में विशेष तीव्र होने लगा। पंजाब, मलबार और संयुक्त - प्रान्त में इसने विशेष क्रियाशीलता दिखलाई। पंजाब और मलाबार में यह आन्दोलन धार्मिक आवरणों में सामने आया। पंजाब में उसने गुरुद्वारों और उनकी जमीनों को जमींदारों की तरह उपयोग में लाने वाले सभी महन्तों के विरुद्ध अकाली आन्दोलन का रूप लिया। इस आन्दोलन में पुरानी गदर पार्टी के नेता भी शामिल थे। इस आन्दोलन ने लगभग पूरी तरह से गाँधीजी के अहिंसात्मक तरीकों का प्रयोग किया। महन्तों का साथ क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने दिया, इस आन्दोलन ने एक ही साथ सामन्तवाद और साम्राज्य विरोधी रूप धारण कर लिया। १६२१ में तरन-तारन और ननकाना तथा १६२२ में गुरु का बाग में महन्तों और ब्रिटिश शासकों ने निहत्थी किसान जनता पर भयंकर आक्रमण किये और सैकड़ों लोगों की हत्या की।" अकाली आन्दोलन की अपेक्षा कहीं जुझारू और क्रान्तिकारी किसान-आन्दोलन पर भी धार्मिक तत्वों का प्रभाव था,

---

१. प्रगतिशील काव्य साहित्य - डॉ० कृष्णलाल हंस, पृष्ठ ८४

तथापि यह भी मूलतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद और देशी सामन्तवाद के विरुद्ध गरीब भूमि-मजदूरों का ही आन्दोलन था। खिलाफत के आन्दोलन ने भी इसे प्रेरणा दी, पर मोपला के किसानों ने खिलाफत आन्दोलन की अहिंसात्मकता की कोई परवाह नहीं की। अगस्त १९२१ में यह विद्रोह पहले तिरुरंग दी नामक एक छोटे से कस्बे से शुरु हुआ। मोपलों ने कस्बे पर अधिकार कर लिया और खिलाफत राज्य की घोषणा कर दी। मलाबार के जमींदार और साहूकार ज्यादातर हिन्दू थे, इसलिये ब्रिटिश सरकार ने इस विद्रोह को हिन्दू-मुस्लिम दंगों में बदलने का प्रयत्न किया। मोपला विद्रोह ने वास्तव में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक वास्तविक युद्ध का रूप ले लिया था। पूरी बहादुरी और दुस्साहस के बावजूद संगठन के अभाव और मुकाबले में आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित ब्रिटिश सेना के होने के कारण यह विद्रोह असफल रहा। १९२१ तक तीस हजार मोपलों ने समर्पण कर दिया। कुल मिलाकर इस विद्रोह में ३२६६ मोपले मारे गये और १८२५ घायल हुए। किसान आन्दोलन का तीसरा क्षेत्र संयुक्त प्रान्त के अवध ा और आगरा के अंचल थे। किसानो का यह आन्दोलन इतना स्वयं स्फूर्त था कि जवाहर लाल जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरी कहानी' में लिखा है, बल्कि मुझे उस वक्त ताज्जुब तो इस बात पर हुआ कि बिना शहर वालों की मदद के या राजनैतिक पुरुषों अथवा ऐसे ही दूसरे लोगों की प्रेरणा के, कैसे बिल्कुल अपने आप वह इतने आगे बढ़ गया। यह किसान आन्दोलन कॉंग्रेस से बिल्कुल अलहदा था। १९२० के अन्त में कुछ गिरफ्तार किसान नेताओं पर प्रतापगढ़ में मुकदमा चलाया जा रहा था, लेकिन मुकदमें के दिन हजारों किसान एकत्र हो गये और मजिस्ट्रेट ने घबराकर नेताओं को छोड़ दिया। किसानों ने इसे अपनी बहुत बड़ी विजय समझी। पर ब्रिटिश सरकार के लिये यह स्थिति असाध्य थी। उसने कुछ प्रमुख किसानों को फिर गिरफ्तार कर लिया। १९२१ में लगभग पूरे संयुक्त प्रान्त में उनकी हलचलें प्रारम्भ हो गयीं।"[1] "१३-१४ जनवरी को फैजाबाद में दस हजार किसानों ने कस्बे के हजारों लोगों के साथ मिलकर

---

१. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत, पृष्ठ ११२-११३ पर उद्धत

प्रदर्शन किए और जमींदारों की सम्पत्ति पर आक्रमण किये। रायबरेली में भी प्रदर्शन हुए। इस आन्दोलन में भारतीय किसान पहली बार स्पष्टता पूर्वक, बिना किसी धार्मिक आवरण के, सीधे-सीधे अपने वर्ग-हितों की रक्षा के लिये उठ खड़े हुये। उन्होनें जमींदारों की सम्पत्ति जलाई, टैक्स देने से इंकार किया और अपने साथियों को छुड़ाने के लिए हथियार उठाए। आगे चलकर कॉंग्रेस के स्वयं सेवक भी इस आन्दोलन में शामिल हो गये। बरेली में पॉच हजार स्वयं सेवकों ने प्रदर्शन और सभाएँ की तथा नगर को अपने अधिकार में लेने के प्रयत्न किये। ४ फरवरी १६२२ को गोरखपुर के पास चौरी-चौरा में दो हजार स्वयं सेवकों और किसानों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की गोलियों का बदला पुलिस थाने को जलाकर और सब पुलिस वालों को मारकर लिया। यह महत्वपूर्ण बात है कि संयुक्त प्रान्त के इस किसान आन्दोलन ने अपने नेता अपने ही अंदर से पैदा किये और स्वयं अपना संगठन 'एका' बनाया। इनके नेता पासीमदारी और साहोब दोनों नीची जातियों के भूमिहीन किसान थे। 'एका' ने अपनी निश्चित मॉगें सामने रखी और जमींदारों तथा सरकार के विरुद्ध एक तरह का युद्ध शुरू किया। क्योंकि यह आन्दोलन अहिंसक नहीं था और व्यक्तिगत सम्पत्ति के खिलाफ था। कॉंग्रेस ने इसकी निंदा की और इसका विरोध किया।"[२]

असल में १६१४-१८ के महायुद्ध के बाद और विशेषकर संसार व्यापी अर्थ-संकट के बाद से इस आधुनिक काल में ही किसानों की बेचैनी अभूतपूर्व गति से बढ़ी है और अधिकाधिक उग्ररूप धारण करती गयी है। किसानों के सामानान्तर मजदूरों के भी अपने आन्दोलन चल रहे थे। "प्रथम युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भारत में जिस प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण हुआ और इस देश पर रूसी-राज्य-क्रांति तथा उसके पश्चात् की दुनिया में उठने वाली क्रान्तिकारी लहर का जो प्रभाव पड़ा था, उसके कारण, भारत का श्रमिक वर्ग ऐसा दिखाई पड़ता था, मानों वह एक ही छलॉग

---

२. हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ० रणजीत, पृष्ठ ११३-११४ पर उद्धत

मारकर कर्मभूमि में उतर आया हो।"[1]

सन् १६१८ और १६२० के मध्य इस देश में श्रमिक हड़तालों की एक बाढ़ सी आ गयी थी। "१६२० के पहले छः महीनों में हड़तालें सबसे तेज रहीं। इस काल में २०० हड़तालें हुयीं जिनमें १५ लाख मजदूरों ने भाग लिया"[2] १६२०-२१ में बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ, अहमदाबाद और आसाम के चाय बागों में बड़ी-बड़ी हड़तालें हुयीं। ज्यादातर मजदूर अपने संघो में संगठित होने लगे। अखिल भारतीय स्तर पर एक मजदूर-संगठन बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ हुए और "१६२० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉग्रेस की स्थापना हुई। उसका प्रथम अधिवेशन अक्टूबर १६२० में बम्बई में हुआ।"[3] अधिवेशन की अध्यक्षता लाला लाजपत राय ने की। मजदूरों की ये हड़तालें अपनी आर्थिक मॉगों के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थन में भी होती थीं। "१६२६-२७ तक देश में समाजवादी विचारों का व्यापक रूप से प्रचार हो गया था। मजदूर और किसान पार्टियों के रूप में मजदूर वर्ग के राजनीतिक और समाजवादी संगठन का एक नया प्रारूप देश में जगह-जगह दिखाई देने लगा था। इन संगठनों में ट्रेड यूनियन आन्दोलन के लड़ाकू कार्यकर्ता और कॉग्रेस के उग्रवादी तत्व एक जगह इकट्ठा हो गये थे। पहली मजदूर किसान पार्टी फरवरी १६२६ में बंगाल में बनी, फिर बम्बई, उत्तर प्रदेश और पंजाब में भी इस तरह की पार्टियॉ कायम हो गयीं। १६२८ में इन सबको मिलाकर 'अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी' कायम की गई जिसका पहला अधिवेशन दिसम्बर १६२८ में हुआ था।"[4] "पं० जवाहर लाल नेहरू के अनुसार सन् १६२८-२६ के वर्ष मजदूरों के झगड़े और हड़तालों तथा औद्योगिक अशान्ति के वर्ष थे।"[5]

---

१. भारत : वर्तमान और भावी-रजनी पामदत्त, पृ० २०३
२. भारत : वर्तमान और भावी -रजनी पामदत्त, पृष्ठ १४७
३. भारत : वर्तमान और भावी - रजनी पामदत्त ,पृ० २०३
४. भारत : वर्तमान और भावी-रजनी पामदत्त, पृष्ठ २१०-२११
५. नागार्जुन : जीवन और साहित्य - डॉ० प्रकाश चन्द्र भट्ट, पृष्ठ २८ पर उद्धत

इरविन के सम्मुख रखी गयी मॉगों के रूप में। यह मॉग थी- लगान को कम-से-कम ५० फीसदी कम कर देने की। इस मॉग का कारण यही था कि किसानों की आवाज अब कॉग्रेस तक आने लगी थी। आर्थिक प्रश्नों की ओर कॉग्रेस का ध्यान इस समय से बढ़ने लगता है।"[1] १६३० के बाद किसान सभाओं का संगठन और इस संगठन के माध्यम से अपने प्रति हो रहे शोषण और अत्याचार के विरुद्ध आवाज बुलन्द करना और भी तीव्रतर हुआ। "सन् १६३० के पश्चात् किसान सभाओं के संगठन का कार्य भी प्रारम्भ हो गया था। बिहार में तो सन् १६२६ में ही किसान सभा की स्थापना हो गई थी, जिसने कि सन् १६३४ में अधिक व्यापक रूप ग्रहण किया। सन् १६३५ में उत्तर प्रदेश में एक प्रान्तीय किसान सभा की स्थापाना हुई, जिसने कि अपने कार्यक्रम में जमींदारी प्रथा की समाप्ति की मॉग को भी सम्मिलित किया था।"[2] "१६२६ में पहला अखिल भारतीय किसान संगठन बना, उसका नाम था - अखिल भारतीय किसान सभा। इस संगठन का पहला अखिल भारतीय अधिवेशन दिसम्बर १६३६ में राष्ट्रीय कॉग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ फैजपुर में हुआ। उसमें बीस हजार किसानों ने भाग लिया, जिनमें से बहुत से सैकड़ों मील पैदल चलकर आए थे। इसके साथ-साथ कॉग्रेस ने अपने फैजपुर अधिवेशन में एक खेती सम्बन्धी कार्यक्रम पास किया और दोनों संस्थाओं के भाई-चारे की घोषणा की गई।"[3] इस प्रकार इस सदी के चौथे दशक में मजदूरों और किसानों ने अपनी दयनीय स्थिति से पार पाने के लिए विद्रोह भरे स्वरों में आन्दोलनों की गति काफी तेज़ कर दी।

द्वितीय महायुद्ध के समय दृश्य और भी वीभत्स हो गया। "युद्धकाल में भारत का शोषण अनेक ढ़ंग से होता रहा। औद्योगिक विकास भी नहीं हो सका। भारत की राष्ट्रीय आय का एक तिहाई भाग रक्षा पर व्यय हुआ। युद्ध का वृहत व्यय

१. राष्ट्रीयता और समाजवाद - आचार्य नरेन्द्र देव, पृ० ६०

२. प्रगतिशील हिन्दी कविता - डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, पृष्ठ ३२

३. भारत : वर्तमान और भावी -रजनी पामदत्त, पृष्ठ १०७

मुद्रा प्रसार के द्वारा पूरा किया गया। सन् १६३६ से सन् १६४५ के बीच भारत में ६ गुने अधिक नोट चलाये गये। इससे फौजी ठेकेदार और मिलों के स्वामी बेहद लाभान्वित हुए। बुभुक्षित जनता इस बोझ से पिस उठी। जीवन की आवश्यकताओं के आभाव में जनता की स्थिति दमनीय रही। मँहगाई बढ़ती गई। जनता अनेक कष्टों से जूझती रही।"[१] "दूसरे विश्वयुद्ध के बाद ऐसी विकराल मँहगाई आयी कि सन् ४२-४३ में आटा-चावल का भाव आसमान छूने लगा। राशन कार्ड के आभाव में बहुतों के लिये कदन्न तक दुर्लभ हो गया।"[२] भारत की ग्रामीण अर्थ - व्यवस्था का दिवालियापन नग्न रूप में उस समय प्रकट हुआ, जब जापान के लड़ाई में शामिल हो जाने के बाद भारत में वर्मा से चावल आना बन्द हो गया। उसका नतीजा यह हुआ कि पूरा देश अकाल का ग्रास बन गया और हर तरफ भुखमरी फैल गयी। अकेले बंगाल में प्रोफेसर के०पी० चट्टोपाध्याय ने हिसाब लगाया कि ३५ लाख आदमी आकाल के परिणामस्वरूप मौत के शिकार हुये। अकाल के बाद महामारी आयी और सितम्बर १६४४ तक बंगाल में १२ लाख आदमी विभिन्न बीमारियों के शिकार हो गये। जनता का सारा जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। माँ-बाप अपने दूध पीते बच्चों को इस आशा से सड़क के किनारे छोड़कर चल देते थे कि किसी दयालु आदमी की उन पर दृष्टि पड़ गयी तो सम्भव है कि उनकी जान बच जाये। पुरुष अपने परिवारों को भाग्य के सहारे छोड़कर रोजी की तलाश में बाहर निकल जाते थे। स्त्रियाँ भूख की मार से विवश होकर अपनी देह का व्यापार करने लगीं थीं और वेश्यालयों में भरती हो रही थीं।"[३] "यह आकाल 'इंसान' का पैदा किया हुआ अकाल था। असल में बंगाल में केवल ६ हफ्ते के राशन की कमी थी और बाहर से अनाज मंगाकर और खाने पीने की चीजों का सबमें बराबर बराबर वितरण करके इस कमी को आसानी से दूर किया जा सकता था। लेकिन, ऐसा किया जाने के बजाय, बंगाल में अकाल पड़ा, और अकाल भी ऐसा कि उसकी लपेट में प्रान्त की एक

---

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचार धाराएँ - डॉ० उर्मिला जैन, पृष्ठ ६५-६६
२. एक व्यक्ति एक युग - नागार्जुन, पृष्ठ २१
३. भारत : वर्तमान और भावी-रजनी पामदत्त, पृष्ठ १००

तिहाई जनता आ गई। अनाज का सारा स्टाक बड़े-बड़े जमींदारों और व्यापारियों ने हथिया लिया था तथा घूसखोर नौकरशाही छिपा हुआ अनाज बाहर निकालने के बजाय, भाव बढ़ाने और करोड़ों आदमियों के जीवन से खिलवाड़ करने में इन अनाज चोरों की मदद कर रही थी। जनवरी १६४२ में चावल का भाव ६ रुपये मन था। नवम्बर १६४२ तक वह ११ रुपये मन हो गया। फरवरी-अप्रैल १६४३ में वह २४ रुपये मन, मई में ३० रुपये मन, जुलाई में ३५ रुपये मन, अगस्त में ३८ रुपये मन और अक्टूबर १६४३ में ४० रुपये मन हो गया। मुफस्सिल के जिलों में तो भाव ५० से लेकर १०० रुपये मन तक चला गया था। अकाल के दिनों में भी चावल हर जगह मिलता था और चाहे जितने परिमाण में मिल सकता था, लेकिन १०० रुपये मन का भाव देने पर ही।" [1]

दूसरे महायुद्ध के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट का सबसे अधिक असर गरीब मजदूर और किसानों को ही भोगना पड़ा। आजादी प्राप्त होने के बाद इस देश के कर्णधारों ने अपने ढ़ंग से किसानों और मजदूर तपके के लोगों की आर्थिक स्थिति ठीक करने का प्रयास किया। पंचवर्षीय योजनाओं में पर्याप्त धन कृषि तथा उद्योग-धन्धों पर व्यय किया गया। गरीबी दूर करने तथा देश में भुखमरी समाप्त करने के नये-नये संकल्प लिये गये। पं० नेहरू के शासन काल में और उसके बाद उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी के शासन में अनेक प्रकार के भूमि सुधार किये गये। कृषि को नयी-नयी वैज्ञानिक उपलब्धियों से लाभान्वित किया गया, मजदूरों के लिये अनेकों सुविधाओं की व्यवस्था की गई, किन्तु इन सारे प्रयत्नों के बावजूद देश से न तो गरीबी हटी और न ही आर्थिक विषमता। आज भी देश की अधिकांश जनता भुखमरी का शिकार है और उसे अत्यन्त घृणित जीवन-यापन करने के लिये विवश होना पड़ता है। इसके अनेक महत्वपूर्ण कारणों में से जनसंख्या का तीव्रता से बढ़ना भी एक कारण है। जितने परिमाण में देश का उत्पादन बढ़ा है उससे कई गुना अधिक संख्या में देश की आबादी बढ़ गयी है। पर आज आर्थिक

---

१. भारत : वर्तमान और भावी-रजनी पामदत्त, पृष्ठ १०१

असमानता के बीच जीते हुए भी भारतीय जन-मानस में इतनी जागरुकता अवश्य आ गयी है कि वह अपने अधिकारों के लिये संघर्षशील है और किसी भी कीमत पर अत्याचार और शोषण को बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं है। जगह-जगह संघबद्ध होकर हड़ताल और घेराव करके यहाँ की जनता अपनी मुसीबतों का और उभरती हुयी क्रान्ति-चेतना का उद्घोष करती है।

स्वतंत्र भारत की आठवें दशक की सरकार ने गरीबी और असमानता दूर करने के जो राजनीति प्रेरित हथकण्डे अपनाएँ हैं, उनसे एक नयी बात यह अवश्य हो गयी है कि अब छोटी जाति के लोग, जिन्हें सरकार आरक्षण का लोभ देकर वोट बटोरने का रास्ता अपनाती है, अपने संघर्ष की दिशा बदले की भावना से प्रेरित होकर चुनते हैं, जिससे वर्ग संघर्ष को बढ़ावा मिलता है।

३. साहित्यिक परिस्थितियाँ :-

वैसे तो भारतीय संस्कृति और साहित्य का रूख आमतौर से आदर्शवादी रहा है, किन्तु यथार्थ की सर्वत्र उपेक्षा की गयी हो- ऐसी बात नहीं है। यथार्थ को ही आदर्शीकृत रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा रही है। यथार्थ-जीवन चित्रण की यह विरल रेखा आधुनिक युग के स्पर्श से सघन होने लगती है और सर्वप्रथम भारतेन्दु काल में स्पष्ट रूप से यथार्थवादी रूझान के दर्शन होने लगते हैं। यद्यपि यह युग मूलतः सुधारवादी युग था, फिर भी अपने समय की ज्वलंत समस्याओं के प्रति इस युग के कवियों ने स्वयं को उदासीन नहीं रखा। प्रायः सभी कवियो में राष्ट्र की दयनीय स्थिति के प्रति क्षोभ का भाव था, और वे अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन जन-मानस को जागृति का संदेश देने के लिए आतुर थे। आर्थिक-विषमता की पीड़ा से त्रस्त गरीब जनता के कारुणिक चित्र इस युग के काव्य में सर्वाधिक हैं। अपने समय की सामाजिक कुप्रथाओं तथा शासकीय शोषण के यथार्थवादी चित्र अंकित करने की तड़प इस युग के कवियों में दिखाई पड़ती है। बाबू भारतेन्दु ने 'कवि-वचन-सुधा' के

मई १८७६ के अंक में लिखा था - "बाल-विवाह से हानि, जन्म-पत्री मिलाने की अशास्त्रता, बालकों की शिक्षा, अंग्रेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण-हत्या, फूट और बैर, बहु जातित्व और बहु-भक्तित्व, जन्म-भूमि से स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता, नशा, अदालत, स्वदेशी-हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना, इसी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन आदि पर छोटे-छोटे सरल देश भाषा में गीत और छन्दों की आवश्यकता है, जो पृथक्-पृथक पुस्तिकाकार मुद्रित होकर, साधारण जनों में फैलाए जायेंगे।"[1] भारतेन्दु के इस वक्तव्य से तत्कालीन कवियों के कर्तव्य-निर्वाह की लगन प्रमाणित हो जाती है और यह भी साफ हो जाता है कि वे अपनी सम-सामयिक, आर्थिक समस्याओं के प्रति कितने सजग थे।

भारतेन्दु युग में प्रभूत यथार्थ और सामाजिक चेतना की यह धारा द्विवेदी युग में और भी अधिक विकसित रूप धारण कर प्रवाहित हुई। अतीत प्रेम, वर्तमान के प्रति विक्षोभ, देश भक्ति, समाज सुधार और मानवतावादी दृष्टि का प्रसार इस युग की मूल प्रवृत्तियाँ हैं।[2] बाबू मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, श्रीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी जैसे ख्याति लब्ध द्विवेदी युगीन कवियों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति विद्यमान है। इन कवियों के काव्य में युग-दर्शन सच्ची संवेदना के साथ अंकित हुआ है। इन पर गाँधी जी का एकान्ततः प्रभाव था, इसलिए इनकी उक्तियाँ यथार्थवादी होते हुये भी समझौते और सुधार की नीतियों से भरपूर हैं।

छायावादी कविता यद्यपि अन्तर्मुखी और वैयक्तिक चेतना से सम्पन्न थी, किन्तु इसे भी पूर्णतः समाज निरपेक्ष और जन-जीवन से उदासीन कविता नहीं

---

१. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्णलाल हंस, पृष्ठ ८८ पर उद्धत

२. प्रगतिशील हिन्दी कविता - डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, पृष्ठ ५६

कहा जा सकता। युग जीवन की विषमताओं, विवशताओं और निराशा ने छायावादी कवियों व्यक्तिवादी बना दिया था। उनमें वास्तविक जन-जीवन से पलायन की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी थी, फिर भी वे पूर्ण रूपेण समाज-निरपेक्ष और देश के सामान्य जन-जीवन से सर्वथा विरत नहीं रहे। उनकी कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें उनकी समाजिकता और जन-जीवन की अभिव्यक्ति, परिलक्षित होती है।[1] प्रगतिशील आन्दोलन को उपर्युक्त भारतेन्दु युगीन, द्विवेदी युगीन तथा छायावादी कविता ने पृष्ठभूमि के रूप में आन्दोलित किया है, पर इन सबसे अधिक जिस विचार धारा का उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है, वह है - मार्क्सवादी विचार धारा। मार्क्स (१८१८-१८८३ ई०) एक जर्मन दार्शनिक था, जिसने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा की। मार्क्स के पूर्ववर्ती दार्शनिक केवल सृष्टि की व्याख्या करते आए थे, लेकिन मार्क्स ने समाज की सहज-ग्राह्य वैज्ञानिक व्याख्या के साथ-साथ उसके परिवर्तन का क्रान्तिकारी कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया। मार्क्स समाज में दो वर्गों की सत्ता मानता है - शोषक और शोषित। उसका सबसे बड़ा स्वप्न है- साम्यवाद की स्थापना, जो शोषित वर्ग के हाथों शोषक वर्ग के ध्वंश पर होगी। इसीलिये मार्क्स ने दुनिया के सभी शोषित मजदूरों को एक होकर संघर्षरत होने का आमंत्रण दिया था।

मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार साम्यवाद समाज की श्रेष्ठ अवस्था है और इस अवस्था की ओर क्रमशः संक्रमण करने के लिए सभी प्रगतिशील ताकतों को एकजुट होना चाहिये। साम्यवाद को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "कम्युनिज्म वर्ग हीन सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें उत्पादन साधनों पर एक ही प्रकार का सार्वजनिक स्वामित्व होगा और समाज के सभी सदस्यों में पूरी सामाजिक बराबरी होगी, उसमें जनता के सर्वांगीण विकास के साथ ही साथ विज्ञान और प्रविधि में निरन्तर प्रगति के आधार पर उत्पादक शक्तियों की बढ़ती होती रहेगी, सार्वजनिक सम्पत्ति के सभी स्त्रोत प्रचुरता से उमड़ते रहेंगे और 'प्रत्येक से उसके सामर्थ्यानुसार, प्रत्येक को उसकी

१. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्ण लाल हंस ,पृष्ठ ६७

आवश्यकतानुसार' वाला महान सिद्धान्त क्रियान्वित होगा। कम्युनिज्म है स्वतंत्र, चेतनाशील मेहनतकश लोगों को सुसंगठित समाज, जिसमें सार्वजनिक स्वशासन स्थापित किया जायेगा, ऐसा समाज जिसमें समाज के भले के लिए मेहनत करना हरेक की पहली बुनियादी जरूरत बन जायेगा, ऐसी जरूरत जिसे एक-एक व्यक्ति समझेगा-मानेगा और प्रत्येक व्यक्ति का सामर्थ्य जनता के अधिक से अधिक भले के लिए काम में लाया जायेगा।"[१]

साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव में संसार के विभिन्न भाग आन्दोलित हुए, किन्तु रूस ने बाजी मार दी और सन् १९१७ में लेनिन के नेतृत्व में रूस ने जारशाही का सफाया कर दिखाया। इसके बाद वहाँ सर्वहारा वर्ग का शासन स्थापित हुआ। रूस की इस क्रान्तिकारी विजय का संसार के अनेक देशों ने स्वागत किया। भारतीय जन-मानस में भी आर्थिक-सामाजिक क्रान्ति के लिए एक बड़ी सीमा तक उत्कंठा जागृत हुई। डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने भारतीय जन-जीवन की इस बदलती हुई मनोदशा को इन शब्दों में अंकित किया है – "आम जनता के उत्थान की दिशा में इस विशालकाय रूस ने जो लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाये थे और जो नई समाज-व्यवस्था बनाई थी और जिससे रूस के सभी भाग समान रूप से प्रभावित थे, उसको देखकर रूस और यूक्रेन से प्रेरणा लेकर यहाँ के लोगों में वैसा ही आन्दोलन करने, वैसा ही ढाँचा बनाने और वैसी ही सार्वजनिक स्वतंत्रता स्थापित करने की तीव्र उत्कंठा थी।"[२] वर्ग संघर्ष का यह मार्क्सवादी मंत्र इतना कारगर सिद्ध हुआ कि भारत में भी श्रमिकों और पूँजीपतियों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यहाँ का प्रबुद्ध वर्ग भी इस विचार धारा से अप्रभावित न रह सका और उसने पूँजीवादी अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध अपना क्षोभ व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया।

क्रमशः समूचे देश में एक जनवादी वातावरण उभरने लगा। कॉंग्रेस जैसी सुधारवादी संस्था भी स्वाधीनता आन्दोलन के साथ-साथ आर्थिक-सामाजिक ढाँचे

---

१. सोवियत संघ की कम्युनिष्ट पार्टी का संक्षिप्त इतिहास : प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ०सं० ३७८

२. प्रगतिशील हिन्दी कविता – डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, पृष्ठ ४४ पर उद्धत।

को परिवर्तित करने के बुनियादी सवालों को उठाने लगी। सन् १६३४ में कॉंग्रेस के अन्तर्गत समाजवादी पार्टी की स्थाना हो गयी, जिसने स्पष्ट रूप से समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित किया। सन् १६३६ में पं० जवाहर लाल नेहरू ने लखनऊ कॉंग्रेस के सभापति पद से एक अत्यन्त ओजस्वी और क्रांतिकारी भाषण दिया, जिसमें साम्राज्य विरोधी ताकतों तथा मध्यम वर्ग के लोगों को एक साथ लेकर किसान-मजदूरों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने के सम्बन्ध में जोर दिया गया। उन्होंने अपने भाषण में अपनी आन्तरिक इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि "मैं तो चाहता हूँ कि कॉंग्रेस एक समाजवादी संगठन बन जाये और दुनिया की दूसरी शक्तियों के साथ जो एक नयी सभ्यता को लाने के लिये प्रयत्नशील हैं, सहयोग करे।"[1]

एक ओर जहाँ सामान्य जन-मानस पर साम्यवादी क्रान्ति का स्वप्न अपनी जड़ें मजबूत करता जा रहा था, वहीं दूसरी ओर भारत का साहित्यकार भी इस स्वप्न को साकार करने के लिए अपनी लेखनी पैनी करने लगा। मार्क्सवादी चेतना क्रमशः हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। छायावाद की अतिशय वायवीयता तथा चमत्कार प्रधान अतिरंजनापूर्ण चित्रण से डूबे हुये कवि और लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित यथार्थवादी रूझान की रचनाएँ प्रस्तुत करने की ओर उन्मुख हुए। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' तथा 'गबन' जैसे उपन्यासों में किसान-मजदूर तथा सामान्य जनता के दुःख दर्द अपने वास्तविक रूप में अभिव्यक्ति पाने के हकदार बने। भारतीय नारी के शोषित तथा त्रसित रूप के 'निर्मला' एवं 'सेवासदन' जैसी कृतियों में उभारा गया। इस शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अपने पात्रों के माध्यम से लेखक ने क्रान्ति की आवाज भी बुलन्द की। प्रगतिशील चेतना की यह अभिव्यक्ति मात्र कथा साहित्य तक ही सीमित नहीं रही। अनेक समर्थ कवियों ने देश की दयनीय स्थिति के यथार्थ रूप को अपनी कविताओं की विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया। पंत और निराला जैसे समर्थ छायावादी स्तम्भ भी प्रगतिशील चेतना से अप्रभावित न रह सके। पंत की 'युगवाणी', निराला की

---

१. प्रगतिशील हिन्दी कविता - डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, पृष्ठ ४५ पर उद्धत।

'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' तथा दिनकर की 'लेनिन के दिल की चिनगारी' जैसी कविताओ को इसके प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। दलितों और शोषितों के प्रति सहानुभूति की भावना से प्रेरित अपनी लेखनी उठाने वाले अन्य महत्वपूर्ण कवियों में भगवती चरण वर्मा, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा 'त्रिशूल' के नाम लिये जा सकते हैं। २८ जनवरी १६३४ के 'जागरण' में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र ने अपने सम्पादकीय वक्तव्य में साम्यवादी चेतना का समर्थन इन शब्दों में किया, "साम्यवाद का विरोध वही तो करता है, जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है। जो अपने को भी दूसरों के बराबर समझता है, जो अपने में कोई सुर्खाब का पर लगा हुआ नहीं देखता, जो समदर्शी है, उसे साम्यवाद से विरोध क्यों होने लगा।"[१] हंस' एवं 'जागरण' पत्रों के माध्यम से भी साम्यवादी विचारधारा को पनपने और फैलने की सुविधा मिली। कविता के वस्तु और शिल्प में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की दशा में कवियों की उत्सुकता जागी और काव्य में प्रथम बार जन सामान्य की भावनाओं को समादर मिला। कवियों का ध्यान "उस विस्तृत लोक जीवन की ओर आकृष्ट हुआ, जहाँ अशिक्षा, दैन्य, अन्धकार, शोषण तथा दासता का निकृष्टतम रूप मिलता है और हमारी मानवीय भावना को कठोर आघात पहुँचता है।[२] छायावाद की काल्पनिक उड़ानें शान्त होने लगीं और एक ठोस सामाजिक धरातल पर कविता अपनी पोषण-सामग्री तलाशने लगी।" जो कविता छायावादी युग तक दिल से या गले से निकल रही थी, वह अब दिमाग से निकलने की गवाही देने लगी।[३] एक दलगत आन्दोलन के रूप में प्रगति-शील-चेतना साहित्य में अपना एकाधिकार करने के लिए छटपटाने लगी और उपयुक्त समय पाकर सन् १६३६ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की औपचारिक स्थापना हो गयी। संघ की स्थापना के बाद जिस प्रगतिशील चेतना से सम्बद्ध साहित्य का सृजन हुआ है, उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य के नाम से जाना जाता है।

---

१. प्रगतिशील हिन्दी कविता - डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, पृष्ठ ६६ पर उद्धत।

२. कला और संस्कृति - सुमित्रा नन्दन पंत, पृष्ठ १६

३. हिन्दी की हास्य-व्यंग विधा का स्वरूप और विकास - डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ ४

४. प्रगतिवाद का अर्थ, उद्देश्य और विकास :-

छायावाद के पश्चात् हिन्दी साहित्य में जिस काव्यधारा ने तीव्र गति से अपना स्थान बनाया, वह 'प्रगतिवाद' के नाम से जानी जाती है। सन् १६३६ से १६४३ के मध्य लिखा गया काव्य प्रगतिवाद के अन्तर्गत माना गया है।

प्रगतिवाद उस कथन-भंगिमा की ओर संकेत करता है जिसमें आगे बढ़ने का गुणात्मक, परिवर्तन करने का संदेश दिया गया है। "जो साहित्य प्रतिक्रियावादी, पूँजीवादी प्रवृत्ति, मनोवृत्ति और व्यवस्था का विरोधी है, वही प्रगतिवादी साहित्य है।"[१]

"प्रगति के सम्बन्ध में मार्क्सवादी धारणा ही मुख्यतः हिन्दी की प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि है। मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानववाद है, जिसे राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद, दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक वस्तुवाद और समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है।" [२]

'प्रगति' अंग्रेजी के 'प्रोग्रेस' का रूपान्तर है। प्रोग्रेस का अर्थ होता है - आगे बढ़ना, एक ऐसा परिवर्तन लाना जो किसी वस्तु, गुण या परिमाण में वृद्धि ला सके।[३] 'वाद' संज्ञा है जो संस्कृत भाषा की धातु 'वद्' से बना है। 'वद्' का अर्थ होता है - बोलना। इसलिये 'वाद' का अर्थ हुआ 'कथन'।[४] इस प्रकार शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से 'प्रगतिवाद' उस विशिष्ट कथन-भंगिमा की ओर संकेत करता है, जिसमें आगे बढ़ने का गुणात्मक परिवर्तन करने का संदेश दिया गया हो।

हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिवाद' शब्द का प्रयोग आधुनिक युग की एक विशिष्ट काव्य-प्रवृत्ति के अर्थ में किया गया है। डॉ० नगेन्द्र ने सीधे-सीधे प्रगतिवाद को

---

१. डॉ० कृष्णलाल हंस - प्रगतिवादी काव्य साहित्य : पृष्ठ १४
२. डॉ० रणजीत - हिन्दी की प्रगतिशील कविता : पृष्ठ ३१
३. हिन्दी साहित्य कोश - सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ५०६
४. मार्क्स और गाँधी का साम्य दर्शन - नारायण सिंह, पृष्ठ ६५

साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति माना है। [1] विश्वम्भर मानव की दृष्टि में भी "राजनीति में जो मांर्क्सवाद है, साहित्य में वह प्रगतिवाद है। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप है।"[2] स्पष्ट है कि प्रगतिवाद में मार्क्स दर्शन का व्यापक प्रभाव अन्तर्भूत है। इस तथ्य को अधिक स्पष्टता के साथ लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इस प्रकार व्यक्त किया है "प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद' के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी। प्रगतिवाद का उद्देश्य था सहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करना जो छायावाद के पतनोन्मुख काल की विकृतियों को नष्ट करके एक नये साहित्य और नये मानव की स्थापना करे, और उस सामाजिक सत्य को, उसके विभिन्न स्तरों को साहित्य में प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे। वर्ग संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा और उस संदर्भ में नये मानव 'नये हीरो' की कल्पना इस साहित्य का उद्देश्य था इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुयी थी। इसका उद्देश्य और लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संघटित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के आधार पर निर्मित मूल्यों को प्रतिष्ठित करना था। उसकी आत्मा साम्यवाद में थी, दृष्टि रूस के साहित्यिक इतिहास की ओर थी, प्रेरणा राजनीतिक मन्तव्यों द्वारा अनुशासित थी और कल्पना प्रोलेतेरियत सत्ताशाही से अनुप्राणित थी। इसकी खोज उस नये मानव की थी, जो समस्त पतन-शील प्रवृत्त्यिों के विरोध में उपर्युक्त स्थापनाओं को विकसित करके एक प्रोलेतेरियत शासन सत्ता को उभरने का अवसर दे। इसकी मूल स्थापना सैद्धान्तिक रूप से प्रतिशील थी, इसलिये इस साहित्यक आन्दोलन को 'प्रगतिशील आन्दोलन' के नाम से भी जाना जाता है।" [3]

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ १००

२. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृष्ठ ३०३ पर उद्धत।

३. हिन्दी साहित्यकोश - सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ,पृष्ठ ५११

वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति असन्तोष, समाज का यथार्थवादी चित्रण, रूस और उसकी साम्यवादी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रेम की उद्भावना, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना, शोषितों के प्रति सहानुभूति तथा जागृति का संदेश, पुरातन परिवर्तन तथा नये युग के निर्माण की प्रबल आकांक्षा, समसामयिक घटनाओं के प्रति सजगता, मानवशक्ति में विश्वास, ईश्वर तथा धर्म के प्रति क्षोभ- भावना, नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण, आशा और आस्था का स्वर, शिल्प की अपेक्षा वस्तु का महत्व स्थापन आदि कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं, जिन्हें लगभग सभी प्रतिशील कवियों ने न्यूनाधिक मात्रा में ध्वनित किया है।

प्रगतिवाद के विकास पर विचार करते हुये यह कहा जा सकता है कि विचार हवा से पैदा नहीं होते। निश्चित सामाजिक परिवेश ही निश्चित विचारों के जन्म की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इसलिये प्रगति की निश्चित धारणा भी मानव-विकास की एक निश्चित मंजिल पर जाकर ही साकार हुई है, यद्यपि इसे रूपाकार देने वाले तत्व युगों से एकत्र और पूँजीभूत होते रहे हैं। "इस प्रकार मानव प्रगति की धाराणा एक ऐसा सिद्धांत है, जो अतीत की घटनाओं के संश्लेषण और आने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी से मिलकर बनता है। यह सिद्धांत इतिहास की उस व्यवस्था पर आधारित है, जो मनुष्य को क्रमशः एक उचित दिशा में विकास करता हुआ देखती है और निष्कर्ष निकालती है कि उसके विकास की यह प्रक्रिया अनन्तकाल तक इसी तरह चलती रहेगी।" [1]

कहने के लिये इस वाद का जन्म भले ही यूरोप मे सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के पश्चात् और भारतीय साहित्य में सन् १९३६ में बाबू प्रेमचन्द्र के सभापतित्व मे होने वाले "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" के प्रथम अधिवेशन के

---

१. जे०वी०बरी - द आइडिया ऑफ प्रोग्रेस : पृष्ठ ६, ७

साथ हुआ हो, किन्तु इस वाद का जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। रूसी क्रान्ति के बहुत पहले यूरोप में एक ऐसी विचार-सरणी जन्म ग्रहण कर चुकी थी, जिसका क्रमिक विकास हमें इस क्रान्ति के पश्चात् 'प्रगतिवाद' के रूप में परिलक्षित हुआ। इसकी पृष्ठभूमि में वे चिन्तन सरणियाँ थीं, जो साहित्य जगत में 'मानवता-वाद' और 'यथार्थवाद' के नाम से जानी जाती हैं।

प्रगतिवादी साहित्य का जन्म सर्वप्रथम सन् १६०७ में इटली में हुआ, जबकि मारनेती ने "भविष्यवाद" नामक एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया। उसने कहा कि "संसार अब एक नये रूप में परिवर्तित हो चुका है। सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी मान्यताएँ बदल चुकी हैं। अतः उसके साहित्य की मान्यताएँ अपरिवर्तित नहीं रखी जा सकतीं, उसके मूल्य और मापदण्ड में भी नवीन दृष्टि-कोण आवश्यक है।" उसने रूढ़िवादी विचारों का ही विरोध नहीं किया बल्कि साहित्यिक परम्पराओं में भी अभूतपूर्व परिवर्तन की घोषणा कर दी। छंदों की श्रृंखला भंग कर दी गयी और व्याकरण के नियमों को तिलांजली दे दी। उन्होंने कहा कि अब चन्द्र और कमल में सौंदर्य - दर्शन न कर यन्त्रों में किया जाना चाहिये।

इसके पश्चात् सन् १६१८ में जब रूस में जार शाही का अन्त होकर 'मार्क्सवादी बोलशेविक दल' की सत्ता स्थापित हो गई तो वहाँ के साहित्य में भी एक नया परिवर्तन देखने को मिला। इस समय से पहले काव्य में रूप को ही अधिक महत्व दिया जाता था, किन्तु इसके पश्चात् ही रूसी काव्य-जगत मे यथार्थवाद का प्रवेश हुआ। अब रूसी साहित्य में मार्क्सवादी बोलशेविज्म ही साहित्य-सृजन का मूलाधार हो गया। इस साहित्य ने सामान्य जनता के हृदय में राजसत्ता प्राप्त करने की लालसा पैदा कर डाली। रूसी साहित्य में आर्थिक विषमता दूर कर वर्गहीन समाज की स्थापना की भावनाओं ने अपना स्थान बना लिया। रूसी साहित्य में पैदा हुई यह चिंगारी सन् १६३० के पश्चात् अंग्रेजी साहित्य में भी प्रस्फुटित होने लगी। अंग्रेजी साहित्य में

मार्क्सवादी विचारधारा का समावेश हुआ। अब वहाँ के कवियों ने उच्च-वर्ग के मनोरंजन हेतु काव्य न कर, गरीब वर्ग हेतु साहित्य सृजन आरम्भ कर दिया। उन्होंने भी अपने काव्य में पूँजीवाद, शोषण आदि की कटु आलोचना की तथा साथ-साथ श्रमिकों में विद्रोहात्मक भावनाएँ पैदा की।

सन् १६१८ की रूसी क्रान्ति का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। उस समय अंग्रजी सत्ता की कठोरता और पूँजीपतियों के शोषण के चक्र में फंस कर जिस दुःख एवं कठिनाई का अनुभव जनसाधारण कर रहा था, उससे कवि भी अपरिचित न थे। अतः सन् १६२५ में कुछ भारतीय तरूणों ने यहाँ साम्यवादी दल की स्थापना की और उसके मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रचार आरम्भ हो गया। हिन्दी काव्य साहित्य छायावाद और रहस्यवाद की भावनाओं को लेकर आगे बढ़ रहा था। इन दोनों काव्य-वादों का आधार व्यक्तिवाद था; अतः यह काव्यधारा मार्क्सवादी विचारधारा के अनुकूल न थी। मार्क्सवादी साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव से तत्कालीन कवि और साहित्यकार प्रभावित होने लगे और हिन्दी साहित्य में नयी विचारधारा का अभ्यास होने लगा। इस परिवर्तित होती विचारधारा के अनुरूप ही इन्हीं दिनों डॉ० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य, जे०सी० घोष, एम० सिन्हा आदि नवोदित लेखक जो लन्दन में थे, ने सन् १६३५ में "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" नामक संस्था को जन्म दिया और इस संस्था की स्थापना के उद्देश्यों एवं योजनाओं पर प्रकाश डालने वाला एक विस्तृत परिपत्र अपने भारतीय मित्रों को भेजा। इस परिपत्र के अनुसार - "भारतीय समाज में नित नये परिवर्तन होते जा रहे हैं। प्राचीन रूढ़िवादी विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं और इस प्रकार एक नये समाज का जन्म होने जा रहा है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि भारतीय साहित्यकार वहाँ के जन-जीवन में होने वाले इस क्रान्तिकारी परिवर्तन को शब्द रूप दें और इस प्रकार राष्ट्र की प्रगति में सहायक हो। ..... वह सब, जो हमें निष्क्रिय, अकर्मण्य और अन्ध विश्वासी बनता है, हेय है।

हम उसी को प्रगतिशील समझते हैं चली आयी रूढ़ियों को बुद्धि की कसौटी पर कसने को प्रोत्साहित करता, हमें संगठनात्मक सर्जना की प्रेरणा देता है।

परिपत्र का उद्देश्य बतलाते हुए आगे कहा गया था - "इस संस्था का उद्देश्य भारत के विभिन्न भाषा-भाषी लेखकों का संगठन कर ऐसे प्रगतिशील साहित्य की रचना करना है, जो कलात्मक एवं सामाजिक उत्थान की दिशा में प्रवृत्त हो सकें।"[1]

इन तरूण पीढ़ी के लेखकों का प्रथम अधिवेशन १९३६ में लखनऊ में हुआ। इसकी अध्यक्षता प्रेमचन्द ने की। प्रेमचन्द ने अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा-''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक हैं जो हमारे हृदय पर संसार की नश्वरता का अधिपत्य दृढ़ करते हैं और जिसमें हमारा हृदय निराशा से भर जाये। हमें उस साहित्य की आवश्यकता है, जो हमारी बदलती हुई मान्यताओं, परम्पराओं और मूल्यों के अनुरूप हों। साहित्य का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत विकास अथवा मनोरंजन नहीं है, जीवन तथा समाज की छवियों को अपने में मूर्त कर मानव समाज का कल्याण करना है।"[२] उन्होंने आगे कहा - "उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हमें अपनी दुरवस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गये और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।"[३]

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन सन् १९३८ में कलकत्ता में हुआ। इसकी अध्यक्षता डॉ० रविन्द्रनाथ टैगोर ने की। इस अधिवेशन के घोषणा पत्र में देश की तत्कालीन आर्थिक स्थिति, सामाजिक एवं साहित्यिक स्थिति पर

---

१. सम्पादक प्रेमचन्द - हंस (पत्रिका) १९३६ में प्रकाशित

२. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य : पृष्ठ ९,१०

३. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य : पृष्ठ १०

विचार विमर्श हुआ तथा कट्टरपंथियों, रूढ़िवादिता, अध्यात्म एवं निष्क्रिय आदर्शवाद की कड़ी आलोचना करते हुये पूर्ण सजगता के साथ ऐसे साहित्य के निर्माण का भारतीय लेखकों से आग्रह किया गया जो एक नये विश्व के निर्माण में सक्षम हो। इस घोषणा पत्र का उद्देश्य यह था कि "जो साहित्य और अन्य कलाएँ रूढ़िपन्थी हाथों में पड़ कर निर्जीव होती जा रहीं हैं, उनको उन हाथों से मुक्त करा के उनका निकटतम सम्बन्ध जनता से कराना और उन्हें जीवन के यथार्थ का माध्यम तथा नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है।"[1]

इस द्वितीय अधिवेशन द्वारा देश के विभिन्न भाषा-भाषी लेखकों में प्रगतिवादी चेतना का व्यापक प्रसार हुआ। परिणाम-स्वरूप प्रथम अधिवेशन की चेतना अधिक प्रखर होकर भारतीय लेखकों में दृष्टिगोचर होने लगी। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेम और सौन्दर्य की कोमलकान्त पदावली में अभिव्यंजना करने वाले छायावादी कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त सन् १९३६ में 'युगान्त' के द्वारा छायावादी युग की समाप्ति की घोषणा कर सन् १९३७ में ही 'युगवाणी' का गान करने हिन्दी-काव्य-साहित्य के प्रांगण मे उपस्थित हो चुके थे। वे हमें अपनी इसी कृति के साथ प्रगतिवादी काव्य के प्रांगण में उपस्थित हो चुके थे । वे हमें अपनी इसी कृति के साथ प्रगतिवादी काव्य के प्रथम उन्नायक के रूप में दिखाई देते है।

सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। न केवल यूरोप, वरन् विश्व के अन्य देश भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। मानव-जगत के सम्मुख फासिज्म का संकट उपस्थित हो गया। यह संकट विश्व के राष्ट्रों को ही नहीं, पर हमारी समस्त कलाओं और साहित्य की महान् मूल्यवान सम्पत्ति भी मिटा देना चाहता था ; अतः समस्त बुद्धिजीवियों और प्रगतिशील साहित्यकारों ने अपनी इस चिर संचित सम्पत्ति की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा और वे इस चुनौती का सामना

---

१. शिवदान सिंह चौहान - प्रगतिवाद : पृष्ठ ३३७

करने को उद्यत हो गये। सन् १९४२ में दिल्ली में भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघ का तृतीय अधिवेशन आयोजित हुआ। फासिज्म का विरोध ही इस अधिवेशन का प्रमुख उद्देश्य था; अतः यह प्रगतिशील लेखकों का सम्मेलन वास्तविक रूप मे 'फासिज्म-विरोधी सम्मेलन' ही बन गया। इसमें न केवल प्रगतिशील लेखकों ने, वरन् उन अनेक बुद्धिजीवियों ने भी भाग लिया, जो फासिज्म को विश्व-मानव-संस्कृति का विनाशक मानते थे। इस अवसर पर देश के चुने हुए लेखकों और अन्य बुद्धिजीवियों के हस्ताक्षर से एक पत्रक भी यूरोप में होने वाले फासिज्म-विरोधी सम्मेलन को भेजा गया और उस सम्मेलन को भारत के सहयोग का आश्वासन दिया गया। इस सम्मेलन के घोषणा पत्र में कहा गया था कि "फासिज्म की विजय ने समस्त प्रगतिशील आन्दोलनों और विचारों को ठेस पहुँचाई है, सांस्कृतिक आत्माभिव्यक्ति के मूल स्त्रोत को बन्द कर दिया गया है, जनता के उत्तराधिकार का नृशंसता से विनाश किया है। आज की दुनिया में फासिज्म की विजय का मतलब एक नये अन्ध ाकार युग की शुरुआत होगी और इस संकट को दूर करने में जनता को अपना कर्तव्य पूरा करना होगा।"

इसके पश्वात् प्रगतिशील लेखक संघ का चतुर्थ अधिवेशन सन् १९४३ में श्रीपाद अमृत डांगे की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन के घोषणापत्र में कहा गया था - "इस गम्भीर संकट के काल में हिन्दुस्तान के प्रगतिशील लेखकों का कर्तव्य है कि वे राष्ट्र के मनोबल को दृढ़ बनायें। उनका फर्ज है कि वे साहस और संकल्प को मजबूत करें, ताकि हमारी आजादी का दिन नजदीक आये, हमारी संस्कृति और सभ्यता सुरक्षित रहे, उनकी उन्नति हो और हम कठिन संकट-काल से स्वतंत्र, शक्तिशाली तथा संगठित होकर निकल सकें। प्रगतिशील लेखक सदा से भारत की स्वतंत्रता और देश में एक न्यायोचित सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के लिये लड़ते रहे हैं। यही नहीं, उन्होनें हर प्रकार की सामाजिक प्रतिक्रिया और प्रगतिविरोधी विचारधारा के खिलाफ भी संघर्ष किया है। हिन्दुस्तान

की स्वतन्त्रता को उन्होनें विश्व की स्वतन्त्रता के एक अभिन्न अंग के रूप में समझा है और जहॉ उन्होनें जनता के हर प्रकार के साम्राज्यवादी प्रभुत्व से मुक्त होने और अविछिन्न अधिकार की घोषणा की है, वहॉ उन्होनें फासिज्म का विरोध भी किया है, जो साम्राज्यवादी सत्ता का खूँखार रूप है।"[1]

इस अधिवेशन के द्वारा भारतीय प्रगतिशील लेखकों का रचनात्मक कार्यों के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ। संघ का पंचम अधिवेशन भी बम्बई में ही सन् १९५० में एक श्रमिक कवि श्री अण्णा भाऊ साठे की अध्यक्षता में हुआ था, किन्तु अधिवेशन पर शासन की ओर से रोक लगा देने के कारण यह बम्बई शहर के एक पड़ोस में हुआ था। कार्यवाही - संचालक डा० रामविलास शर्मा थे। षष्ठ अधिवेशन सन् १९५३ में दिल्ली में हुआ, जिसमें लेखकों को उनके सामाजिक और साहित्यिक दायित्वों के प्रति सचेत किया गया था। इसके पश्चात् सन् १९६७ तक इसका कोई अधिवेशन न हो सका। संघ का अन्तिम अधिवेशन, सन् १९६८ में दिल्ली में डा० निहार रंजन रे की अध्यक्षता में हुआ था। उस काल की राजनीतिक और साहित्यिक स्थिति इसके अनुकूल प्रमाणित न हो सकी। परिणाम - स्वरूप धीरे-धीरे इस संघ का अस्तित्व ही समाप्त हो गया, किन्तु इसमं कोई सन्देह नहीं कि आरम्भीय चार अधि ावेशनों के द्वारा भारतीय लेखकों में एक नवीन सर्जनात्मक जागृति का संचार हुआ। फलतः प्रगतिवादी साहित्य का एक वृहत् परिमाण में निर्माण हुआ। प्रगतिवादी चिन्तन-सारणी केवल काव्य तक ही सीमित नहीं रही, अपितु गद्य की विधाऍ, कहानी, उपन्यास आदि तक भी इससे प्रभावित थीं और प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अन्य भारतीय भाषाओं की तरह हिन्दी में भी अनेक मूल्यवान गद्य-कृतियों का निर्माण हुआ। इतना ही नहीं, पर हिन्दी में एक नवीन 'प्रगतिवादी आलोचना शैली का भी आविभवि हुआ।'

---

१. शिवदान सिंह चौहान - प्रगतिवाद : पृष्ठ ३३७

इस अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघ प्रगतिशील लेखक-संघ के अनुकरण पर 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक-संघ' का भी निर्माण हुआ, जिसका प्रथम अधिवेशन सन् १९४७ में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में हुआ। राहुल जी ने प्रगतिवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था- "प्रगतिवाद कोई कल्ट (Cult) या संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतंत्रता का नहीं, परन्त्रता का शत्रु है। प्रगति जिसके रोम-रोम में भींज गई है, प्रगति ही जिसकी प्रकृति बन गयी है, वह स्वयं सीमाओं का निर्धारण कर सकता है। उसकी सीमा अगर कोई है, तो यही कि लेखक और कलाकार की कृतियां प्रतिगामी शक्तियों की सहायक न बने। प्रगतिवाद कला की अवहेलना नहीं करता। यह रूढ़िवाद और कूप-मण्डूकता का विरोधी है।"[1]

'अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ' के अतिरिक्त स्थान-स्थान में प्रादेशिक और जिला संघों का भी निर्माण हुआ, जिनमें 'उत्तर प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ' तथा 'काशी प्रगतिशील लेखक संघ' विशेष उल्लेखनीय है। 'उत्तर प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन सन् १९४१ में श्री राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में, द्वितीय अधिवेशन श्री नरोत्तम नागर की अध्यक्षता में सन् १९५० में तथा तृतीय अधिवेशन सन् १९५२ में हुआ। यह तृतीय अधिवेशन हिन्दी और उर्दू के लेखकों का सम्मिलित अधिवेशन था। इन अधिवेशनों से प्रगतिवादी साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई।

'काशी प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन पं०अम्बिका प्रसाद बाजपेयी की अध्यक्षता में सन् १९४२ में तथा द्वितीय अधिवेशन आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की अध्यक्षता में सन् १९४५ में हुआ। प्रथम अधिवेशन में जहाँ केन्द्रीय अथवा

---

१. 'हंस' : अक्टूबर, १९४७

राष्ट्रभाषा तथा जनपदीय भाषाओं के विकास पर बल दिया गया, वहाँ द्वितीय अधिवेशन में प्रगतिशील लेखकों से जातीय संकीर्णता एवम् साम्प्रदायिकता से दूर रहकर साहित्य निर्माण का आग्रह किया गया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपने अध यक्षीय भाषण में कहा- "प्रगतिशील साहित्य से तात्पर्य प्रगति से है। यह विचारधारा अभी नवीन है। इसके मूल में समाजवादी राष्ट्रीयता है। ... हमारा प्रगतिशील साहित्य अभी स्वरूप दिशा पर नहीं पहुंचा है। हमारी चेष्टाएं अत्यधिक नकारात्मक है। हममें व्यंग्यात्मकता आ गयी है। हम बौद्विक दृष्टि से क्रान्तिकारी है, किन्तु हमारी सांस्कृतिक दृष्टि बदली नहीं है। यह वैषम्य नवीन साहित्य में स्पष्ट है। ... जो कुछ हो, पर इस नवीन आन्दोलन में प्राण है, इसी से नवीन कला का जन्म होगा।" [१]

श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर ने इस अवसर पर कहा था- "राष्ट्रीय और प्रगतिशील साहित्य दो भिन्न-भिन्न वस्तुएं नहीं है। प्रगतिशील साहित्य का राष्ट्रीय होना अनिवार्य है।"[२]

हिन्दी में प्रगतिवादी विचारधारा को लेकर बाबू प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में 'हंस' प्रकाशित हो ही रहा था, जो श्री शिवदान सिंह चौहान के सम्पादक होने पर पूर्ण रूप से प्रगतिवादी पत्र बन गया। इसके अतिरिक्त पूर्वोल्लेखित पं० सुमित्रानन्दन पन्त और नरेन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित 'रूपाभ' तथा आचार्य नरेन्द्र देव, प्रेमचन्द और सम्पूर्णानन्द के संयुक्त सम्पादन में प्रकाशित 'जागरण' से प्रगतिवादी आन्दोलन को महत्वपूर्ण योग प्राप्त हुआ तथा अनेक प्रगतिवादी लेखक एवम् कवि अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं को लेकर हिन्दी जगत में नवतरित हुए, जिनमें डा. रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय आदि प्रमुख थे।

---

१. 'हंस' : मार्च, १९४५

२. 'हंस' : मार्च, १९४५

प्रगतिशील आन्दोलन के उपरोक्त ऐतिहासिक विकास क्रम से स्पष्ट हो जाता है कि इस आन्दोलन का संघबद्ध रूप अधिक दिनों तक क्रियाशील नहीं रह सका। इसके प्रारम्भिक दौर में इसे समर्थन देने वाले प्रेमचन्द और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान सृष्टा मार्क्स की मान्यताओं पर आस्था रखते हुए भी उदार मानवतावादी थे, इसी कारण प्रगतिशील आन्दोलन काफी जोर-शोर के साथ प्रारम्भ हुआ, किन्तु शीघ्र ही इसमें तथाकथित मार्क्स वादी अपनी संकीर्ण भाव-भूमियों के साथ प्रविष्ट होने लगे और आन्दोलन का प्रभाव मन्द पड़ने लगा। प्रारम्भिक चार अधिवेशनों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करके आन्दोलन अशक्त पड़ गया और इसका संगठित रूप बिखरने लगा। वास्तव में "द्वितीय विश्व" युद्ध के पूर्व प्रगतिवाद ने जो स्थान प्राप्त किया था, वह स्थान उसने युद्ध और युद्धोत्तर काल में कम्युनिस्ट पार्टी की नीति और प्रगतिवादी आलोचकों की अदूर दर्शिता पूर्ण आलोचनाओं के कारण खो दिया।[1] सच्चिदानन्द वात्स्यायन की दृष्टि में- "क्रमशः प्रगतिशील आन्दोलन में 'शील' का स्थान 'वाद' ने ले लिया। जिनके नाम और प्रतिष्ठा के आधार पर प्रगतिशील लेखक संघ संगठित हुआ और पनपता रहा, वे एक-एक कर उससे अलग हो गये या अलग कर दिये गये।"[2] जैसे ही इस आन्दोलन में वादीय भूमिका जोर पकड़ने लगी, वैसे ही इस आन्दोलन का दम घुटने लगा। आचार्य शुक्ल ने बिल्कुल ठीक लिखा है- 'काव्य क्षेत्र में किसी 'वाद' का प्रचार धीरे-धीरे उसकी सरसता को ही चर जाता है। कुछ दिनों में लोग कविता न लिखकर 'वाद' लिखने लगते है।"[3] प्रगतिशील आन्दोलन के साथ भी

यही हुआ। प्रगतिशील आन्दोलन के तथाकथित समर्थक कविता की जगह 'वाद' लिखने में ही अपनी सार्थकता समझने लगे। इन्हीं दुराग्रहों के कारण

---

१. छायावादोत्तर काव्य-सिद्धेश्वर प्रसाद, पृष्ठ ४१

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य सच्चिदानन्द वात्स्यांयन, पृष्ठ ३२

३. आचार्य शुक्ल : प्रतिनिधि निबन्ध - सं० सुधाकर पाण्डेय पृष्ठ १२६

प्रगतिशील आन्दोलन क्षीण पड़ गया। शमशेर बहादुर सिह ने प्रगतिशील आन्दोलन की इस क्षीयमान रेखा को इन शब्दों में उजागर किया है "हिन्दी का प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन सन् ३७-३८ से लेकर लगभग ५२ तक अपना जैसा-तैसा रोल पूरा करके खासा निःशक्त हो गया। इस आन्दोलन में पंत, निराला, नरेन्द्र, सुमन और कुछ लोक कवियों के बाद जो चार कवि दृढ़ता से बराबर जनता के मनोबल में विश्वास रखते हुए अपना नाता उसकी आंतरिक शक्तियों से जोड़ रहे थे, वे मात्र केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और नागार्जुन थे। शेष सभी कवि व्यक्तिगत साधनाओं की ओर उन्मुख होकर साहित्य की प्रगतिशील धारा के लिये खो गये।"[1] इस सम्बन्ध में स्वयं प्रगतिशील आलोचक और कवि यह मानने को विवश हो गये कि प्रगतिशील आन्दोलन में संकीर्णता आती जा रही है। डॉ० रामविलास शर्माने इस कमी की ओर इन शब्दों में संकेत किया है- "सन् ४७ के बाद एक ओर सामाजिक दायित्व से बचकर साहित्य रचने की प्रकृति पंत के रहस्यवाद, भारत-भूषण आदि के प्रयोगवाद में बलवती हुई। इन रूझानों का एक पक्ष यह था कि कला की अवहेलना करके केवल सामाजिक विषय वस्तु पर बल दिया जाये। सिद्धान्त के अलावा व्यवहार में बहुत सी 'प्रगतिशील कविताएं ऐसी लिखी जाती थीं, जिनमें चीत्कार-फूत्कार के अलावा न यथार्थवादी चित्रण होता था, न कलात्मक सौन्दर्य।"[2] प्रगतिवादी काव्य का युग हिन्दी में अधिक काल तक नहीं रहा। वस्तुतः १६३६ के लगभग प्रारम्भ होते हुए सन् १६४७-४८ तक ही उसके क्रिया-कलाप हिन्दी के साहित्यिक रंगमंच पर अपनी प्रमुखता सूचित कर सके।[3]

प्रगतिशील आन्दोलन की इस असामयिक मृत्यु के कारणों का संधान करते हुए प्रमोद वर्मा ने संकेत दिया है कि "प्रगतिशील आन्दोलन के भटकाव या असमय मृत्यु के लिये बहुत हद तक गलत नेतृत्व ही जिम्मेदार था। शीर्षस्थ लेखकों,

---

१. केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व- सं० श्रीप्रकाश, पृष्ठ ४०

२. नयी कविता और अस्तित्ववाद- डॉ० रामविलाश शर्मा पृष्ठ २६

३. प्रगतिवादी काव्य - श्री उमेशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ २८६

विचारकों की वैचारिक अन्धता, व्यक्तिवादी अहंकार साहित्य की सही समझ का अभाव तथा आपसी मनमुटाव ने प्रगतिवादी शिविर को इतना कमजोर बना दिया कि छठें दशक में विरोधियों के एक ही हमलें में उसके पैर उखड़ गये।[1]

डॉ० कृष्ण लाल हंस के अनुसार सन् १६४५ के लगभग प्रगतिवादी कवियों में परस्पर मतभेद आरम्भ हो गया। इस मतभेद के कारण सन् १६५० के लगभग प्रगतिवादी आन्दोलन विघटित हो गया।[2] उमेश मिश्र के अनुसार "सन् १६४७ के पश्चात् हिन्दी के प्रगतिवादी आन्दोलन में संकीर्णता की प्रकृति का जन्म हुआ। इस काल में प्रगतिवाद पर अनेक प्रकार के आक्षेप और आरोप लगाये गये जिसके फलस्वरूप प्रगतिवादी आन्दोलन में शिथिलता आ गयी।"[3] डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री के अनुसार- "चूंकि प्रगतिवादी काव्य अन्तस् की उन गहराइयों से उदभूत नहीं हुआ था, जो किसी साहित्य को स्थैर्य प्रदान करती है। इसी लिये सन् १६४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के जोर पकड़ने के साथ ही उसका वेग मंद पड़ने लगा और शीघ्र ही उसका स्थान नयी कविता ने ले लिया।"[4]

आन्दोलन की गति मंद पड़ता देखकर प्रगतिशील साहित्यकारों में चिन्ता व्याप्त हुयी और "सन् १६४८ के पश्चात् एक बार पुनः यह प्रयत्न किया गया कि प्रगतिवादी आन्दोलन में फिर से सभी वर्गों के स्वस्थ विचार धारा के लेखकों में सम्बन्ध स्थापित हो। सभी भारतीय भाषओं के लेखकों का संगठन किया जाये तथा साहित्य में संयुक्त मोर्चे की प्रतिष्ठा की जाये।"[5]

सन् ५०-५१ के आस-पास तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में 'प्रगतिशील

---

१. *हलफनामा- प्रमोद वर्मा, पृष्ठ ६५*

२. *प्रगतवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्ण लाल हंस, पृ०सं ६-१०;*

३. *प्रगतिवादी काव्य - उमेश मिश्र, पृष्ठ ४४*

४. *प्रगतवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्ण लाल हंस, पृष्ठ ५; (प्रस्तावना)*

५. *प्रगतिवादी काव्य - उमेश मिश्र, पृष्ठ ४५*

लेखक संघ' के नये नामकरण के सम्बन्ध में पर्याप्त चर्चा और बहस होने लगी थी। २५ जनवरी १९५१ को बीकानेर से लक्ष्मीकान्त ने (जो उस समय नई चेतना' के सम्पादक थे) श्री शिवदान सिंह चौहान को एक पत्र लिखकर प्रगतिशील लेखक संघ की कमजोरियों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने लिखा था कि "प्रगतिशील लेखक संघ हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी का साहित्यिक मोर्चा है और वहां मार्क्सवादी लेखक ही सम्मानित होते हैं, चाहे वे अत्यन्त साधारण लेखक ही क्यों न हों - और दूसरे बड़े से बड़े लेखकों की बात पर यथोचित ध्यान भी नहीं दिया जाता। पार्टी की जब जो नीति होती है। प्रगतिशील लेखक संघ की नीति भी तब त्यों ही बदल जानी पड़ती है। वस्तुतः प्रगतिशील लेखक संघ साहित्य निर्माण के प्रश्नों को छोड़कर पार्टी का प्रचार केन्द्र बन गया है।"[1] यह तथ्य श्री चौहान की दृष्टि से ओझल नहीं था और वे स्वयं इस कमी से भली भांति परिचित थे। ३१ जनवरी सन् १९५१ को श्री शिवदान सिंह चौहान ने लक्ष्मी कान्त जी के पत्र का उत्तर देते हुये 'प्रगतिशील लेखक संघ के बारे में अपने अन्य लेखकों की जिस धारणा का उल्लेख किया है, वह निस्संदेह निराधार नहीं है और मैं उससे अपरिचित भी नहीं हूं। यह बात किसी समय कोरी धारणा थी- लेकिन आज अगर 'प्रगतिशीलन लेखक संघ की ओर देखे, तो यह एक हकीकत है।"[2] श्री चौहान भी 'प्रगतिशील लेखक संघ का पुनर्गठन करने के लिए सहमत थे। इसके नामकरण के सम्बन्ध में उनका सुझाव था कि संयुक्त मोर्चा' से ज्यादा उपयोगी 'अखिल भारतीय जनवादी लेखक सम्मेलन की स्थापना होगी।[3] कुछ दिन तक इस तरह की चर्चाएं होती रही, किन्तु प्रगतिशील लेखक संघ का पुनर्गठन सम्भव न हो सका और संयुक्त मोर्चे के प्रयास असफल हो गये।

इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि प्रगतिशील आन्दोलन का संघ-बद्ध

---

१. *साहित्य की समस्यायें- शिवदान सिंह चौहान, पृष्ठ १८४ पर उद्धत*

२. *साहित्य की समस्यायें -शिवदान सिंह चौहान ,पृष्ठ १८६*

३. *साहित्य की समस्यायें -शिवदान सिंह चौहान ,पृष्ठ १८६*

रूप पांचवे दशक के अन्त तक प्रायः शिथिल हो चुका था। इस असामयिक विघटन के मूलरूप से दो कारण थे- आन्तरिक और बाह्य। 'प्रगतिशील लेखक संघ' से सक्रिय रूप से सम्बद्ध साहित्यकारों के बीच परस्पर मनमुटाव और सैद्धान्तिक खींचतान के परिणाम स्वरूप एक संकीर्णतावादी दृष्टि पनपी और आलोचनाओं - प्रत्यालोचनाओं का दौर-दौरा शुरू हुआ, जो शीघ्र ही प्रगतिशील लेखक संघ को ले डूबा। इस आन्तरिक फूट के अतिरिक्त बाहर से विरोधियों द्वारा भी प्रगतिशील लेखक संघ के बारे में अनेक प्रकार के आक्षेप और दोषारोपण किये गये, जिसके कारण भी प्रगतिशील आन्दोलन की गति प्रभावित हुई। अभावों एवं असुविधाओं के बीच जीवन यापन करते हुये भी नागार्जुन मार्क्सवादी विचारधारा के साये में साहित्य सर्जना करते रहे। और हिन्दी साहित्य जगत में अपना स्थान बना सके।
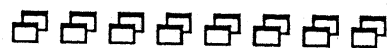
द्वितीय अध्याय

नागार्जुन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

नागार्जुन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(अ). व्यक्तित्व :

नागार्जुन हिन्दी के कबीर, भारतेन्दु, प्रेमचन्द और निराला की परम्परा के साहित्यकार है। परम्परावादी होने का रूढ़ अर्थ लेना उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ अन्याय करना होगा क्योंकि प्रगतिशील, वृहतत्रयी-नागार्जुन, शमशेर बहादुर और त्रिलोचन - ने बने बनाये मार्ग पर न चलकर लक्ष्य तक पहुँचने के अपने-अपने मार्ग प्रशस्त किये है किन्तु मनुष्य और सर्जक के रूप में तो नागार्जुन सचमुच कबीर के समान संत, भारतेन्दु के समान राष्ट्रवादी, प्रेमचन्द के समान मानवतावादी और निराला की तरह वैयक्तिक जीवन के प्रति लापरवाह, क्रांन्तिकारी साहित्यकार है। इसीलिये उनके सम्बन्ध में **'अदम गोंड़वी'** की यह अभिव्यक्ति बड़ी सार्थक प्रतीत होती है-

वामपंथी सोच का आयाम है नागार्जुन

जिन्दगी में आस्था का नाम है नागार्जुन

जितना अनगढ़ उतना ही अभिराम है नागार्जुन

हम तो कहते है उसे बंगाल की खांटी सुबह

केरला की खूबसूरत शाम है नागार्जुन

खास इतना है कि सरे आंखों पर हैं उसका वजूद

मुफलिसों की झोपड़ी तक आम है नागार्जुन

हम अहद के साथ ही इस बार हमेशा यजीद

कर्बला में युद्ध का पैगाम है नागार्जुन ...१

जो भी नागार्जुन के व्यक्ति और साहित्य से परिचित है उन्हें 'अदम गोंडवी के

---

१. *'लोक-सम्मान' जन-कवि नागार्जुन : १९-२० नवम्बर १९९८ विदिशा (म.प्र.)*

ये उद्‌गार अपने ही प्रतीत होगें, इसमें कोई संदेह नहीं। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, सामान्यों से लेकर असामान्यों तक के बीच नागार्जुन एक सरीखे रहते हैं, न चोला बदलते हैं और न मुखौटा। इस युग में भी ऋषि - परम्परा को जीवित रखने वाला यदि कोई साहित्यकार है तो वह नागार्जुन है, अन्दर से भी नागार्जुन और बाहर से भी नागार्जुन।

व्यक्तित्व एक ऐसा विशिष्ट ढॉचा है, जो एक व्यक्ति को किसी भी अन्य व्यक्तियो से अलग करता है। व्यक्तित्व शारीरिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों का समुच्चय है।

वास्तव में व्यक्तित्व एक इकाई है। किसी भी व्यक्ति या साहित्यकार के व्यक्तित्व की जो छाप दूसरे के मन पर समग्र रूप से पड़ती है, वह प्रायः अविभाज्य होती है। अध्ययन की सुविधा के लिये व्यक्तित्व को बाह्‌य एवं आन्तरिक पक्षों में विभाजित कर लिया जाता है।

व्यक्तित्व का बाह्‌य पक्ष -

व्यक्तित्व का बाह्‌य पक्ष व्यक्ति की आकृति, रूप - रंग, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान तथा स्वास्थ्य आदि से संबंध रखता है।

व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष -

व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति के गुण, स्वभाव, रूचि, प्रतिभा अर्थात् समस्त मानसिक क्रिया-कलाप का अध्ययन किया जाता है।

यहाँ हम नागार्जुन जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण उपर्युक्त आधार पर ही प्रस्तुत करने का प्रयास करेगें।

१. नागार्जुन का व्यक्तित्व -

व्यक्तित्व का बाह्य पक्ष-

नागार्जुन के बाह्य व्यक्तित्व में कुछ भी ऐसा नहीं है जो कि उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके। उनका साधारण मझोला कद तथा वर्ण श्याम था। शरीर से वे प्रायः अस्वस्थ रहते थे। वे मोटे खद्दर का कुर्ता तथा पाजामा पहनते थे। उनका रहन-सहन बहुत सादा था। किसी भी प्रकार का दिखावा उन्हें अप्रिय था। वे इस चमक-दमक के युग में भी निम्न-मध्य वर्गीय जीवन व्यतीत करते रहे। नागार्जुन के शब्दों में - "आदमी हो तो आदमी की तरह रहो न, यह क्या धज बना रखी है तुमने अपनी। छोटे-मोटे बाल उगाये रखते हो चंचल माथे पर। नुची मूँछों का ठूँठ आलम तुम्हारे मुख मण्डल को प्राकृत और अपभ्रंश के संयुक्त व्याकरण जैसा सजा रहा है। कपड़ों का यह हाल है कि भदेसपन और कंजूसी का सनातन इश्तिहार बने घूमते हो। चर्चगेट हो या चौरंगी कनाट प्लेस हो या हजरतगंज सर्वत्र तुम्हारी यही भूमिका रहती है आधुनिकता और मॉडर्निटी को अंगूठा दिखाने में तुम्हारे को जाने कौन-कौन सी परितृप्ति मिलती है। ओ आंचलिक कथाकार तुम्हारी आंखें सचमुच फूटी हुई हैं क्या? अपने अन्य आंचलिक अनुजों से तुम्हें इतना तो सीख ही लेना चाहिए था कि रहन सहन का अल्ट्रा माडर्न सलीका भला क्या होता है।" [१] उनके व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष के बारे में डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट के ये शब्द - "दुबला पतला शरीर, मोटे खद्दर का कुर्ता, पाजामा, मझोला कद, आँखों पर ऐनक, पैरों में चप्पलें, चेहरे पर उत्साह और पीड़ित वर्ग के प्रति व्यथा की मिली-जुली प्रतिक्रिया के भाव यही नागार्जुन है।" [२] अक्षरशः सत्य है।

उनका खानपान अत्यन्त सादा था। पर वे सुस्वादु पदार्थों के प्रशंसक भी थे। वे प्रायः भोजन से भी थोड़ा निरामिष भोजन करते थे परन्तु सामिष भोजन से भी उन्हें

---

१. मोहन राकेश (सम्पादक), आइने के सामने, पृष्ठ संख्या - २५
२. डा. प्रकाश चन्द्र भट्ट, नागार्जुन- जीवन और साहित्य, पृ०सं०- ३८

घृणा नहीं थी। वे दमे के पुराने रोगी थे - इसलिए अधिकतर गर्म पानी का प्रयोग करते थे। वे नागरिकता के आधुनिक कुप्रभाव से अछूते थे। ग्राम्यत्व उनके जीवन का आभूषण था और सरल जीवन का सौष्ठव उनके व्यक्तित्व का प्रमुख आकर्षण।

नागार्जुन के व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष :-

जीवन की सादगी, सरलता, स्पष्टवादिता और खुलापन नागार्जुन के व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष की मूलभूत विशेषतायें हैं। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर नागार्जुन की काव्यकला तथा स्पष्टवादिता के प्रशंसक थे। पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी को उन्होंने एक पत्र में लिखा था - ''नागार्जुन की गरीबी अब देखी नहीं जाती। परसों प्रण किया है कि उसके लिए कुछ न कुछ व्यवस्था करुंगा किन्तु वह निर्धन और साधनशील प्रण जिसका पूरा होना ईश्वरीय कृपा पर निर्भर है। राँची में उसने जवाहर लाल जी पर एक कविता सुनाई जो उत्तम कोटि की थी। उत्तम से नीचे तो वह लिखता ही नहीं और कितना सरल, निःस्पृह तथा निश्छल है नागार्जुन।''[1]

नागार्जुन एकान्त प्रेमी थे किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे सभा आदि में नहीं जाते वे जहाँ तक सम्भव हो सकता था, अपने को पब्लिक-गेज से बचाने का प्रयत्न करते थे, क्योंकि आत्म- प्रचार में उनकी रुचि नहीं थी। वे तन-मन से साहित्य सृजन में लगे रहते थे। उनकी रुचि विशेषतः पठन-पाठन और चिंतन-मनन में रही।

नागार्जुन जहाँ तक सम्भव हो साक्षात्कार देने से दूर रहने की कोशिश करते थे क्योंकि वे किसी भी प्रकार की बौद्धिक उलझन में नहीं पड़ना चाहते थे।

उनका जीवन 'निराला' की भाँति सदैव अभावग्रस्त रहा किन्तु वे स्वाभिमानी इतने थे कि उन्होंने कभी किसी के आगे पैसे के लिए हाथ नहीं फैलाया। डॉ० शिवकुमार मिश्र के शब्दों में - "नागार्जुन के व्यक्तित्व को निखारने में उनके व्यक्तिगत

---

१. ज्ञान तरंगणि, श्रृद्धांजली अंक, बक्सर (बिहार) पृ०सं० - २६

जीवन के कटु संघर्षों के अलावा उस प्रगतिशील और वैज्ञानिक विचार- दर्शन का योग भी है, जिसकी प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें स्वामी सहजानंद से मिली, और जिसने उनके जीवन के हर निर्णायक और नाजुक मोड़ पर उनकी आस्था को नया संबल, उनके संकल्प को नयी दीप्ति और उनकी जिजीविषा को नयी तेजस्विता प्रदान की। एक भरे-पूरे परिवार के बोझ को सहज जीवी लेखक बनकर संभालना और अपने रचनाकार को भी जीवित रख पाना, आसान बात नहीं है। बिरले प्रेमचन्द ही ऐसा कर पाते हैं और नागार्जुन ने भी ऐसा किया।" [१]

नागार्जुन स्वभाव से विद्रोही थे। उन्हें आडम्बर और प्रदर्शन से बेहद नफरत थी। उनकी लेखनी आडंबरो , रूढ़ियों और विषमताओं के विरुद्ध जमकर चली। विद्रोह उनके स्वभाव में मूर्तिमान था। यह विद्रोह उस परिवेश की देन थी, जिसके बीच उन्होंने जीवन जिया था, परन्तु अपने अन्तर की इस विद्राही वृत्ति को उन्होंने सदैव रचनात्मक दिशाओं की ओर सक्रिय किया। हँसमुख इतने कि उनके जीवन - संघर्षों से अपरिचित व्यक्ति शायद ही यह जान पाये कि जीवन का कितना विष पीने और पचाने के बाद यह हंसी सौगात के रूप में मिलती है।[२]

नागार्जुन घुमक्कड़ और अक्खड़ स्वभाव के थे प्रेमचन्द - सी भारतीय कृषक, मजदूर के प्रति आत्मीयता, निराला- सा फक्कड़पन और अक्खड़ पन तथा अनुचित बातों पर कबीर- सी फटकार सबका मिला जुला रूप ही नागार्जुन।[३]

नागार्जुन के व्यक्तित्व के आन्तरिक एवं बाह्य दोनो पक्षों का विवेचन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि वे एक व्यक्तित्व के धनी थे। उनके व्यक्तित्व में सरलता और दृढ़ता का अद्भुत समन्वय था। वे हिन्दी साहित्य में मजदूरों, किसानों,

---

१. *डॉ० शिव कुमार मिश्र, साहित्य और सामाजिक संदर्भ, पृ०सं०-१२३*
२. *डॉ० शिव कुमार मिश्र, साहित्य और सामाजिक संदर्भ, पृ०सं० - १२४*
३. *डॉ० प्रकाश चंन्द्र भट्ट, नागार्जुन-जीवन और साहित्य, पृ०सं० - ४०*

दलितों - पीड़ितों के पक्षधर बनकर उपस्थित हुये। स्वयं अभावों में पैदा हुये तथा पीड़ित वर्ग के कष्टों को उन्होंने झेला भी। निःसन्देह वे भारत के सर्वहारा वर्ग के सच्चे सांस्कृतिक प्रतिनिधि बनकर साहित्य सृजन में लीन रहे।

नागार्जुन का कवि व्यक्तित्व किसी एक कटी-छँटी कोटि में नहीं रखा जा सकता। जहाँ विजय बहादुर सिंह के शब्दों में 'वे एक साथ क्लासिक भी है और रोमेंटिक भी, राष्ट्रीय भी है और प्रगतिशील भी, ब्राह्मण भी है और बौद्ध भी, जितने मैदानी हैं उतने ही पहाड़ी हैं, जितने शहरी हैं उतने गँवई हैं और उससे कुछ ज्यादा ही वनवासी। उनमें इतना प्यार है कि उसकी गहराई और विस्तार को नापना कठिन और इतना क्रोध है कि साक्षात् दुर्वासा।'

प्रभाकर माचवे अपनी कविता "अराजकता वादी नागार्जुन के प्रति' में कहते हैं-

बहत्तर बरस में साठ यायावरी में
बीते
काँधे पर झोला लिये इसी तरह
जीते
कल की कुछ फिक्र नहीं घुमक्कड़
भाई
यही जिन्दगी क्यों तुम्हें भला भला
भाई?
और आगे
तुम नहीं वैद्यनाथ मिश्र मैथिल
ब्राहम्ण
तुम नहीं बौद्ध, नहीं कम्युनिष्ट,

मार्क्सवादी

नहीं तुम राजनैतिक शब्दों के

व्यंगकार

नहीं तुम ओकार, टंकार, झंकार

तुम सर्वनकारावादी (निहिलिस्ट)

....

'निहग' हिन्दी साहित्य के''[1]

नागार्जुन के व्यक्तित्व के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों पक्षों का विवेचन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि वे एक सबल व्यक्तित्व के धनी थे। उनके व्यक्तित्व में सरलता और दृढ़ता का अद्भुत समन्वय था। वे हिन्दी साहित्य में मजदूरों, किसानों, दलितों, पीड़ितों के पक्षधर बनकर उपस्थित हुये। स्वयं अभावों में पैदा हुये तथा पीड़ित वर्ग के कष्टों को उन्होंने झेला भी। निःसन्देह वे भारत के सर्वहारा वर्ग के सच्चे सांस्कृतिक प्रतिनिधि बनकर साहित्य सृजन में लीन रहे।

२. जीवन परिचय :-

मैथिली और हिन्दी साहित्य पर समान अधिकार रखने वाले वैद्यनाथ मिश्र अर्थात् नागार्जुन का जन्म जून १९११ की ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को अपने ननिहाल सतलखा जिला दरभंगा, बिहार में पैतृक निवास इसी जिले के तरौनी गांव में नागार्जुन का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम पं. गोकुल मिश्र तथा माता का नाम श्रीमती उमा देवी था। चार भाई और बहनों का शैशवास्था में देहावसान हो जाने के कारण पिता ने वैद्यधाम में महीने भर का अनुष्ठान कराया, तदुपरान्त वैद्यनाथ का जन्म हुआ। अति रमणीय नामकरण से संशकित घर एवं रिश्ते की वृद्धाओं ने इनका नाम ठक्कन' रख

---

१. आराजकता वादी कवि नागार्जुन के प्रति, प्रभाकर माचवे, सम्पर्क, १९८४, पृ०सं० - ३

दिया क्योंकि अल्पकाल में यह भी माँ - बाप को ठगकर पलायित होने वाला है। पिता श्री गोकुल मिश्र नामकरण के सन्दर्भ में अपनी कुल परम्परा कैसे छोड़ सकते थे? उन्होंने संस्कृत नामावलियों की सूची देखी और विद्वत वर्ग से विचार-विमर्श किया। नामकरण संस्कार के दिन इन्हें वैद्यनाथ मिश्र नाम से विभूषित किया गया। जहाँ लोक प्रचिलित नाम ठक्कन मिश्र रहा, वहाँ शास्त्रीय नाम वैद्यनाथ मिश्र रहा। बचपन में माँ के स्नेह से वंचित कवि को विरासत में परिवार की दरिद्रता एवं पिता का दुर्व्यवहार मिला जिसे हम 'रवि ठाकुर' कविता में देख सकते हैं -

पैदा हुआ मैं ! दीन-हीन-अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता। अभाव का आसव ठेठ बचपन से।'

नागार्जुन के पिता ने उमा देवी की मृत्यु के बाद विधवा चाची को अपनाया जो कवि-मन में वितृष्णा का भाव जागृत करने की जननी हुई। पिता के प्रति क्रोध कम नहीं था क्योंकि इसी स्त्री के कारण उनकी माँ को अमानुषिक बर्बर एवं पाशविक यातनाएं उठानी पड़ती थीं। इसी से कवि के मन में पिता से बदला लेने का भाव भी जाग उठा। बचपन से उन्होंने जमींदारी के क्रिया-कलापों को खुली आंखों से देखा था। यही वितृष्णा और क्रोध कवि के साहित्यिक सोच की नींव बने, क्योंकि जीवन के सुबह की धूप बचपन से आरम्भ होकर बहुत देर तक व्यक्ति के ऊपर हावी रहती है। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में नागार्जुन जब अर्थ - काम के पहरेदारों की कानाफूसी एवं किसी के गर्भ गिराये जाने की चर्चा करते हैं तो उनका भोगा हुआ अनुभव ही बोलता है। वैद्यनाथ मिश्र जब पाँच वर्ष के हुये तब पारंपरिक ढंग से शुभ मुहूर्त विचार कर पुरोहित बुलवाकर सरस्वती पूजन - क्रिया सम्पन्न करवाकर अक्षर - ज्ञान के बाद गांव की पाठशाला में इन्हें भर्ती कर दिया गया। वहां पर अध्ययन करते-करते इन्होंने प्राथमिक शाला की परीक्षा उत्तीर्ण की। उस समय अंग्रेजी स्कूल तो शहरों में खुल गये

---

१. युगधारा - नागार्जुन, पृ०सं० १३

थे, पर उन स्कूलों में केवल सम्पन्न लोग ही अपने बच्चों को भेज सकते थे। गरीब लोगों के लिये तो अंग्रेजी शिक्षा दुर्लभ थी। निर्धन और सामान्य ब्राह्मण अपनी यजमानी, अपने पौरोहित्य कर्म को बरकरार रखना चाहते थे। अतः वे अपने बच्चों को संस्कृत पढाने में ही गौरव का अनुभव करना चाहते थे संस्कृत पाठशालाओं में एक तरफ तो निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था थी और दूसरी तरफ खान-पान और निवास की व्यवस्था रहती थी। भिक्षा- वृत्ति भी वर्जित नहीं थी। संस्कृत के पण्डितों को अनपढ़ जनता कर्मकांड, सत्यनारायण पूजा और श्रीमद भागवत आदि का पाठ करने के कारण श्रृद्धा की दृष्टि से देखती थी पर अंग्रेजी पढ़ने वाले बच्चे तथा उनके अभिभावक उन्हें हीन दृष्टि से देखते थे। आर्थिक भेद-भाव की यह नीति भी कवि के अन्तः करण में असंतोष और विद्रोह की भावना अंकुरित करती रही। बचपन में मेधावी छात्र वैद्यनाथ अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी परिवेश से वंचित ही रहा।

१५ वर्ष की आयु में सन् १६२५ में वैद्यनाथ ने संस्कृत की प्रथमा परीक्षा जब ससम्मान उत्तीर्ण कर ली, तब गांव छोड़ने की समस्या आई क्योंकि निकटवर्ती गांव में आगे की पढ़ाई की व्यवस्था नहीं थी। अतः वैद्यनाथ जी को मध्यमा की पढ़ाई पूरी करने के लिये गिनौली जाना पड़ा। संस्कृत मध्यमा की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वैद्यनाथ जी ने वाराणसी के लिये प्रस्थान किया।

वाराणसी नगर प्राचीन काल से ही संस्कृत भाषा और हिन्दू-दर्शन के अध्ययन - अध्यापन का केन्द्र रहा है। वाराणसी में गली-गली में संस्कृत के विद्यालय और महाविद्यालय है जहाँ पर बिहार मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा देश के कोने-कोने से छात्र संस्कृत का अध्ययन करने के लिये आते हैं। अतः उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये वैद्यनाथ मिश्र भी काशी के व्यामोह से वंचित न रह सके। अपनी संकल्प शीलता, लगन और कर्मठता के कारण इन्होंने काशी संस्कृत महाविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की।

शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करके जब ये अपने पैतृक गांव में गये तब गोकुल मिश्र ने सन् १६३२ में पाणिग्रहण संस्कार करवाकर इन्हें दामपत्य सूत्र में बांध दिया। वैवाहिक बन्धन में बांधने के पीछे पिता की यही मंशा थी कि ब्राह्मण नवयुवक चोटी और तिलक धारण कर वैदिक कर्मकांड और धार्मिक अनुष्ठान आदि का कार्य सम्पन्न करें। पर शास्त्री जी का मन घर की चार दीवार में आबद्ध न होकर हिरण -सा उन्मुक्त विचरण के लिये ललक उठा और उन्होंने राहुल जी की तरह घुमक्कड़ी धर्म को स्वीकार कर लिया हो सकता है कि राहुल जी की तरह ही उन्होंने भी निम्नलिखित शेर से प्रेरणा प्राप्त की होः

सैरकर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ।
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ।।

सन् १६३४ से ४१ तक घुमन्तु जीवन व्यतीत किया। ३५ में पहली हिन्दी कविता प्रकाशित हुई। दो ढाई वर्ष पंजाब, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश और गुजरात की घुमक्कड़ी करके आठ दस महीने पंजाब से निकलने वाले मासिक दीपक का सम्पादन किया और १६३६ के अन्त में लंका चले गये। श्रीलंका में कोलम्बों के निकट केलानिया नामक स्थान पर 'विद्यालंकार परिवेण' नामक एक पुराना विद्यापीठ है जिसका आकर्षण ही वैद्यनाथ को वहाँ तक खींच लाया था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन आदि विद्वानों ने भी इसी मठ में बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। वैद्यनाथ वहाँ के बौद्ध-भिक्षुओं को संस्कृत पढ़ाते थे और बदले में उनसे पालि भाषा के माध्यम से बौद्ध दर्शन का अध्ययन करते थे। यो तो भिक्षु बिरादरी वैद्यनाथ जी को काफी सम्मान देती थी पर जब साथ बैठने -उठने का सवाल आता तो उसे नीचे आसन पर बिठाया जाता क्योंकि वह गैरिक वस्त्र धारी संयासी जो नहीं था। एक स्वाभिमानी भारतीय पण्डित को यह बात अक्सर खलती रहती थी और उसे यह भी तो मालूम था कि बौद्ध भिक्षु बुद्धिबल और पाण्डित्य में उसकी बराबरी के नहीं है।

आपस में यह चर्चा कभी-कभी हो भी जाती थी पर संयासी बेचारे वैद्यनाथ को बराबरी का आसन दे ही कैसे सकते थे जब तक कि वह खुद संयास ग्रहण न कर ले। आखिर एक दिन वैद्यनाथ ने तय किया कि जब तक 'विद्यालंकार परिवेण' में रहना है- संयास ले लेने में ही हीनताग्रंथि से मुक्ति मिल सकेगी। आचार्य वैद्यनाथ को अपनी इच्छा का भिक्षु -नाम जब चुन लेने की स्वतंत्रता मिली तो उन्होंने विख्यात दार्शनिक 'नागार्जुन' का नाम अपने लिये चुना। तब से वैद्यनाथ मिश्र भिक्षु नागार्जुन हो गये। बौद्ध दर्शन के अध्ययन के साथ-साथ काम चलाऊ अंग्रेजी भी नागार्जुन ने यही सीखी। केलानिया के मठ में रहते हुये नागार्जुन ने अपना काफी विकास किया। नागार्जुन केलानिया से आकर किसान आन्दोलन में कूद पड़े। यह सन् ३८ का मध्यकाल था। उनकी कविताएँ उन दिनों ज्यादातर 'यात्री' नाम से ही मैथिली और हिन्दी में प्रकाशित होती थी पर नागार्जुन की सक्रियता सर्वाधिक किसान आन्दोलन में थी।

इस प्रकार कुल मिलाकर वैद्यनाथ मिश्र, ठक्कन, बैदेह, मात्री और नागार्जुन नामों की मात्रा करते हुए आण के 'बाबा' का निर्माण हुआ, जो रीझ गये गये तो शिव की भाँति एवमस्तु रूठ रूठ गये तो दुर्वासा की तरह। उनके जीवन के अन्तिम दो तीन वर्ष बीमारी और अवसाद में बीते। वह अपनी 'जानी परेशानी दमा' से जूझते भी रहे। वह कहा भी करते थे, ''दमा'' की 'दवा' से नहीं, 'दया' से जिंदा हूँ, भाई!''

कवि नागार्जुन में ढक्कन मिसिर, बैद्यनाथ, वैदेह, यात्री आदि कई कवि नामों से रचनाएँ की। अपने इन नामों की तरह ही उनके अप्रतिम और अनोखे व्यक्तित्व के कई रचनात्मक पहलू और प्रस्थान थे, जो उनके महाप्रस्थान (५ नवंबर, १९९८) की अंतिम घड़ी तक वह अपने अजस्त्र पाठाकें को सर्वाधिक प्रिय और पठनीय कवि बने रहे। हलांकि वह पिछले दो-ढ़ाई वर्षो से अस्वस्थ चल रहे थे और कुछ सुनने के लिये उन्हें श्रवण-यंत्र और पढ़ने के लिये आतिशी कांच (मैग्निफांइग ग्लास) का सहारा लेना पड़ा था। इस यात्री ने अपनी महायात्रा के बारे में पहले से ही लिख रखा था -

मरूंगा तो चिता पर दो फूल देंगे डाल

समय चलता जाएगा निर्बाध अपनी चाल

सुनोगे तुम तो उठेगी हूक

मैं रहूँगा, सामने तस्वीर में, पर मूक ....।

पारिवारिक पृष्ठभूमि-

मिथिला के ब्राह्मणों की वंश-पंजिका (खानदानी रजिस्टर) बड़े ही सुव्यवस्थित तौर पर सुरक्षित है। इससे ही वंश परम्परा का पता लगाने में सुविधा हुई। मैथिल ब्राह्मणों की आनुवंशिक पंजी परम्परा का आरम्भ १४वीं शताब्दी में हुआ था। तब से लेकर अब तक इससे 'मिश्र वंश' के दसियों महामहोपाध्याय विद्धानों का उल्लेख पाया जाता है। इन विद्धानों को अपने समकालीन राजाओं से यहां तक कि मुर्शिदाबाद के नवाबों से भी वृत्ति, के तौर पर काफी भू-सम्पत्ति मिलती रही है। यह जायदाद ब्रिटिश शासन-काल तक अपने अल्पतम रूपों में बची रही। दर्शन और व्याकरण शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन ही पहले युगों में इन ब्राह्मणों का मुख्य विद्या-व्यसन था , बाद में इनके पूर्वजों में ज्योतिष की जानकारी प्रमुख हो उठी।

सिंहल प्रवास के दिनों में ही नागार्जुन को वामपंथ की हवा लग गयी थी। 'लंका सम-समाज' के विप्लवी नेताओं से मिलना जुलना शुरू हो गया था। भारतीय किसानों के महान नेता स्वामी सहजानन्द से पत्र-व्यवहार चल रहा था। दूसरी ओर राहुल जी भी उन्हें कई वर्षो से तिब्बत के प्राचीन महामठों की ओर प्रेरित कर रहे थे। लेकिन भिक्खु नागार्जुन को भूमिहीन खेत-मजदूरों और गरीब किसानों का संघर्ष अपनी ओर खींच ले गया।

स्वामी सहजानंद के बाद दूसरे जिस जननायक से नागार्जुन का सम्पर्क हुआ था वह थे नेता जी सुभाषचन्द्र बोस। परन्तु यह सम्पर्क अल्पकालीन रहा। दोनों

के मध्य कुछेक पत्रों के आदान-प्रदान हुये।

नागार्जुन की दूसरी गिरफ्तारी फारवर्ड ब्लाक की ओर से छपने वाले एक युद्ध-विरोधी परिपत्र के सिलसिले में हुई थी। ब्रिटिश सरकार भारतीय नेताओं के मतामत की परवाह किये बिना ही देश की जनशक्ति और धन-शक्ति को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंके जा रही थी। वामपंथियों और प्रखर राष्ट्रवादियों का मुख्य नारा था- 'न एक पाई न एक भाई।' स्वयंसेवकों ने अनेकानेक शिविर चलाना, किसान-संघर्षों की व्यवस्था करना, प्रचार के लिये साहित्य की तैयारी, कार्यकर्ताओं के निर्वाह की व्यवस्था यह सब काम भिक्ख नागार्जुन ने उन दिनों किया। वह सन् ४० का जमाना था। गांधी जी की तरफ से व्यक्तिगत तौर पर चुने हुये सत्याग्रही मालाओं से लद-लद कर अपने आपको गिरफ्तार करवा रहे थे। वामपंथी और प्रखर राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों के युवक उन दिनों बहुत व्यस्त रहते थे ... फिर बिहार का वह किसान आन्दोलन जिसकी प्रसिद्धि पूरे देश में थी।

गुप्त रूप से परिपत्र छपवाने और उन्हें वितरित करने के आरोप में भूमिगत (अंडर ग्राउन्ड) स्थिति में, नागार्जुन जी को गिरफ्तार किया गया। इस बार उन्हें भागलपुर सेन्ट्रल जेल में आठ महीने रहना पड़ा। वहीं उनके वृद्ध पिता ने उनसे मुलाकात की। पिता ने रो-रो कर जेलर से कहा था- यह लड़का वर्षों से भागा हुआ है। बुढ़ापे में हमें तो सता ही रहा है पर एक 'बछिया' की पीठ पर छुरा घोंप कर बाबाजी बना घूमता है। इस कसाई को जब आप जेल से रिहा करने वाले हो तब तार देकर मुझे बुलवा लेंगे। हम चार जने मिलकर आयेगें और इसे पकड़कर घर ले जायेगें।

सचमुच ही दुबारा जेल के फाटक पर हाजिर होकर पिता ने नागार्जुन को अपनी हिरासत में ले लिया। अब तक दो बार के जेल-जीवन मार्क्सवादी विचार धारा से परिचित कराने में सहायक रहे। यही कारण था कि पिता के साथ नागार्जुन

गांव जरूर पहुंचे ,पर उनका दिल दिमाग कभी स्थिर नहीं हो पाया था। उनमें मार्क्सवादी विचार घूम रहे थे।

पत्नी (अपराजिता देवी) के प्रति हमेशा उनके दिल में सहानुभूति और करूणा के भाव थे। पिता के प्रति जो कोप नागार्जुन जी के मन में था वह भी धुल गया था। अब कवि व्यक्तिगत सम्बन्धों से आगे बढ़कर सामाजिकता के व्यापक छोर छूं रहा था। उसके अन्दर बुद्ध तो बैठे ही थे अब मार्क्स भी आ गये।

ग्रहस्थाश्रम में लौटने पर ससुराल वालों ने बड़ी धूमधाम से नागार्जुन जी का स्वागत किया। महीनों बाहर न निकलने देने का फरमान जारी कर दिया। दो एक रोज के लिये भी पड़ोस के शहरों (मधुबनी, दरभंगा) की ओर जाने पर सुरक्षा सन्तरी साथ कर दिये जाते थे।

किन्तु तरौनी के दकियानूस पंडितों ने नागार्जुन के ग्रहस्थाश्रम में लौटने पर बड़ा हो हल्ला मचाया। उन पंडितों का कहना था। एक तो संयास से वापस आया और दूसरा समुद्र पार गया तीसरी बात कि बौद्ध धर्म में दीक्षित हुआ। बौद्ध तो आधा मुसलमान होता है- आधा ईसाई। वे गाय भी खाते है और सूअर भी। यह लड़का ब्राह्मणों के समाज में फिर से वापस लिया ही नहीं जा सकता।

किन्तु हम उग्र युवक पंडितों ने नागार्जुन की वापसी का सुदृढ़ समर्थन किया और बूढ़े पंडितों की दाल नहीं गलने दी। वह ऐसा युग था कि भिक्खु नागार्जुन जैसे विप्लवी युवक के पीछे-पीछे जासूस घूमते ही रहते थे। बेचारे पिता (गोकुल मिश्र) पुत्र की इन खूबियों से बेखबर थे। मिश्र जी को अपने पुत्र के प्रत्यार्वतन पर प्रसन्नता भी थी और क्षोभ भी था कि ''इतने वर्षों तक करता क्या रहा। इसके साथी फला-फला नौकरी करके अपने बाल बच्चों का निर्वाह कर रहे हैं, यह तो वैसा का वैसा ही रहा। दो बार जेल की सजा भुगत आया है तो शायद अब नौकरी भी मुश्किल से ही मिलेगी।

यह क्या बहू को खिलायेगा और क्या मेरी सेवा करेगा।"

नागार्जुन सन् १६३६ के अन्त में सिंहल द्वीप चले गये। इससे पहले दो ढ़ाई वर्ष पंजाब राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, काठियाबाड़ आदि प्रदेशों की घुमक्कड़ी (निरूद्देश्य यात्रा) पूरी कर ली गयी थी। वापस पंजाब आकर आचार्य वैद्यनाथ मिश्र ने आठ-दस महीनों तक मासिक 'दीपक' का सम्पादन किया और स्वामी केशवानन्द से आशीर्वाद लेकर दक्षिण की ओर बढ़ गये।

केलनिया (लंका) कोलम्बो के निकट है। वहां 'विद्यालंकार परिवेश' नाम का एक पुराना विद्यापीठ है जो बौद्ध जगत में विख्यात है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, आचार्य जगदीश कश्यप, भदन्त शान्ति भिक्षु आदि भारतीय बौद्ध विद्वानों ने केलानिया में ही बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण की थी। गुरु भाइयों की इसी मंडली में हमारे 'भिक्षु नागार्जुन' भी अन्यतम रहे हैं।

वैद्यनाथ मिश्र को संस्कृत विद्या की जानकारी सिंहल द्वीप में बहुत कम आयी। 'विद्यालंकार परिवेश' में वह बौद्ध सन्यासियों को संस्कृत माध्यम से व्याकरण और दर्शन आदि पढ़ाते थे, और स्वयं वहाँ के आचार्यों से पालि भाषा के माध्यम से बौद्ध दर्शन का अध्ययन करते थे। नागार्जुन लगभग दो वर्षों तक लंका में रहे। यह सारा का सारा समय अध्यापन एवं अध्ययन में बीता।

लंका रहते हुये इन्हें अंग्रेजी की काम चलाऊ जानकारी अनिवार्यतः हासिल करनी पड़ी।

'विद्यालंकार' के आचार्य, उपाचार्य, प्राध्यापक और छात्र नहीं चाहते थे कि यह भारतीय विद्वान उन्हें छोड़कर वापस हिन्दुस्तान लौट जाए। संस्कृत माध्यम से पढ़ाने वाले भारतीय विद्वानों की लंका, बर्मा, आदि बौद्ध देशों में आज भी बड़ी कद्र है। प्राचीन भारत की सांस्कारिता जितनी कुछ उन देशों को प्राप्त हुई थी।, उसे वे देश

पर्याप्त अंशों में सुरक्षित रखे हुये है।

नागार्जुन द्वारा संयास की दीक्षा लेने का मूल कारण वैराग्य नहीं था। ज्ञानार्जन एवं देश-दर्शन की लालसा ही लंका प्रस्थान का मुख्य कारण था।

बचपन में प्राप्त संस्कारों का प्रभाव जीवन भर बना रहता है। नागार्जुन के साथ भी ऐसा ही हुआ। उनके पिता श्री गोकुल मिश्र अल्प पठित थे, इसलिये निम्न जातियों के हम उम्र लोगों से उनका मिलना बहुत ही सहज था। सहज मिलन का यह संस्कार बालक ने भी ग्रहण कर लिया। निम्न जातियों के बच्चों में घुल-मिलकर बैठने या खेलने से बालक नागार्जुन को भी कभी किसी ने मना नहीं किया। ऊँची जातियों के आडम्बर अनदेखे ही रह गये थे। यह भी आगे चलकर अच्छा ही प्रमाणिक हुआ। हम देखते है कि उच्च जातियों के परिवारों से आये समाजवादी - साम्यवादी नेताओं के नखरे कहीं न कहीं प्रकट हो ही जाते हैं । अन्दर का दमित अभिजात्य संस्कार छलक ही पड़ता है। इन सारी दिखावटी बातों से कवि-कथाकार नागार्जुन बचे रहे हैं। इसी का प्रभाव है कि आडम्बर और प्रदर्शन से उन्हें बेहद नफरत थी।

उन दिनों छोटी जातियों में विद्या का प्रचार बिल्कुल नहीं था। ऊँची जातियों में भी विद्या के प्रति तीव्र अभिरुचि नहीं थी। तरौनी के ब्राह्मण हर हालत में अपने बालकों को पढ़ाने-पढ़वाने के लिए आमादा रहते थे। अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा का प्रवेश अभी दस-पन्द्रह साल पहले ही हुआ था, लेकिन तरौनी वालों का संस्कृत में गहरा अनुराग था। पास - पड़ोस के श्रीमन्त (भू- स्वामी) संस्कृत के इन छात्रों से अपने कल्याण के लिए चंडी -पाठ की दक्षिणा के तौर पर अठारह आने देते थे। इतना ही नहीं, विजयादशमी के दिन इन बटुक-पुरोहितों को जजमानों की तरफ से भोजन भी मिलता था।

दक्षिणा स्वरूप प्राप्त अठारह आने में से सोलह आतने पिता गोकुल मिश्र ले

लेते थे और पुलकित होकर अपनी उदारता का संकेत देते हुए पूरी दुअन्नी यथेच्छ खर्च करने के लिये पुत्र वैद्यनाथ के पास छोड़ देते थे।

काव्य सृजन की प्रेरणा

नागार्जुन की रुचि कविता की ओर छात्र-जीवन से ही रही। "साहित्यकार जिस समाज में रहता है, जिस काल में विचरण करता है, उस सारे वातावरण का प्रभाव उस पर पड़ता ही है, वह चाहे या न चाहे परिस्थितियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके हृदय को प्रभावित करती ही हैं।" इस बात में अधिक विवाद की गुंजाइश नहीं है कि जिस विशिष्ट राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश में साहित्यकार की चेतना का प्रस्फुटन और विकास होता है। उससे प्रभावित हुये बिना वह नहीं रह सकता।"[1] नागार्जुन पर भी देश की विभिन्न परिस्थितियों ने प्रभाव डाला।

सर्वप्रथम नागार्जुन का सम्बंध प्राचीन भारतीय भाषाओं-संस्कृत, पालि और प्राकृत से रहा है। इन भाषाओं में उच्च कोटि का साहित्य उपलब्ध है। इस साहित्य के अध्ययन से नागार्जुन के हृदय में प्राचीन कवियों के प्रति अटूट श्रृद्धा जागृत हुई। इन भाषाओं के कवियों ने मौनरूप से नागार्जुन को साहित्य-सृजन की ओर प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त जिन श्रोतों से नागार्जुन का कवि-व्यक्तित्व रस गृहण करता रहा है, उन्हें मुख्य रूप से पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। (१) परिवार (२) प्रकृति (३) विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क (४) सामाजिक - राजनीतिक परिस्थितियाँ और (५) प्रगतिशील आन्दोलन।

नागार्जुन जिस परिवार से सम्बद्ध हैं, उसमें यद्यपि कोई साहित्यिक वातावरण नहीं था और न उन्हें इस दिशा में परिवार के द्वारा कोई मार्ग-निर्देश ही मिला, फिर भी परिवार की विपन्न आर्थिक दशा बराबर उन्हें कुछ करने के लिए प्रेरित करती रही। असमय में ही मातृ-वियोग और पिता की लापरवाही से नागार्जुन का बचपन अस्त-व्यस्त हो गया। वे निरन्तर जीविका के लिए तर्क-वितर्क में उलझे रहे। घर में न तो एक पैसा था कि कोई व्यापार किया जा सके और न ही इतनी व्यवस्था दी कि

---

१. *युगधारा : प्रकाशकीय वक्तव्य।*

कहीं जाकर उच्च शिक्षा ही प्राप्त हो सके। संस्कृत का जो अध्ययन नागार्जुन ने किया था, वह जीविका देने में असमर्थ सिद्ध हुआ। सहसा नागार्जुन की दृष्टि साहित्यिक - गति- विधियों में जाकर अटक गयी। उन्होंने जीविका के लिये साहित्य को पकड़ा। छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में जीवन के सुख-दुःख को अंकित करके उन्हें बेचने लगे। धीरे-धीरे उनकी रुचि में परिष्कार हुआ और वे समुन्नत प्रतिशील साहित्य का सृजन भी करने लगे।

प्रकृति ने कवि का सौन्दर्य-बोध जागृत किया। अपनी घुमक्कडी-वृत्ति के कारण नागार्जुन ने देश-विदेश के प्राकृतिक-सौन्दर्य को नजदीक से देखने और उससे गहरा रागात्मक सम्बन्ध बनाने का अवसर खूब पाया। वे प्रकृति की शान्त, निश्छल, सतत् गतिशील सौन्दर्य-राशि से मन्त्रमुग्ध हुये और उनका हृदय इस सौन्दर्य को वाणी देने के लिए व्याकुल हो उठा। कवि ने हिमालय की तराइयों में स्वच्छन्द विचरण किया है। वहाँ मेघों को परस्पर अठखेलियॉ करते हुए देखकर कवि की चेतना आनन्दातिरेक से झूम उठती रही है। कवि की कविताओं में मेघों की विभिन्न मुद्रओं के सैकड़ों चित्र भरे पड़े हैं। प्रकृति के कोमल और परुष दोनों रूपों ने नागार्जुन के कवि मानस को आन्दोलित किया है।

नागार्जुन में बचपन से ही साहित्यिक अभिरुचि दिखाई पड़ती है। उनकी साहित्यिक प्रतिभा को प्रोत्साहित करने में पण्डित अनिरुद्ध मिश्र, पं० सीताराम झा तथा पण्डित बल्देव मिश्र का सबसे अधिक योगदान है। पण्डित अनिरुद्ध मिश्र को संस्कृत तथा पण्डित सीताराम झा को मैथिली काव्य - गुरु के रूप में नागार्जुन आज भी कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते हैं। पण्डित अनिरुद्ध मिश्र नागार्जुन के ही गॉव-तरौनी के रहने वाले एक विख्यात संस्कृत पंडित थे। नौकरी तो वे बनैली राज्य के किसी संस्कृत विद्यालय में करते थे, लेकिन गर्मियों की छुट्टियों में जब गांव आते थे तो नागार्जुन का उनसे सम्पर्क हो जाता था। इन्हीं पण्डित जी ने नागार्जुन को संस्कृत के महाकवियों के छन्दों की सूक्ष्म टेकनीक का बोध कराया और संस्कृत काव्य-रचना के

प्रति उनके अन्दर उत्साह जागृत किया। काशी में नागार्जुन जी की भेंट सन्यासी संस्कृत कालेज के अध्यापक और मैथिली के प्रतिष्ठित कवि पं० सीताराम झा से हुई। उन्होंने नागार्जुन को मैथिली लेखन की ओर न केवल प्रेरित किया, बल्कि मैथिली छन्दों का गुर भी समझाया। झा जी का आशीष और प्रोत्साहन पाकर छात्र वैद्यनाथ ने मैथिली में लिखना प्रारम्भ किया। काशी में ही नागार्जुन का सम्पर्क पं० बल्देव मिश्र से हुआ। पं० बल्देव मिश्र काशी विद्यापीठ के अध्यापक थे। मिश्र जी की छत्रछाया में रहकर नागार्जुन ने राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरुकता और हिन्दी में गद्य लेखन की प्रेरणा प्राप्त की।'[1]

आगे चलकर नागार्जुन का सम्पर्क ऐसे अनेक लोगों से हुआ है जो देश की तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक गतिविधियों में सक्रिय हिस्सा ले रहे थें। इन नेताओं की छाप नागार्जुन के व्यक्तित्व पर भी पड़ी। सिंहल प्रवास के समय 'लंका-सम-समाज' के वामपंथी नेताओं से नागार्जुन का परिचय बढ़ा और उनके कवि-मानस पर वामपंथी राजनीति उभार लेने लगी। भारतीय किसानों के नेता स्वामी सहजानंद से नागार्जुन का पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस की ओर भी नागार्जुन आकृष्ट हुए, किन्तु बोस जी से नागार्जुन का सम्पर्क बहुत अल्प-काल तक ही रहा। दोनों के बीच कुछेक पत्रों के आदान-प्रदान ही हो सके। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन के समीप रहने से ही उनके सशक्त व्यक्तित्व का प्रभाव भी नागार्जुन पर पड़ा। अमवारी के 'किसान-विद्रोह' का नेतृत्व करने के सिलसिले में नागार्जुन को दस महीने के लिए छपरा और हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में कैद कर दिया गया। जेल में उनका सम्पर्क किसान-सभा के प्रसिद्ध नेता पण्डित कायनिंद शर्मा तथा समाजवादी नेता पण्डित श्याम नंदन मिश्र आदि से हुआ। इनके क्रान्तिकारी विचारों से नागार्जुन बहुत प्रभावित हुए। प्रेमचन्द्र, निराला और मैथिलीशरण गुप्त जैसे ईमानदार साहित्यकारों के साथ

---

१. नागार्जुन का रचना संसार, डा० विजय बहादुर सिंह, पृ०सं०, १६-१७

उठने-बैठने का अवसर भी नागार्जुन को खूब मिला है।[1] इन साहित्यकारों की साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं का नागार्जुन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है और वे साहित्य के प्रति एक स्वस्थ दृष्टि का विकास कर सके हैं। नागार्जुन का साहित्य मूलतः सम सामयिक घटनाओं की प्रतिक्रियाओं का ही प्रतिफल है। उन्होंने अधिकांशतः अपने समय की ज्वलन्त समस्याओं से ही प्रेरणा गृहण की है और सबसे बड़ी बात यह है कि इन समस्याओं से वे स्वयं जूझते रहे हैं। इसलिये उनकी अनुभूति में सत्यांश अधिक है। समाज में व्याप्त - वर्ग - विषमता का विष स्वयं पान करके नागार्जुन ने शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ अपनी कलम उठाई है। बाल-विवाह और वैद्यव्य-जीवन के कुपरिणाम नागार्जुन के घर-आँगन की घटनाएँ हैं। स्वयं नागार्जुन का जब विवाह हुआ था, तब वे अठारह वर्ष के और अपराजिता जी मात्र बारह वर्ष की थीं। मिथिला में, विशेष रूप से मैथिल ब्राह्मणों के विवाह 'सोरठा की सभा' में जाने कब से तय होते चले आ रहे हैं। इन विवाहों में पंजीकार लोग कितना भ्रष्टाचार करते हैं- अपनी जेंबें भरने के लिए कितने अनमेल विवाह कराके अबोध कन्याओं का जीवन बरबाद कर देते हैं - यह सब नागार्जुन का रोज का देखा सुना हाल है। इन्हीं सब बातों को उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में ढ़ालकर व्यक्त किया है। वैद्यव्य जीवन के अभिशापों को 'रतिनाथ की चाची' में मार्मिक ढ़ंग से अनावृत्त किया गया है। इन औपन्यासिक कृति की प्रेरणा नागार्जुन को अपने व्यक्तिगत अनुभवों से ही प्राप्त हुई है। 'आइने के सामने' पुस्तक में छपे 'इण्टरब्यू' से यह सच्चाई बिल्कुल साफ हो जाती है कि रतिनाथ की चाचाी कोई और नहीं स्वयं नागार्जुन की चाची हैं और रतिनाथ के रूप में स्वयं नागार्जुन अवतरित हुए हैं।[2] इसी प्रकार धर्म के नाम पर अशिक्षित जनता का जो दोहन कवि ने अपनी ऑखों से नित्यशः देखा है, उसी से क्षुब्ध होकर उसने अपनी लेखनी पैनी की है। राजनैतिक जीवन की विसंगतियों का अनुभव भी कवि ने दूर खड़े होकर

---

१. *नागार्जुन - जीवन और साहित्य, डॉ० प्रकाश चन्द्र भट्ट, पृ०सं० २४-२५*
२. *आइने के सामने, संपादक मोहन राकेश, पृ०सं० - १८*

नहीं, आन्दोलनों के साथ जुड़कर ही प्राप्त किया है। आज - कल के नेताओं की कथनी और करनी के बीच में जो अन्तर है, उसी ने कवि को आग उगलने की प्रेरणा दी है। वास्तव में नागार्जुन का समूचा साहित्य समाज और राजनीति के क्षेत्रों से ही अपनी पोषण सामग्री गृहण करता है। वर्तमान परिस्थितियाँ निरन्तर कवि को कुछ लिखने के लिए प्रेरित करती रहती हैं।

हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिशील आन्दोलन' का विधिवत् श्री गणेश सन् १६३६ में लखनऊ में आयोजित 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' प्रथम अधिवेशन से माना जाता है। लंका से वापस लौटने के बाद नागार्जुन सीधे इस आन्दोलन के सम्पर्क में आए। जन-आन्दोलनों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर चलने का जो निश्चय नागार्जुन ने किया था, साहित्य के इस प्रगतिशील आन्दोलन की मान्यताएं उससे भिन्न नहीं थीं। अस्तु, नागार्जुन ने पूरे ह्दय से इस साहित्यिक आन्दोलन का समर्थन किया। 'प्रगतिशील-आन्दोलन की रणनीति से जुड़कर नागार्जुन ने तो कुछ लिखा, उसके प्रकाशन की भी पूरी-पूरी सुविधा उन्हें मिली, इससे नागार्जुन के लेखन को बड़ा प्रोत्साहन मिला। 'प्रगतिशील आन्दोलन' के साथ अपनी गहन सम्प्रक्ति के कारण नागार्जुन को मार्क्सवादी जीवन दर्शन समझने का भी पर्याप्त अवसर मिला और इस प्रकार साहित्यिक अभिव्यक्ति को एक सुनिश्चित दिशा देने में 'प्रगतिशील आन्दोलन' बड़ा उपायोगी सिद्ध हुआ।

५. काव्य संबंधी दृष्टिकोण :-

नागार्जुन का कविता संसार सर्वहारा जनता का संसार है। वह उनके लिये तड़फड़ाता है, छटपटाता है। उनकी निगाह धरती के उस हिस्से की ओर है जहां एक विशाल समुदाय अपने भविष्य को सुखी बनाने के लिये अंगड़ायी ले रहा है। वह समुदाय है - गरीब, शोषित, पीड़ित, अंधविश्वासों में पिसता हुआ, श्रम के बदले खुद घिसता हुआ, दीन-हीन, उपेक्षित, पद-दलित, क्रयकीतदास, जिनका कवि पक्षधर है। ऐसे लाख-लाख, कोटि-कोटि जन है जिनके लिये, जिनके सुख-दुख के बारे में लिखी हुई इनकी कवितायें हैं। इन कविताओं में जनता के सुख-दुख के बारे में लिखी हुई इनकी कवितायें हैं। इन कविताओ में जनता के सुख-दुख के लिये व्यापक मानवीय संवेदनायें भरी पड़ी हैं। ये कवितायें लोक जीवन से जुड़ी, एक बड़े समाज से तादात्म स्थापित करके आगे बढती है। इनका विषय आस-पास का टीसता सालता हुआ संसार है जो कवि में बैचैनी पैदा करता है। इसी कारण सम्पूर्ण परिदृश्य गहरी मानवीय चिन्ता से आक्रांत है और लोक परिवेश उसका एक अंग है जिससे कविता व्यक्ति की कविता न बनकर जन-जन की कविता का रूप लेती हैं।

नागार्जुन के काव्य संबंधी दृष्टिकोण को दो भागों में बॉटकर स्पष्टतापूर्वक समझा जा सकता है -

१. समाज के प्रति दृष्टिकोण और २. साहित्य के प्रति दृष्टिकोण

१. समाज के प्रति दृष्टिकोण :-

साधारणतया नागार्जुन ने समाज को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखा है। आज के वर्ग विभक्त समाज में व्याप्त शोषण और उत्पीड़न से उनका हृदय क्षुब्ध था। वे समाज में आमूल परिवर्तन चाहते थे और इसके स्थान पर साम्यवादी समाज की रचना का स्वप्न देखते थे। स्वयं दुख-दैन्य भोगकर नागार्जुन इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जव तक व्यापक रूप से क्रान्ति नहीं होती, तब तक समाज में सुख चैन की कल्पना नहीं की

जा सकती। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता की तरह खुलकर घोषणा करते हैं कि "शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है।"[1] नागार्जुन साम्यवादी विचारों के पोषक थे और वर्ग संघर्ष पर उनकी दृढ़ आस्था थी। उन्होंने जीवन पर्यन्त इस संघर्ष में सर्वहारा का साथ दिया।

नागार्जुन वस्तुवादी दृष्टि के समर्थक थे। इस संसार से परे वे किसी अन्य शक्ति की कल्पना तक नहीं करते। समाज के प्रति उनके इस दृष्टिकोण की सशक्त अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है -

सामने फैला - पड़ा शतरंज - सा संसार
स्वप्न में भी मैं न इसको समझता निस्सार
इसी में भव, इसी में निर्वाण
इसी में तन-मन; इसी में प्राण
यही जड़-जंगम सचेतन औ 'अचेतन जन्तु'
यहीं हॉ, 'ना' 'किन्तु' और 'परन्तु'
यही है सुख-दुख का अवबोध
यहीं हर्ष-विषाद, चिन्ताक्रोध
यहीं है संभावना, अनुमान
यहीं स्मृति-विस्मृति सभी का स्थान
छोड़कर इसको कहॉ निस्तार।
छोड़कर इसको कहॉ उद्धार।[2]

समाज में व्याप्त अन्ध विश्वासों और धार्मिक रूढ़ियों का नागार्जुन ने मखौल

---

१. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन - डॉ० ब्रज भूषण सिंह 'आदर्श' पृ०सं० ४०६

२. हजार-हजार बाँहों वाली - नागार्जुन, पृ०सं० १६-१७

उड़ाया है। उनकी रचनाओं में जगह-जगह देवी-देवताओं पर व्यंग-परिहास के छींटे तथा धार्मिक कृत्यों के प्रति तिरस्कार का भाव देखा जा सकता है उन्होंने मूर्तिपूजा और भगवान की काल्पनिक सत्ता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण बार-बार दुहराया है। -

बाप-दादों की तरह रगड़ूँ न मैं निज नाक
मंदिरों की देहली पर पकड़ दोनों कान
हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान! [1]

नागार्जुन की दृष्टि में प्राचीन मान्यतायें अब इस स्थिति में नहीं रह गयीं कि उनसे समाज का कोई हित हो सके। इसलिये बाबा बटेसरनाथ के रूप में नागार्जुन ने दकियानूसी विचारों और जर्जर परम्पराओं का खुलकर विरोध किया है। उन्हीं के शब्दों में "मैं बूढ़ा जरूर हो आया हूँ, लेकिन बीते युगों की सड़ाँध का समर्थन किसी भी कीमत पर नहीं कर सकूंगा।[2]

नागार्जुन व्यक्तिवादी जीवन दर्शन के सर्वथा विरुद्ध थे। उन्होंने व्यक्ति का समष्टि के लिये समर्पण ही श्रेयस्कर माना है -

अधिकाधिक योग-क्षेम
अधिकाधिक शुभ-लाभ
अधिकाधिक चेतना
कर लूँ संचित लघुतम परिधि में
असीम रहे व्यक्तिगत हर्ष-उत्कर्ष
अकेले ही सकुशल जी लूँ सौ वर्ष,
यह कैसे होगा।[3]

---

१. *हजार-हजार बाँहों वाली - नागार्जुन, पृ०सं० १५*
२. *बाबा बटेश्वर नाथ, नागार्जुन, पृ०सं० -५२*
३. *तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ०सं० - ६४*

अपनी बात को अधिक स्पष्टता के साथ उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है -

अपनी बात बताऊँ, सुन लो
भूल गया हूँ, दुःख व्यक्तिगत
स्वागत शोक भी याद नहीं है
सब में सुख की कलित कल्पना
मादकता-सी छा आई है दिल-दिमाग पर
जन सामान्य हमारी सारी आशाओं का प्राण केन्द्र है।[1]

नागार्जुन निरे भौतिकवादी नहीं थे। वे अन्तवाह्य एक रूपता स्थापित करने पर बल देते हैं। उनकी दृष्टि में स्वस्थ विवेकशील व्यक्ति ही समाज का भला कर सकते हैं। केवल भौतिक सुविधाओं का ढ़ेर लगा देने से समाज सुखी नहीं हो सकता। उनका स्पष्ट कथन है कि-

भौतिक भोग मात्र सुलभ हो भूरि-भूरि
विवेक हो कुंठित
तन हो कनकाभ, मन हो तिमिरावृत्त
कमलपत्री नेत्र हो बाहर-बाहर
भीतर की आंखे निपट निमीलित
यह कैसे होगा?
यह क्योंकर होगा? [२]

अस्तु, वे एक शान्त और व्यवस्थित जीवन के लिये बुद्धि और वैभव दोनों की सन्तुलित समायोजना चाहते हैं -

---

१. *तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ०सं० - १६७*
२. *तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ०सं० - ६५*

बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेंगें,

जन-जीवन का यान तभी आगे निकलेगा।'

साहित्य के प्रति दृष्टिकोण :-

नागार्जुन साहित्य के प्रति किसी तटस्थ दृष्टि के पक्षपाती नहीं थे। उनकी राय में प्रत्येक साहित्यकार को पक्षधर की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। समाज के कमजोर वर्ग अर्थात् सर्वहारा की तरीफ में लिखा गया साहित्य ही सच्चा साहित्य हो सकता है। साहित्यकारों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने लिखा है -

चाहते हो
अगर तुम निर्विघ्न होकर
शांतिपूर्वक
शिल्प संस्कृति-कला का, साहित्य का निर्माण करना
X X X
तो उठो
मन और तन की समूची ताकत लगाकर
विघ्न बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो।
अमंगल के, अशुभ के, उन हेतुओं को ध्वस्त कर दो
X X X
अजी आओ -
इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत
कलाधार या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो ....
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा ....[२]

---

१. *तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ०सं० - ११६*
२. *तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ०सं० - ६६-६७*

नागार्जुन साहित्यकार की कोरी भावुकता पर विश्वास नहीं करते। उनकी दृष्टि में साहित्यकार किसी अलौकिक जगत में नहीं रहता, वह भी अन्ततः एक सामाजिक प्राणी ही है। उसकी भी सामाजिक आवश्यकतायें होती हैं। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उसे भी धन की आवश्यकता पड़ती है। फिर भला यह कैसे सम्भव है कि वह धन कमाने के लिए अपने श्रम का उपयोग न करे। साहित्यकार अपनी मेहनत से साहित्य सृजन करता है और यदि उस श्रम संयुक्त साहित्य के माध यम से वह अपनी जीविका चलाने के लिए चार पैसे पैदा कर लेता है तो कोई अपराध ा नहीं करता। आर्थिक लाभ लेना साहित्यकार के लिये कोई पाप नहीं है। नागार्जुन ने स्वयं बहुत सा बाल साहित्य बाजार का भाव ताव देखकर ही सृजित किया था। नागार्जुन की इस निश्छल अभिव्यक्ति से उनका मन्तव्य स्वतः प्रमाणित हो जाता है -

कवि हूँ सच है

किन्तु षट्पदों जैसा क्या मैं

फूल सूँघ कर रह सकता हूँ?

कवि हूँ सच है

पर अशोक के कोमल किसलय

पहन ओढ़कर ही कैसे मैं रह सकता हूँ।

X X X

कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ।

अति मानव या लोकोत्तर किसको कहते हैं-

नहीं जानता

कैसे जानूँ

सुख सुविधा में हुलस-हुलस कर

दुख-दुविधा में झुलस-झुलस कर,

सब जैसे अपने जीवन को बिता रहे हैं,

वैसे मैं भी अपना जीवन बिता रहा हूँ।'[1]

राजनीति और साहित्य के सम्बंधों के बारे में नागार्जुन का स्पष्ट विचार था कि आज के राजनीति प्रधान युग में यथार्थवादी साहित्य को राजनीति के प्रभाव से मुक्त रखना न तो सम्भव है और न ही ऐसे किसी प्रयत्न की आवश्यकता है। राजनीति साहित्य का एक महत्वपूर्ण विषय है और जबकि जीवन राजनीति से ओत-प्रोत हो, तब भला साहित्य को उसके प्रभाव से कैसे अलग रखा जा सकता है। नागार्जुन का अधिकांश साहित्य राजनीतिक उथल-पुथल की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है वे स्वयं राजनीति में सक्रिय रूचि लेते थे और कोई भी राजनीतिक घटना उनकी कलम की पकड़ से छूट नहीं पाती थी। उन्हीं के शब्दों में-

जीवन है राजनीति, राजनीति है जीवन
अन्तास की अभिव्यक्ति ही तो होगा साहित्य।

साहित्य में वस्तु और शिल्प दोनों के प्रति नागार्जुन सजग रहे है, किन्तु शिल्प की अपेक्षा वस्तु को उन्होंने प्राथमिक महत्व दिया है। साहित्य में चमत्कार उतना कीमती नहीं है, जितना कि उसकी विषय वस्तु। नागार्जुन की दृष्टि में साहित्य का विषय भी समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व कर्ता होना चाहिये, जो शोषित और त्रसित है त्रस्त जन जीवन की सहानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति पर ही नागार्जुन सर्वाधिक बल देते रहे हैं वे स्वयं सर्वहारा के कल्याण के लिये आजीवन संघर्षशील रहे हैं। जान बूझकर उन्होंने शिल्प की कभी उपेक्षा नहीं की, किन्तु शिल्प की खातिर वे कभी परेशान नहीं हुये।

६. अभिरूचि-

पत्र पत्रिकाओं का परायण इनका महत्वपूर्ण काम रहा है। दैनिक से लेकर अनियत-कालीन सभी प्रकार की पत्र पत्रिकायें आपने पड़ी। हिन्दी, अंग्रेजी और

---

१. *तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ०सं० - ७२-७३*

बंगला दैनिक आपके लिये अनिवार्य रहा। दिल्ली में बंगला दैनिक के लिये कनाट प्लेस तक जाते। पटना में खुद ही प्रायः प्रतिदिन स्टेशन के चौराहे पर जाकर बंगला दैनिक खरीदा करते थे। हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, मराठी आदि भाषाओं के समकालीन राजनैतिक और साहित्यिक पत्रों से आपका थैला भारी रहता था 'फार इस्ट इकनॉमिक रिव्यू' जैसा कीमती साप्ताहिक भी खरीदते थे। बंगला के सभी शारदीय और वैसाखी अंग अवश्य ही आपको चाहिये। 'लोक लहर' से लेकर 'पांच जन्य' तक सभी प्रकार के साप्ताहिक पढ़ते थे। कभी-कभी 'माया', मनोहर कहानियाँ भी इनके पास दिख जाती थी। एक बार बतलाया था- "माया - मनोहर कहानियाँ इसलिये ले लेता हूँ कि यात्रा में बगल या सामने बैठा व्यक्ति उसी में चिपटा रहता है, तो तंग नहीं करता अपनी अनाप - शनाप बातों से। फिर खुद अपने मन लायक साहित्य का यात्रा में अध्ययन होता रहता है।"

इतनी ज्यादा युगीन पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने के कारण देश-विदेश में घटित हर छोटी बड़ी, घटना की जानकारी रहती थी। साहित्य कर्मी के लिये हर प्रकार की विचारधारा, संस्कृति और राजनीति का ज्ञान आवश्यक है। सम-सामयिक घटनाओं की जानकारी, जन सम्पर्क, परिस्थितियों का ज्ञान तथा युगीन राजनीति का ज्ञान जितना स्पष्ट होगा, साहित्य उतना ही प्रखर और लोकमुखी होगा। नागार्जुन प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का अध्ययन विभिन्न सूत्रों से करते थे। परिस्थितियों को परखने का ढंग भी उनका अपना था। नये लोगों की रचनायें बहुत ही मन से पढ़ा करते थे। मात्र पढ़कर ही नहीं रह जाते, बल्कि उसकी चर्चा यहां वहां करते भी थे। पढ़कर तुरन्त प्रसन्नता जाहिर करने के लिये पत्र लिख देते रचनाकार को। नये लोगों को प्रायः गद्य लिखने के लिये प्रेरित किया करते थे। गद्य लिखने का अर्थ होता है कि लेखन से कुछ प्राप्त करना। किसी भी युग रचनाकार से साहित्य की मौलिक समस्याओं पर घंटों बात करते। युवा वर्ग अपनी रचनाओं पर सुझाव तथा शंका समाधान आपसे हमेशा पाता रहता। युवा वर्ग से इतना ज्यादा लगाव रहा कि जिस सम्मेलन में आप पहुंच जाते, सम्मेलन

का सारा माहौल आपके ही इर्द-गिर्द केंद्रित हो जाता। युवा रचनाकार, युवा चित्रकार और युवा छायाकार सभी बाबा को घेरे रहते। आप भी उनके साथ इस तरह रम जाते।

एक बार सम्बन्ध होने पर इतना ज्यादा अपना-पन देते कि सम्बन्ध गहरा होता जाता। परिचित परिवार में बिल्कुल ही घुल मिलकर एक पारिवारिक सदस्य की तरह हो जाते। बच्चों से बच्चों की तरह बातें करना, महिलाओं से उनकी गृहस्थी की पूंछताछ, बूढ़ों से उनके अनुरूप बातें, युवकों से युवकोचित गर्म जोशी से विभिन्न समस्याओं पर चर्चा।

ब. कृतित्व-

नागार्जुन एक ऐसा सचेत, प्रगतिशील कवि और लेखक था जिसने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी गहरी पैठ का प्रमाण दिया है। साहित्य की लेखनी कविता से लेकर उपन्यास, कहानी, समीक्षा लेख तथा अनुवाद कार्य तक को टटोलती है। उनका साहित्य सृजन केवल हिन्दी भाषा तक ही सीमित नहीं था, हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली, संस्कृत और बंगला भाषाओं में भी उनकी रचनाएं अपनी प्रौढ़ता एवं परिपक्वता का परिचय देती है। गद्य और पद्य दोनों पर उनका समान अधिकार था।

काव्य-सृजन के प्रति नागार्जुन की रूचि छात्र जीवन से ही रही है। सबसे पहले उन्होंने संस्कृत में लिखना शुरू किया था। प्रारम्भ में समस्यापूर्ति की शैली में अभ्यास किया करते थे। काशी में बालवर्धिनी सभा की ओर से आयोजित होने वाली समस्यापूर्ति की प्रतियोगिताओं में नागार्जुन कई बार पुरस्कृत भी हुये थे। इन पुरस्कारों से उनका मनोबल इतना बढ़ा कि फिर वे संस्कृत के साथ-साथ मैथिली में भी धडल्ले से लिखने लगे। उनकी मैथिली में प्रथम प्रकाशित रचना (महामहोपाध्याय पण्डित मुरलीधर झा की मृत्यु पर एक शोकगीत) लहरिया सराय से निकलने वाली मासिक

पत्रिका 'मिथिला' सन् १६३० में छपी। संस्कृत और मैथिली में अपना हाथ साफ करके नागार्जुन ने हिन्दी में भी लिखना शुरू किया। उनकी पहली हिन्दी कविता 'राम के प्रति' लाहौर से प्रकाशित 'विश्वबन्धु' साप्ताहिक में सन् १६३५ में छपी।

कविता के क्षेत्र में अपनी सफलताओं को देखकर नागार्जुन का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता गया, उनके सृजन में परिष्कार आता गया और उनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रमुखता के साथ छपने लगी। लगभग २० वर्षों तक पत्रिकाओं में विचरण करने के बाद उनकी हिन्दी कविताओं का प्रथम संग्रह 'युगधारा' नाम से सन् १६५६ में प्रकाशित हुआ।

युगधारा -

अपने पहले संग्रह 'युगधारा' में कवि जनवादी रूप में सामने आया है। प्रगतिशीलता के धरातल पर कवि सर्वहारा के साथ जुड़ा है साथ ही तिजारती सभ्यता के पोषक एवं सामान्य जन के शोषण के प्रति कटु हो उठा है। इस संग्रह की कुल ४८ कविताओं में 'विजयी के वंशधर' 'पक्षधर' 'जनकवि' 'उद्‌बोधन' 'धरती' 'प्रेत का बयान' 'भुस का पुतला' 'छोटे बाबू' एवं 'जयति कोरिया देश' इस बात का प्रमाण है। 'विजयी के वंशधर' कविता में भद्रलोक के नुमाइंदों, जमीदारों की खोखली शान-शौकत, आत्म प्रदर्शन एवं जनता का शोषण वर्णित है। 'नयी पौध' में सामाजिक असमानता का स्पष्ट चित्र है, जो समाज का यथार्थ रूप है। इस संग्रह की पहली कविता में ही कवि जन वन्दना करता, जो उसके लिये सर्वोपरि है। 'प्रेत का बयान' 'भुस का पुतला' एवं 'स्वदेशी शासन' में भारत की दुर्दशा एवं उसके लिये उत्तरदायी शक्तियों की सटीक पहचान की गयी है। 'तुम जगीं संसार जाये जाग' एवं 'जया' शीर्षक कवितायें उदात्त दाम्पत्य एवं वात्सल्य भावों की सफल अभिव्यक्ति है। प्रकृति का उदय बरफ पड़ी है, 'जयति-जयति बरसात', 'शपथ' एवं 'तर्पण' कविताओं में गांधी की मौत के बाद हृदय विदारक कष्ट एवं तदजन्य सात्विक क्रोधाग्नि की लपट बिखेरने की शक्ति प्रकट हुई

है। कुछ मनमौजी किस्म की हल्की कवितायें भी है जो कि व्यंग्य की मार तो करती है लेकिन स्थायी घाव नहीं कर पाती। 'चंदना' 'भिक्षुणी' एवं 'पाषाणी' कविताओं का कलेवर विशाल है, किन्तु नागार्जुन की सही तस्वीर इन कविताओं में नहीं उभर पाती। कुल मिलाकर 'युगधारा' में नागार्जुन प्रगतिशीलता की जिस बुनियाद पर सर्वहारा के साथ जिस सोच को लेकर खड़े है, वह निराला की याददाश्त को ताजा कर लेते हैं।

सतरंगे पंखों वाली-

नागार्जुन का दूसरा काव्य संग्रह 'संतरंगे पंखों वाली सन् १६५६ में प्रकाशित हुआ। यद्यपि ये कविताएं बहुत पहले लिखी जा चुकी थी। इस काव्य संग्रह में नागार्जुन अपनी विशिष्ट पहचान बनाये रखते हैं। सामान्य जनता की भूमि से जुड़कर 'यह कैसे होगा' 'देखना ओ गंगा मइया', 'खुरदुरे पैर', 'अकाल और उसके बाद', 'तो फिर क्या हुआ', 'हटे दनुज दल मिटे अमंगल', 'ऐसा क्या अब फिर- फिर होगा' तथा 'ओ जन-मन के सजग चितेरे' जैसी कविताओं की रचना करते हैं इस काव्य-संग्रह का महत्व अन्य काव्य संग्रहों से कुछ अलग कवि की दाम्पत्य-प्रेम की कविताओं के कारण है। 'तन गयी रीढ़' 'यह तुम थी', 'सिन्दूर तिलकित भाल' अपने-अपने ढंग की अनूठी कविताएं है। 'जयति नख रंजनी' 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' और 'तू चक्कर लगा आया तमाम' आदि कविताओं में पुरानी चुटकी काटने वाली पद्धति है 'कैसा लगेगा तुम्हें 'और 'ओ जन-मन के सजग चितेरे' तथा 'तुम किशोर', 'तुम तरूण' कविताएं कवि की सहृदयता की परिचायक है।

प्यासी पथराई आंखे-

नागार्जुन का तीसरा काव्य संग्रह 'प्यासी पथराई आंखे' सन् १६६२ में प्रकाशित हुआ है यह संग्रह नागार्जुन की सोच और दृष्टि जो 'युगधारा' और 'सतरंगे पंखों वाली में बनी है उसे बढ़ाती है। यहां कवि दृष्टि यथार्थ के धरातल पर और

अधिक पुष्ट हुयी है। इस संग्रह की कविताएं सशक्त मानी जाती है। 'तालाब की मछलियों, 'काली माई', 'भारती सिर पीट रही है', 'घिन तो नहीं आती', अपने आप में बेजोड़ कविताएं है। इसमें भी कुछ हल्की फुल्की कविताओं को देखा जा सकता है। भारतीय पुरूष प्रधान समाज में शोषितों का एक अंग नारी भी है। 'तालाब की मछलियों' शीर्षक कविता में इसी नारी शोषण की बिरदावली है, जो जमींदार प्रथा की बुराइयों को उघेड़ने के साथ ही साथ पुरूषों के स्वार्थपरक विलासी भाव को बेनकाब करती है। नारी जो समाज का उपेक्षित किन्तु अनिवार्य अंग है। नागार्जुन जैसे दृष्टि सम्पन्न कवि से कैसे छूट सकती है। 'काली माई' 'घिन तो नहीं आती' कविताएं नागार्जुन को सर्वहारा के साथ जोड़ती है। ट्राम के घचके में पसीने से बदबू करता हुआ शरीर दूध से स्वच्छ घुले हुये लिबासों वालों से सटता है तो व्यग्य बाण चलाकर भद्र वर्ग को वे तिलमिला देते हैं। यह संग्रह नागार्जुन के काव्योत्कर्ष का चरम बिन्दु रहा है।

भस्मांकुर-

'भस्मांकुर' नागार्जुन का खण्डकाव्य है। कवि ने पौराणिक आख्यान से इसकी विषय वस्तु का चयन किया है महावली राक्षस 'तारक' जब देवताओं को बहुत अधिक सताने लगा तब देव-समाज ब्रह्मा से प्रार्थना करने गया। नेतृत्व का भार विष्णु पर सौंपा गया क्योंकि इस प्रकार के प्रतिनिधि मंडलों का सफल नेतृत्व वे पूर्व में कई बार कर चुके थे।

ब्रह्मा ने कहा कि यदि शिव जी हिमालय की पुत्री पार्वती से विवाह कर ले तो उनसे उत्पन्न पुत्र इस राक्षस का संहार कर सकेगा।

लेकिन तपस्या में लीन भगवान शंकर का ध्यान पार्वती की ओर आकृष्ट करना और उनका समागम करवाना बड़ा टेढ़ा काम था, जिसका भार कामदेव

ने अपने ऊपर लिया। वह अपने सखा और सहयोगी बसन्त के साथ कैलाश शिखर की ओर चला।

नागार्जुन रचित 'भस्मांकुर' का आरम्भ वहीं से होता है। बसन्त ने कैलाश के उस अंचल में जादू कर दिया। ' सारी शिखर मालाएं हरियाली से ढ़क गयी। शिव जी के मन को चंचल करने के लिये यह सारी सुन्दरता आवश्यक थी न ...। पार्वती अपने स्वप्न में शिव-मिलन के दृश्य ही देखती है।

कभी-कभी ध्यान-मग्न शिव की वह परिचर्या करने भी आती है। शिवजी प्रीति-स्निग्ध नेत्रों से पार्वती की ओर देखते हैं।

किन्तु जब शिव अपना ध्यान भंग होते देखकर इसका कारण जानने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाते है तो उन्हें 'लता कुंज की ओट में मदन दिखाई पड़ गया।" फिर क्या था शिव का क्रोध तो पुराण - प्रसिद्ध है, "रूद्र का कोपानल भडका तो अगले ही क्षण कामदेव भस्म हो चुका था।" [२]

अपने पति का यह करूण अन्त देख रति विहल हो जाती है। वह आत्मदाह करना चाहती है। बसन्त उसे समझाता है। आकाशवाणी होती है और उससे आश्वस्त होकर रति और बसंत की प्रसन्नता लौट आती है।

इस अति संक्षिप्त कथावस्तु को नागार्जुन ने अपनी प्रखर कल्पना से सजा दिया है। कवि ने संक्षिप्त प्रसंग को उठाकर समुचित विस्तार दिया है, पर उसका ध्यान लक्ष्य से हटा नहीं है।

आरम्भ से अन्त तक एक ही कथा नागार्जुन ने इसमें रखी है।

'कुमार सम्भव' कालिदास का बड़ा ही प्रसिद्ध काव्य है। मदन-दहन

---

१. *भस्मांकुर, भूमिका, पृ०सं० १*
२. *भस्मांकुर, पृ०सं० १*

का यह कथानक नागार्जुन ने उसी से लिया है। 'भस्मांकुर' नाम भी अपने आप में विलक्षण संकेत है, जो भस्म हो चुका है वह फिर वहीं से अंकुरित हो उठेगा। यदि नागार्जुन पुराने ढंग का कोई शीर्षक चुनते तो 'मदन-पराभव, 'कंदर्प-दर्प-हरण', मनमथ-मथन', 'स्मरविजय जैसा कोई नाम इस खण्ड काव्य का पड़ जाता। कवि द्वारा प्रयुक्त नामगत यह नवीतना कथावस्तु के अभिनव गठन की ओर भी इंगित करती है।

'भस्मांकुर' में कामदेव जैसे सुकोमल प्रतिपक्ष पर शिव जैसे प्रबल पराक्रमी का प्रहार करता देख लगता है, कवि के मस्तिष्क में, विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा कमजोर देशों पर किये जा रहे आक्रमणों की स्मृति भी उभर रही है। यहां शिव माध्यम है, कवि का स्पष्ट संकेत अमेरिका जैसे आक्रामक राष्ट्रों की ओर प्रतीत होता है, जो विएतनाम जैसे छोटे से राष्ट्र को कुचल रहे हैं। तभी उसने लिखा है-

कुसुम-सुकोमल-प्रतिपक्षी पर हाय
बरसा दी उसने सौ मन बारूद [1]

छंद, भाषा, भाव आदि विभिन्न दृष्टियों से उक्त कृति अनूठी है। भावनाट्य के रूप में इसे सफलता से रंगमंच पर अभिनीत किया जा सकता है।

तालाब की मछलियाँ -

सन् १९७४ में बाबा का नया संग्रह प्रकाशित हुआ 'तालाब की मछलियाँ'। इसकी अधिकांश कविताएं अन्य संग्रहों में है। कुल मिलाकर केवल आठ अप्रकाशित कविताएं इस संग्रह में है। बहरहाल अब यह अनुपलब्ध पुस्तकों की सूची में है।

इस संग्रह की कविताओं में प्रकृति का अंश कम है। और मानवीयता को समर्पित तथा राजनीतिक बिम्बों का अंश अधिक है वैसे भी यह समय मार्च १९७४

---

१. *भस्मांकुर, पृ०सं० ३८*

में प्रारम्भ क्रान्ति का था और नागार्जुन इसमें बराबरी के हिस्सेदार भी रहे। यह समय इसीलिये उनके लिये शोषण के विरूद्ध आवाज का था, जीवन में आस्था का था। बाबा ने अपने समय के साथ चलते हुये इस समय में अनेक आग उगलती कविताएं लिखी। इस संग्रह की उल्लेखनीय कविताओं में 'चौधरी राजकमल' और वह कौन था' है।

खिचड़ी विप्लव देखा हमने- तुमने कहा था-

सन् १९८० में नागार्जुन के दो काव्य संग्रह - 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' और 'तुमने कहा था' एक साथ प्रकाशित हुये। किन्तु इन संग्रहों की बहुत सारी कविताएं तत्कालिकता का इतिहास प्रस्तुत करती है। समाज की जो पकड़ एवं सोच पूर्व वर्णित काव्य संग्रहों में रही है। वह यहाँ नहीं पायी जाती । इन काव्य संग्रहों की अधिकांश कविताएं राजनीति एवं राजनीतिज्ञों से जुड़ी है। खासकर इन्दिरा गांधी पर कवि का रूख विशेष कटु रहा है और इस कारण कुछ कविताएं नारे- बाजी- सी लगती है 'इन्दु जी' क्या हुआ आपको' और 'जी हो' यह सबकी चहेती है में इस बात के पर्याप्त प्रमाण देखे जा सकते है। दूसरी ओर सम्पूर्ण क्रान्ति में जनता पार्टी का साथ देने के बावजूद मोह भंग की अवस्था में 'जनता के हो गए बारह महीनें', 'वो अंदर से वास करेगे', 'घटक बाद उठा पटक है', 'फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवर' जैसी कविताओं में कवि का लेखन प्रश्नांकित अवश्य ही होगा। क्या एक सुरूचि सम्पन्न पाठक ऐसी हल्की व्यंग्य भरी कविताएं पढ़कर सन्तुष्ट होगा ? ये कविताएं काव्य की दृष्टि से उनके पिछले संग्रहों की तुलना में कम मूल्यवान है। लेकिन फिर भी जन-जीवन और काल का लेखा-जोखा रहने का काम इन कविताओं में बखूवी और काव्यात्मकता के साथ किया है। केदार नाथ सिंह कहते हैं।- ''नागार्जुन के इधर के कुछ संग्रहों की कुछ कविताओं में उनके भीतर की भाव यात्रा का एक और स्तर दिखाई देता है, जिसका उल्लेख आवश्यक है। इसका संबंध ठेठ भारतीय मानस की बनावट और उसके भीतर घटित होने वाले परिवर्तन की उस वास्तविकता से है, जो धार्मिक आस्था से नये जीवन मूल्यों की ओर संक्रमण के द्वंद्व से पैदा हुई है। 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' में एक कविता है -

'व्यथित चकित भ्रमित भग्न मन को/स्फूर्ति देता है किसी समर्थ का सहारा/ तो क्या मुझे भी आस्तिक बन जाना होगा?/ तो क्या मुझे' - वाक्य का यह टुकड़ा अर्थपूर्ण है और कवि का सारा जोर उसी पर है। इस मुझे भी में ढलती हुई आयु की ऐसी पीड़ा है जिसका ठेठ हिन्दुस्तानी मन की बनावट से गहरा रिश्ता हैं।' [1]

इन्हीं दोनों संग्रहों के बारे में सुरेशचन्द्र त्यागी लिखते है-... तुमने कहा था' और 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' दोनों १६८० के प्रकाशन है और इनकी पीठिका में पिछले कुछ वर्षों का परिवेश मौजूद है ये कविताएं एक साथ दो दुनियां सामने लाती है। पहले कवि संवेदन के साथ क्रान्ति की स्थितियों से जुड़ता है यहां मोह भंग से गुजरते हुये वह तथा कथित क्रान्ति की खिल्ली उड़ाना है यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि राजनीति के सामयिक संदर्भ कविता में क्या शक्ल लेते हैं? हम स्वीकारते है कि नागार्जुन में सामग्री सीधे ही राजनीतिक मंच से प्राप्त की है, वक्तव्य बहुल भी हो गए है। कई बार आक्रोश इतना तीव्र और त्वरित है कि हमें डायन चुडैल जैसे शब्द भी सुनने को मिलते है, पर यहां कवि का मुख्य विरोध तानाशाही से हैं।' [२]

हजार-हजार बाहों वाली-

नागार्जुन का अगला काव्य संग्रह 'हजार -हजार बाहों वाली १६८१ में प्रकाशित हुआ। इसमें '१११' कविताएं संकलित है। इसमें 'तालाब की मछलियां' संग्रह की भी कई कविताएं है। यह काव्य संग्रह बाबा की छवि को प्रतिष्ठापित करने में पूर्णतया सक्षम है। यह अलग-अलग मूड की कविताएं है सामान्य जन के साथ कवि 'मन करता है', 'वाणिक्य पुत्र', 'मैं हूं सबके साथ', 'मैं कैसे अमरित बरसाऊं', 'तीस हजारी कार', 'एक्शन में आ गए लाख-लाख, आदि कविताएं है जो वास्तव में उसे सामान्य जनता का मसीहा साबित करने वाली रचनाएं है वहीं प्रकृति एवं प्रेमपरक कविताएं भी यहां है। 'जय हे कीचड़' जैसी कविता

---

१. आलोचना, जनवरी-जून १६८१, केदार नाथ सिंह, पृ०सं० १८
२. सम्पर्क - नागार्जुन, १६८३ सुरेश चन्द्र त्यागी, पृ०सं० १२

'बाबा ही लिख सकते हैं 'उजली हंसी के छोर' एवं बलाका' जैसी कविताओं की रचना करने में कवि पूर्णतः सफल रहा है। उनका चिरपरिचित कलात्मक व्यंग्य एवं चुटकी लेने वाली शैली दोनों भरपूर मात्रा में देखे जा सकते हैं। इस काव्य संग्रह में कवि का स्वर वामपंथ की ओर और अधिक मुड़ा है।

पुरानी जूतियों का कोरस-

इसके बाद प्रकाशित हुआ संग्रह 'पुरानी जूतियों का कोरस' जो कि सन् १६८३ में प्रकाशित हुआ। इसमें सन् ४१ की कवितायें भी है और सन् ८१ की भी, लेकिन सबका रंग एक ही है इस संग्रह में व्यक्ति, चित्र, अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय राजनीति से जुड़ी कविताएं अधिक है और प्रकृति तथा सामान्य जीवन की कविताएं कम। प्रेमचन्द, भारतेन्दु, भगत सिह, नागभूषण, पटनायक लेनिन, कामराज, मोरारजी, जयप्रकाश नारायण, फिजो, दलाई लामा, चरण सिंह, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी उनके व्यक्त चित्रों में शामिल है। समकालीन राजनीति में बिहार की राजनीति पर अधिक जोर है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के चित्र भी इस संग्रह में अधिक है- रूस, चीन, अमेरिका, नेपाल। इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविताएं 'पुरानी जूतियों का कोरस' और 'सरकाऊ सीढ़िया' है। सरकाऊ सीढ़ियों का बिम्ब भी बस नागार्जुन के ही बस की बात थी।

रत्नगर्भ-

सन् १६८४ में बाबा का अगला संग्रह आया - रत्नगर्भ। यह संग्रह नागार्जुन की कविता के एक नये धरातल से हमारा परिचय कराता है। इस संग्रह की कुल आठ कविताओं की पृष्ठभूमि इतिहास, मिथक, लोक प्रसिद्ध घटनाएं और आख्यान है। अतः कवि वहां इतिहास और लोक की उन कड़ियों को जोड़ता है जो न केवल जीवन की पुर्नरचना करती है बल्कि एक नये सत्य का भी साक्षात्कार कराती है।

इस प्रकार नागार्जुन इतिहास की विस्मृत कड़ियों को हमारे लिए प्रासंगिक भी बनाते हैं। नागार्जुन की प्रस्तुत कविताएं इतिहास के दीर्घकाल खण्ड की सामाजिक जीवन व्यवस्था की अनेक पर्तों और त्रासदियों की अनुगूंज को प्रवाहित करती है। शुद्ध धार्मिक पृष्ठभूमि की कथा-सरणियों के भीतर से कवि सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों को व्यक्त करने के लिये अपने कवि मानस का स्वच्छन्द उपयोग करता है।

नागार्जुन की कविता में युद्ध के प्रसंग विनाश के पर्याय रूप में आये हैं। चन्दना, युद्ध का अन्त और रत्नगर्भ कविता में युद्ध के संदर्भ में आये हैं। रत्नगर्भ कविता में धार्मिक स्थलों की लूटपाट को कवि ने सामन्ती युद्धों से जोड़ा है। इस प्रकार उसने इस साम्प्रदायिक धारणा का खण्डन किया है कि मुसलमान आक्रान्ताओं ने मजहबी जुनून में हिन्दू धार्मिक स्थलों का विनाश किया। यह बात सिद्ध है कि धार्मिक स्थलों में सम्पत्ति का खजाना एकत्रित होता है। इसीलिये देश के तमाम मंदिर लूटने की घटनाएं प्रकाश में आयी है।

ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!-

नागार्जुन की कविताएं संवाद की कविताएं है। समाज की अनेक पर्ते नागार्जुन की कविता में उनके घुमक्कड़ी जीवन का स्पष्ट संकेत देती है। वस्तुतः नागार्जुन की कविता के आधार पर भारतीय भूगोल का भी अध्ययन किया जा सकता है। मैदानी भागों से लेकर पहाड़ी क्षेत्रों तक, दक्षिण भारत से लकर असम तक नागार्जुन घूमते फिरते हैं। ये यात्राएं नागार्जुन की चेतना को बल प्रदान करती है, उन्हें आत्मीयता प्रदान करती हैं इसलिये नागार्जुन की कविताओं की बातचीत की पद्धति काव्यात्मक हो गयी। इसका एक परिणाम यह हुआ कि नागार्जुन की कविता में वक्ता और श्रोता की पद्धति के कारण उसका पाठक जगत लगातार विस्तृत हुआ है। इसी गुण के कारण नागार्जुन की कविता जन कविता हो सकी। इसके लिये उसने काव्य-वस्तु और काव्य पद्धति की सरलता को बनाये रखा। इसका प्रमाण 'ऐसे भी हम

क्या! ऐसे भी तुम क्या! है।

प्रस्तुत संकलन में सन् १६८१ से १६८३ तक की कविताएं संग्रहीत है। प्रस्तुत संकलन की कविताओं में प्रकृति की सुषमा और समकालीन जीवन की विसंगतियों के बीच नागार्जुन का प्यार सुरक्षित है। शिशु जीवन, राजनीतिक चेतना, असमानताओं, श्रमिकों और किसानों पर अनेक कविताएं लिखी है। इनमें वे अपने जीवन का प्रतिरूप खोजते हैं और निश्छल प्रसन्नता का बीज बोते हैं।

नागार्जुन की चुनी हुई रचनायें (समग्र संकलन) :-

भाग - (१)

नागार्जुन की चुनी हुई रचनाओं के इस पहले खण्ड में उनके चार कालजयी उपन्यास रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बरुण के बेटे, और कुम्भीपाक संकलित है। इन उपन्यासों में नागार्जुन ने भारतीय जन जीवन की महागाथा लिखी है। इन्हें एक साथ पढ़ना भारतीय समाज के उन लोगों के बीच शोषण झेलते हुये जो आज भी सामाजिक विसंगतियों के बीच शोषण झेलते हुए बेहतर जिन्दगी के लिए संघर्ष कर रहे हैं, उसका इन्तजार कर रहे हैं। इन उपन्यासों के पात्रों से साक्षात्कार एक रचनात्मक अनुभव है। रचनात्मक इस अर्थ में कि इन पात्रों की जिन्दगी में झांकने के बाद हम अपने संसार और उसकी मुश्किलों को और भी गहराई में समझ पाते हैं और महसूस करते हैं कि इसे ऐसे ही नहीं रहने देना है मुक्ति की दिशा में बदलना है।

उपन्यासों की संरचना और भाषा में सादगी है, किस्सा कहने की नितान्त भारतीय शैली- जिसमें चरित्र रचनात्मक विकास के साथ सार्थक परिणति की ओर बढ़ते हैं। 'भारतीय उपन्यास' की विशेष प्रकृति को अगर रेखांकित करना हो तो नागार्जुन के इन उपन्यासों में वह आसानी ने सम्भव किया जा सकता है।

भाग - २

बीसवीं सदी की हिन्दी कविता में नागार्जुन अब एक युग का नाम है। इस युग की पहचान है नागार्जुन की रचनाओं का समाजवादी यथार्थवाद। असल में अपनी कविताओं में वे अपने समय की जनमानसिकता का दैनिक इतिहास दर्ज करते हैं यह इतिहास विवरणात्मक, सामाजिक इतिहास नहीं है बल्कि जनता की तत्कालिक संवेदना का रचनात्मक इतिहास है। इसमें उसके शोध की एक -एक धड़कन दर्ज है। निश्चय ही यह संवेदनात्मक इतिहास हमारी ऐतिहासिक समझ को सम्पूर्ण बनाने में

रचनात्मक भूमिका निभाता है। नागार्जुन अपनी हजारों कविताओं के माफिक लम्बे अर्से से रचना की इस नयी दिशा में आगे बढ़ते रहे हैं। उन्होंने ऐसी कवितायें भी कम नहीं लिखी हैं, जिनमें निजी जिन्दगी के हर्ष विषाद, सघन संवदेनात्मकता और रचनात्मक ऐन्द्रिकता के साथ अभिव्यक्त हुये हैं। प्रेम और प्रकृति से जुड़ी उनकी कवितायें भी एक ऐसा मानवीय संसार रचती हैं जो अद्वितीय है, उन आलोचकों के लिये ये कवितायें चुनौती की तरह हैं जो यह आरोप लगाते रहे हैं कि प्रगतिशील कविता मानवीय संवेदनाओं की अत्यन्तिकता से अछूती हैं और कलात्मकता से सीधा रिश्ता नहीं है।

नागार्जुन की चुनी हुई कविताओं के इस समग्र संकलन की एक दिलचस्प विशेषता यह भी है कि हिन्दी और मैथिली कविताओं के साथ ही पहली बार उनकी संस्कृत और बंगला कवितायें भी प्रकाशित की जा रही हैं।

इस संकलन में २२१ कवितायें संकलित हैं। इस संकलन में नागार्जुन की बहुआयामी कविता अपने सारे तेवरों के साथ मौजूद हैं। इस कविता पर रचनाकार नागार्जुन के बहुआयामी व्यक्तित्व की छाप गहराई से अंकित है। इन कविताओ का संसार कोई सीमित नहीं है जिसे आचार्य शुक्ल ने नर जगत, नरेत्तर बाह्य जगत और उससे भी आगे समूचे चराचर जगत की संज्ञा दी है। नागार्जुन की कविता इन सब को अपनी परिधि में समेटती है। इस संकलन में ऐसी रचनायें भी हैं जो नागार्जुन की वैयक्तिक सम्वेदना के मार्मिक अंशों को उजागर करती हैं। संकलन में कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जो व्यक्तियों को सम्बोधित है या उन पर लिखी गयी है। इनमें देश - विदेश के राजनेता हैं, कवि कलाकार है, विचारक मनीषि है। कुछ नागार्जुन के पूर्ववर्ती हैं, कुछ समकालीन, कुछ उनके श्रद्धेय, कुछ नितान्त आत्मीय । कुछ के प्रति उनका श्रद्धा -सम्मान व्यक्त हुआ है। कुछ के प्रति उनका प्यार और आत्मीयता, किन्तु वे सव ऐसे हैं जिनकी चिन्ता समूची मनुष्यता के प्रति रही है ये रचनाएं उस प्रकार की औपचारिक

रचनायें नहीं है जो किसी लाभ- लोभ से प्रेरित होकर तथाकथित बड़ों के प्रति लिखी जाती है या जिनमें किसी बड़े का उसके जन्म दिन या अन्य किसी विशिष्ट अवसर पर अति रंजना पूर्ण स्मरण कर औपचारिकता का निर्वाह करते हुये छुट्टी पा ली जाती है, जो निहायत ठण्डे किस्म की निर्जीव कवितायें होती है। कहने का मतलब यह है कि नागार्जुन की ये कवितायें बड़े सात्विक मनोभाव में जन्मी कवितायें है। इन कविताओं में कवि की मनः स्थिति अपने तेवरों में अपने को अभिव्यक्त करती है जिन्हें इनकी भाषा तथा शैलीगत भंगिमाओं में लक्ष्य किया जा सकता है। केदार नागार्जुन के आत्मीय है। और उन पर लिखी गई उनकी कविता अनेक अर्थो में एक विशिष्ट कविता है। केदार पर लिखते हुये नागार्जुन स्वयं केदार मय हो गये है और बिना किसी अतिरंजना के उन्होंने बुन्देलखण्ड की धरती के इस कवि को उसकी धरती के सारे ऐतिहासिक और भौगोलिक वैशिष्ट्य के साथ उसके अर्न्तवाह्य की समूची वास्तविकता में बड़े ही मनयोग से प्रस्तुत किया है। कविता लम्बी है परन्तु अपनी आन्तरिक लय में अटूट और एकतान। एक उदाहरण -

..केन कूल की काली मिट्टी वही भी तुम हो..

और भी कविताएं जो व्यक्तियों के बारे में इस संकलन में है, नागार्जुन की कवि प्रतिभा को अपने सन्दर्भो में उजागर करती है।

नागार्जुन की बहुआयामी रचनाशीलता की प्रतिनिधि रचनाओं का यह संकलन इसीलिये है ताकि नागार्जुन को उनकी समग्रता में पहचाना जाये और उन पर रायजनी करते हुये उनकी कवि सम्वेदना के सारे पक्षों को दृष्टि की परिधि में लाया जाये।

इस संकलन में नागार्जुन की मैथिली कवितायें, बंगला रचनायें, संस्कृत रचनायें तथा मेघदूत का रूपान्तर आदि भी संकलित है।

२. काव्य पुस्तिका -

३० जनवरी १६४८ ई० को महात्मा गाँधी की हत्या हुई और इसके दस दिनों के भीतर ही नागार्जुन की चार क्षोभ-व्यंजक कविताएं 'शपथ', 'तर्पण', 'गोडसे', और 'मत क्षमा करना' 'जनशक्ति' दैनिक पटना में 'शोणित तर्पण' नामक मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत छपती रहीं। उल्लेखनीय है कि बिहार के तत्कालीन प्रशासन ने उन रचनाओं को 'वर्जित रचना' की सूची में डालकर कवि और अखबार पर कानूनी कार्रवाई की और उन्हें प्रताड़ित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फलस्वरूप नागार्जुन को स्वतंत्र भारत में पहली बार जेल ज़ाना पड़ा। लेकिन उसी वर्ष उन चारों कविताओं की एक बुकलेट भी छपी। नाम था - शपथ।

शपथ - (सन् १६४८)

यह नागार्जुन की हिन्दी कविताओं की पहली बुकलेट थी। यह पुस्तिका हमें उपलब्ध नहीं हो पाई है। हंस के मार्च १६४८ ई० के अंक में 'महाशत्रुओं की दाल न गलने देंगे' शीर्षक से नागार्जुन की एक कविता छपी। रचना कुछ लम्बी है। उस रचना में 'शपथ' और 'तर्पण' की ढेरों पंक्तियां है। ऐसा अनुमान है कि उसमें 'शपथ' बुकलेट की अन्य दो रचनाओं की पंक्तियां भी हों। 'युगधारा' १६५३ में 'शपथ' नामक बुकलेट से दो रचनाएं 'शपथ' और 'तर्पण' संकलित की गई है।

चना जोर गरम- (सन् १६५२)

इसे हंस प्रकाशन ने एक पैम्फलेट के रूप में प्रकाशित किया था और इसका तत्कालिक उपयोग स्वतंत्र भारत के प्रथम आम चुनाव में साम्यवादी दल का प्रचार और प्रसार करने के निमित्त किया गया था। इसमें कवि ने एक विशेष प्रकार की लोकप्रिय 'फेरीवाले की शैली' में कांग्रेसी नेताओं पर तीखे व्यंग्य किए है।

चना खाएँ कांग्रेसी लोग

कि जिसमें दुनिया - भर के रोग

साघते सत्त-अहिंसा-योग

लगाते फिर भी सब कुछ भोग

पहनते है खद्दर का चोग

नहीं है देश-कोस का सोग

राज से न हो जाए वियोग

इसी से फैलाते है फोग

वोट पाने का है उद्योग

भिड़ाते है छल-बल का जोग

बतन को बना दिया बाजार

प्रजा को छोड़ दिया मझधार

चना जोर गरम...

कांग्रेसियों पर व्यंग्य के साथ ही जातिवाद, रिश्वत आदि को भी सामने लाया गया है।

प्रेत का बयान-

यह भी पन्द्रह-सोलह पृष्ठों की एक छोटी-सी काव्य पुस्तिका है, जिसे पैम्फलेट कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसमें नागार्जुन की व्यंग्य कविताएं संग्रहीत हैं। व्यंग्य प्रखर है, किन्तु उनकी रचना मुख्यतः जन साधारण को लक्ष्य करके की गयी है। व्यंग्य करते समय कवि कांग्रेसी नेताओं को भूल नहीं पाया। 'दुखरन का' तथा 'प्रेत का बयान' शीर्षक रचनाएं अपनी व्यंग्यधर्मिता के लिये विशेष महत्व रखती है। [1]

---

1. *प्रगतिवादी काव्य - श्री उमेश चन्द्र मिश्र, पृ०सं० १४७*

खून और शोले - (सन् १९५७)

इस बुकलेट में पटना-छात्र-गोली काण्ड की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखी गयी कविताएं संग्रहीत है। इन कविताओं में कवि ने गोली काण्ड में शहीद हुए विद्यार्थियों के प्रति अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए बिहार की कांग्रेस सरकार तथा भारत के तत्कालीन राजनीतिक शासकों पर कड़े व्यंग्य प्रहार किये हैं। '

अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन - (सन् १९७१)

इस बुकलेट का प्रकाशन चुनाव में श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रति विरोध प्रदर्शित करने की दृष्टि से किया गया था। कवि देश में व्याप्त महंगाई और भृष्टाचार का चित्र खींचते हुए, सारी अव्यवस्था के लिये श्रीमती गांधी को दोषी सिद्ध करता है और उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता के प्रति चिन्ता व्यक्त करता है। कवि ने अपना आक्रोश व्यंग्यात्मक स्वरों में व्यक्त किया है।

मैथिली भाषा की रचनायें-

नागार्जुन की मातृभाषा मैथिली थी। मैथिली में इन्होंने 'यात्री' के नाम से रचनाएं की। समय-समय पर प्रकाशित यात्री की कविताओं की संख्या अब काफी है। इनमें कई रंग की कविताओं के आलम्बन रहे हैं, परन्तु उन रचनाओं का कोई संकलन अब तक प्रकाशित नहीं हो सका। यद्यपि समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में फुटकर तौर पर उक्त रचनायें प्रकाशित होती रही है। इनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुये- 'चित्रा' और 'पत्रहीन नग्न गाछ'।

डॉ० नामवर सिंह ने कवि नागार्जुन के विषय में यह ठीक ही लिखा है कि 'इनकी हिन्दी कविताओं का मूल्यांकन समग्रतापूर्वक तभी किया जा सकता है, जबकि इनकी मैथिली रचनाओं का भी अनुशीलन साथ-साथ हो।'

---

१. *प्रगतिवादी काव्य, श्री उमेश चन्द्र मिश्र, पृ०सं० १४७*

चित्रा-

यात्री का पहला कविता संकलन चित्रा १९४९ में छपकर सामने आया। चित्रा की कविता संस्कृत और प्राचीन मैथिली कविता की शास्त्रीय परम्परा से छिटककर जीवन की साधारणता में, उसके मर्म को पहचानने की कोशिश है। यानि एक तरफ जीवन में धंसकर उसे अपनी शर्त पर अर्जित करने का संकल्प और दूसरी ओर प्राचीन सामंती विचार व्यवस्था को तार-तार करने का इरादा। इस संकलन से पहले सीताराम झा, भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' आदि की कविता में विद्यापति ही नहीं, मनबोध और चंदा झा तक की कविता के प्रति विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, लेकिन उनकी अपनी सीमाएं थीं। 'यात्री' ने इस विद्रोह को त्वरा और दिशा दी। इस दिशा का नाम चौथे - पांचवे दशक में मिथिलांचल में विडंबनामूलक जीवन जी रहे लोगों की दुख की पहचान है। यह दुख अपने बाहरी ढाँचे में इतना धूसर और मद्धिम है कि पहली नजर में उसकी पीड़ा का पता नहीं चलता। कहें कि यह इतना परंपरागत दुख है कि चौंकाता नहीं, अंदर ही अन्दर खंगालता रहता है। इसका स्रोत है दरिद्रता, अशिक्षा, रीति-कुरीति। और इनकी जड़ उस ठस सामाजिक ढांचे में है, जो विकास को समवेत उपक्रम में प्रतिफलित होता नहीं, एक-दूसरे के खिलाफ जय-पराजय में घटित होता हुआ देखता है। स्वाभाविक है कि ऐसी परिस्थिति में समाज का तबका जहां पला-बढ़ा है वहां अपने लिये कोई संभावना न पाकर जीवन यापन के लिये बाहर निकल जाएं। लेकिन हम जानते है कि अपनी जमीन के गुरूत्वाकर्षण से निकल भागना ऐसा काम नहीं कि दिल-दिमाग पर उसके विषाद की खरोंच न पड़ने पाए। चित्रा की दूसरी कविता 'अंतिम प्रणाम' यद्यपि तब (१९३६) लिखी गई थी जब 'यात्री' विदेश की यात्रा पर निकल रहे थे लेकिन यह कवि के व्यक्तिगत जीवन संदर्भ से उछलकर समाज के एक बड़े समुदाय के साथ हो लेती है। कविता के दो अंश देखे:-

हे मातृभूमि, अंतिम प्रणाम

अहिबातक पातिल फोडि-फाड़ि

पहिलुक परिचयकें तोडि-ताड़ि

पुरजन-परिजन सब छोडि-छाड़ि

हम जाय रहल छी आन ठाम

मां मिथिले, ई अंतिम प्रणाम

X x X

कर्मक फल भोगथु बूढ़ बाप

हम टा संतति, से हुनक पाप

ई जानि ह्वैन्हि जनु मनस्ताप

अनको बिसरक थिक हमर नाम

माँ मिथिले, ई अन्तिम प्रणाम!

'अंतिम प्रणाम' कविता कवि ने लंका जाने का दृढ़ निश्चय कर लेने के बाद काशी में लिखी थी। इस कविता में सबसे मोह समाप्त करने की घोषणा की है। इस कविता को देख स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसकी रचना के समय तरूण नागार्जुन पर बुद्ध सवार थे। नागार्जुन का जीवन वृत्त सही मानी में यही से शुरू होता है। मैथिली भाषा में लिखी होने पर भी यह कविता हिन्दी कवि नागार्जुन की जीवन रेखा को भी निर्धारित कर रही है। निःसंदेह इस कविता का इतिहास मैथिली के कवि यात्री के साथ ही नहीं, हिन्दी के कवि नागार्जुन के साथ भी जुड़ा हुआ है।

लेकिन जैसा कि हम जानते हैं- संबंध जब मोह और निर्विकल्प राग का हो तो कोई भी विदा अंतिम नहीं होती। किसी खास परिस्थिति में भले ही उससे दूर जाना पड़े। लेकिन मन हमेशा उस मार्मिक संबंध में लौट जाने की आकांक्षा से भरा रहता है। चित्रा की अधिकांश कविताएं इसी आकांक्षा में अपना अर्थ ग्रहण करती हैं।

देखों तो इन कविताओं की केन्द्रीय संवेदना घर लौटने की विकलता है। कभी स्वप्न, कभी स्मृति और कभी चिट्ठी - पत्री के मार्फत कवि का अपने अंचल और उसकी संस्कृति के प्रति उत्कृष्ट प्रेम छलक पड़ता है। यह इतना उदार और समावेशी प्रेम है कि इसकी परिधि में वे सारी चीजें बहकर आ जाती हैं जो जीवन को छूती है। कहना चाहिए कि 'यात्री' ने अपनी कविता में मिथिलांचल को एक व्यक्ति के रूप में ग्रहण किया है- संबंध की उसी निजता और अपनापे के साथ। 'कवि का स्वप्न' कविता के कुछ अंश देख सकते हैं-

परम मेधावी कते बालक जत
मूर्ख रहि हा गाय टा चरबैत छथि
कते वाचस्पति कते उदयन जत'
हाय! बनंगोइठा बिछैत फिरैत छथि
तानसेन कतेंक रवि वर्मा कते
घास छीलथि बाग्मतीक कछेड़मे
कालिदास कतेक विद्यापति कते
छथि हेड़ाएल महिसबारक हेड़मे
बाजि एतबा भ' गेली तों मौन माँ
बह' लागल नोर हमरा आँखि सँ
प्रगट भेल मराल, ऐल समीप किछु
फूल दनुफक झ' ड़ लगलइ पॉखिसँ
'जूनि कानह'-उठौलह तों तर्जनी
हंस पर चढ़ि उड़ि गेली अकासमे
निन्न टूटल कैल निश्चय, किछु होअ ओ
बिताएब नहि आयु आब प्रवास में

वहीं बाहर रहने की विवशता और घर लौटने की आकांक्षा। लेकिन इस आकांक्षा का यदि हम सिर्फ स्थूल अर्थ ग्रहण करेंगे और उसकी व्याख्या-व्यंजना से मुंह मोड़ लेगे तो एक बड़े कवि की कविता के मर्म को जानने से चूक जाएंगे। 'यात्री' एक तरफ जहां परदेश से घर लौटने की कामना करते रहते हैं वहीं उन लोगों के भी घर की चिंता करते हैं जो घर में रहकर बेधर हैं। ये उस समाज के परित्यक्त लोग हैं जिनकी यातना पर उसका वैभव टिका है। एक बाल विधवा के विलाप का यह अंश दृष्टय है

माय-बापक मनोरथक शिकार भ' क'
बेकार भ' क, दबल हाहाकार भ' क'
पँजियाड़ औ' घटकराजक नामपर
व्यवस्था औ' समाजक नामपर
विधवा हमरे सन हजारक हजार
बहौने जा रहलि अछि नोरक धार
ओहीमे ई मुलुक डूबि बरू जाय
ओहीमे लोक-वेद भसिया बरू जाय
अगड़ाही लगौ बरू बज्र खसौ
एहेन जाति पर बरू धसना धसौ
भूकम्प हौक बरू फटौ धरती
माँ मिथिला रहिये क' की करती!

चित्रा की एक और महत्वपूर्ण कविता है 'फेकनी'। एक बूढी औरत जो घर-घर जाकर दूध बेचती है। 'घर' कविता नई दिशा की खोज और उसकी उपलब्धि है, ऐसा राजकमल चौधरी मानते हैं। लेकिन उनकी आपत्ति है कि 'यात्री' मनुष्य के शारीरिक -सामाजिक अपराध और उसकी पीड़ा का तो अनुभव करते हैं लेकिन उसके

अंतरंग उसके आत्मदहन और उसके आत्मश्रंगार का बोध उन्हें नहीं होता। वह 'फेकनी' को दूध बेचते, दूध में पानी घोलते और उसकी 'फुच्ची' की करामात तो देखते है लेकिन उसे अपनी टूटी -फूटी झोंपड़ी में लाख पर रखी डिबिया की पीली रोशनी में पानी की सतह पर तैरती लाश की तरह सोती हुई नहीं देख पाते हैं। सोए हुए आदमी को देखना, देखते रहना, यात्री की दृष्टि में कवि के लिए अनुचित और अश्लील है। किसी की देह -कथा तो देखी जाए लेकिन किसी के मन में प्रवेश न किया जाए, उस मन को जानने की कोशिश न की। चित्रा के कवि की यही स्पष्ट सीमा है।

यात्री की कविताओं में रोमानी रंग भी काफी घुला हुआ है, 'चित्रा' की कविताओं के पढ़ने से पता चलता है। 'चित्रा' की प्रेयसी' कविता भी इसी प्रकार की है जो लंका लौटने के बाद नागार्जुन ने पूर्व में रचित 'अहिबातक पातिल फोड़ि-फाड़ि में पत्नी के प्रति व्यक्त निर्ममता निष्ठुरता की भूल के पश्चाताप स्वरूप लिखी है। पश्चात्ताप और ग्लानि का मिलाजुला स्वर 'चित्रा' की इन कविताओं में प्रकट हैः-

चिर वियोगक आगि में-
तोरा जखन हम ठेलि, बन लहुँ
परिब्राजक एसगरे ओहि बेर सखि चुपचाप-
कते सहने रह तो परिताप?
बहुत दिनपर ज्ञान एतबा भेल जे हम
केहेन निष्ठुर केहेन निर्मम केहेन पाषाण!
हे हृदय हे! हें प्राण!

इस कविता में कवि का निश्छल प्रेम, पति-पत्नी का सहज व्यापार और कवि की अभिव्यक्ति की ईमानदारी देखी जा सकती है।

शोषित, पीड़ित और अभावग्रस्त जन-सामान्य से निकट का सम्पर्क ही

कवि की चेतना को प्रखर बनाता गया। युग की विषमताएं ही कवि के विक्षोभ का मूल कारण बनी है। परिणामस्वरूप कवि निम्न वर्ग को कहीं नहीं भूला है। उसके संवेदनशील हृदय पर इस वर्ग की विवशताएं, जटिलताएं अपना स्थायी प्रभाव स्थापित किये हुई हैं, क्योंकि यह विक्षोभ तटस्थ भावुक का विक्षोभ नहीं था, यह था सहभोक्ता, सहगामी और सहयोद्धा का विक्षोभ। और इसी कारण आरम्भ से कवि श्रमरत जनता का उपासक रहा है। इसी क्रम में कवि का आशावादी चिन्तन भी स्थान-स्थान पर मुखर हुआ है। 'चित्रा' काव्य की 'परम सत्य' कविता इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय होगी जिसमें वह जनशक्ति को ही अपना मस्तक झुकाने की बात करता, श्रमशील मानव ही उसका आराध्य है। मार्क्सवादी प्रभाव के कारण नागार्जुन आरम्भ से ही सर्वहारा के कवि रहे हैं तभी उन्होंने चित्रा में लिखा :-

धन्य हे श्रमशील मानव विश्व भरि में व्याप्त
धन्य तोहर जाति।
नरक के सुरपुर बनएबाक लेल
सदच्छन तो रहइ छह अपस्यांत
एक दिशसँ तोड़ि रहला राशसक तो दाँत
संमिलित स्वेच्छा प्रणोदित जयति जय जनशक्ति!
आइ नहि तँ काल्हिं दान वदल करवह अवस्से उच्छेद

पत्रहीन नग्न गाछ-

'चित्रा' प्रकाशन के अट्ठारह वर्ष बाद १९६७ ई में उनका दूसरा काव्य संग्रह 'पत्रहीन नग्न गाछ' इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह के लिये 'यात्री' को १९६८ ई० में साहित्य अकादेमी पुरस्कार दिया गया। १९९९ ई० में कवि ने 'पत्रहीन नग्न गाछ' का पुनर्मुद्रण करवाया। इसके बाद से इस संग्रह का कोई संस्करण नहीं हुआ।

१६८१ ई० में 'पत्रहीन नग्न गाछ' का हिन्दी-मैथिली सहित एक द्वि-भाषी संस्करण प्रकाशित हुआ। हिन्दी अनुवाद सोमदेव ने किया था। यह अनुवाद आने के बाद सुधी-पाठक नागार्जुन की मैथिली कविताओं को पढ़ने लगे। इसी बात को ध्यान में रखकर १६६५ ई० में नागार्जुन की मैथिली कविताओं का एक संग्रह तैयार किया गया, जिसमें उनके दोनों प्रकाशित मैथिली काव्य-संग्रहों (चित्रा और पत्रहीन नग्न गाछ') के अतिरिक्त बावन असंकलित कविताओं को भी शामिल किया गया। मूल मैथिली रचनाओं के साथ उनके हिन्दी अनुवाद वाले इस संग्रह का नाम है- 'पका है यह कटहल'। मैथिली कविताओं के अनुवादक रहे, सोमदेव और शोभाकान्त।

'पत्रहीन नग्न गाछ' की कुछ कविताओं में भी यथातथ्य ढंग का प्रकृति चित्रण है। इसके कुछ गीत भी इसी कोटि के है। श्री साँवलिया के अनुसार, "इस संग्रह के गीत को छोड़कर सभी रचनाओं को हम प्रकृति और मानव इन दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं। पहली कविता 'नान्हि-नान्हि टा फूल' प्राकृतिक सौंदर्य से ही सम्बन्ध रखती है।" 'पत्रहीन नग्न गाछ' में प्रकृति का सहज-सुन्दर रूप चित्रित हुआ है : "नान्हि-नान्हि टा फूल, उज्जर-उज्जर फूल, लाल लाल डंटीवाला फूल"।

कवि ने दिखाया कि आधा फागुन बीत जाने पर 'कोइली' और 'मधुमाछी' भी अपने कामों में लग गयी हैं:

बीतल आधा फागुन
चिबा चिबा कड आमक मज्जर
कोइली सूर पिजाबए
भन भन भन मधुमाछी भनकए।

'चैत' की प्रकृति देखिए, सूर्य की प्रखरता क्रमशः बढ़ रही है और पछुआ हवा के थपेड़े भी जोर पकड़ रहे हैं:

पछवा सिहकए

सूरूज दमकए

पावल सुक्खल रब्बिक छीमड़ि बालि

मेही सुरमे बजबए भने सितार

दूरहिं सॅं चकचक करैत अछि चैतक खेत-पयार

'अखाढ़' कविता से वर्षा का पूरा रूप कवि ने प्रस्तुत कर दिया है। काले-काले मेघ मंडरा रहे हैं। इन्द्र के हाथी गर्जना कर रहे हैं। ग्रहस्थ लोगों ने 'नचारी' छोड़कर 'मलार' गाना शुरू कर दिया है। पानी का रंग मटमैला हो गया। अब तो बोये गये बीजों में पेंपीं भी फूट गयी है:

उठलइ बेश बिहाडि

ताहि पर झपलक मेघ अकाश

साधि लेलक दम पुरबा-पछबा

सृष्टि भेल निस्तब्ध

गड़ गड़ गड़ गुडुम गुडुम गुम...

गरजल इन्द्रक हाथी,

छाड़ि नचारी गाबए लगला गिरहथ लोकनि मलार।

'साओन' कविता में कवि ने मिथिला के सावन को पाठकों के सामने साकार ही कर दिया है। वर्षा की लीला से नदी-नालों का भरपूर होकर रेलवे लाइनें डुबा देने का वर्णन करने के बाद कवि के हृदय में बड़ी कोमल भावनायें उठ रही हैं। तभी उसने "तीसो दिन थिक मधुश्रावणी नवतुरिआक चुमा ओन-मास" का वर्णन करने के बाद राधा और कृष्ण के झूले झूलने की बात कही है। अन्त में पावस ऋतु का सबको ऋणी बताकर कृष्ण के झूले झूलने की बात कही है। अन्त में पावस ऋतु का सबको ऋणी बताकर "लोचन अंजन, जन मन रंजन, पावस ऋतु के करउ प्रणाम" की प्रेरणा दी है।

इस प्रकार मैथली में हिन्दी के समान ही कवि ने प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी कविताएं की हैं, पर इनमें उसकी कल्पना भिन्न प्रकार की है। नागार्जुन ने हिन्दी कविताओं का मैथिली में अनुवाद नहीं कर दिया है, पूर्ण रूप से मौलिकता इनमें देखी जा सकती है।

नागार्जुन ने मैथिली कविता को हमेशा भाषा-शिल्प की दृष्टि से आधुनिक बनाने का प्रयास किया है। 'चित्रा की कविताओं की भाषा शिल्प, छंद आदि की दृष्टि से 'पत्रहीन नग्न गाछ' की कविताओं से भिन्न है। अपनी मैथली कविताओं में नागार्जुन ने मिथिला के सांस्कृतिक जीवन, प्राकृतिक वैभव और जनता की गरीबी का सही चित्रण किया है।

उपन्यास :-

सन् १६३६ ई० के मार्च में राहुल सांकृत्यायन और नागार्जुन अमबारी में किसान आन्दोलन का नेतृत्व करने के कारण गिरफ्तार कर छपरा जेल में रखे गये थे। नागार्जुन की यह पहली जेल-यात्रा थी। राहुल जी उस समय तक कई बार जेल जा चुके थे। जेल में वे अपने समय लिखाई के लिये किया करते। अक्सर 'डिक्टेशन' देकर लिखवाते। इस जेल-यात्रा में राहुल जी ने अपना उपन्यास 'जीने के लिये' नागार्जुन को डिक्टेशन देकर लिखवाना शुरू किया। सम्भवतः उपन्यास लिखने की पहली प्रेरणा नागार्जुन को इस डिक्टेशन से ही मिली। कथा बुनने और चुनने में वे अपना सामर्थ्य 'असमर्थदाता' शीर्षक कहानी लिखकर १६३६ ई० में ही ऑक चुके थे। बौद्ध होने से पूर्व साहित्य सदन, अबोहर में 'दीपक' का सम्पादन करते हुये गद्य लिखने की बारीकियों से वे परिचित हो ही गये थे।

१६४४ के मध्य में गुजराती भाषा के एक उपन्यास (पृथ्वी वल्लभ) का हिन्दी अनुवाद किया था और इसके बाद शरतचन्द्र के कई छोटे उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद किया। इन्ही अनुवादों के क्रम में नागार्जुन के भीतर उपन्यासकार

पैदा हुआ।

उपन्यासकार बनने की ललक में नागार्जुन ने पहला उपन्यास अपनी मातृभाषा मैथिली में लिखा। 'पारो' नामक यह मैथिली उपन्यास मई १९४६ ई० में पटना से प्रकाशित हुआ था। मैथिली के सजग पाठकों ने इसे हाथों हाथ लिया। 'पारो' की भाषा भले ही मैथिली रही पर कवि नागार्जुन बिहार के एक उभरते उपन्यासकार की तरह देखे जाने लगे। फिर नागार्जुन ने हिन्दी मे उपन्यास लिखने का मन बनाया।

नागार्जुन हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द्र परम्परा को विकास देते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन की यथार्थ के स्तर पर गहन अभिव्यक्ति उनकी कृतियों में मिलती है। निम्न मध्य वर्ग अथवा निम्न वर्ग के जीवन-खण्डों को अपने अलग-अलग लघु उपन्यासों में चित्रण करने वाले इस लेखक को मार्क्सवादी खेमे का उपन्यासकार माना जाता है। "नागार्जुन ने एक ओर मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आत्मसात किया हुआ है और दूसरी ओर देहाती जीवन का उनको गहरा व्यक्तिगत अनुभव है तथा उससे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।"[1]

जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध और अनुभव में ही नागार्जुन को यथार्थ के क्रान्तिकारी पक्ष को उभारने की क्षमता प्रदान की है। उनके लघु उपन्यासों की कथा मिथिला अंचल की ही रही है। अंचल शब्द ने हिन्दी उपन्यास विधा में एक भ्रम उत्पन्न कर दिया है। आंचलिक उपन्यासकार, जबकि आंचलिकता किसी कृति का एक गुण हो सकती है विद्या नहीं। इस मूल भेद को न समझने के कारण ही नागार्जुन के उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहा जाता है। ये लघु-उपन्यास आंचलिकता के गुणयुक्त तो हैं हीं, किन्तु किसी वर्ग - विशेष के जीवन की समस्या की तीव्र अनुभूति आदि जहाँ इनके कई गुण हैं वहीं मिथिला प्रदेश की भाषा रहन - सहन, मौलिकता, तथा सम्पूर्ण परिवेश-जिसे जब आंचलिकता भी कहते हैं - भी उनका मात्र गुण ही है।

---

१. *डॉ० सुषमा धवन, हिन्दी उपन्यास, पृ०सं० ३०२*

नागार्जुन कवि, कहानीकार और लघु-उपन्यासकार तीनों ही रूपों में लिखते हैं। लेकिन उनके लघु उपन्यासों ने ही इन्हें सर्वाधिक लोकप्रियता दी है। दैनिक जीवन की कठिनाइयों, असन्तोषों और उनके समाधान के लिए प्रयुक्त युक्तियों का चित्रण ही उनकी कृतियों में है। उनके लघु उपन्यासों में यथार्थ की जो मजबूत पकड़ है वह बहुत कम लेखकों में है। "उनके उपन्यासों में जीवन-दर्शन समाजवादी चेतना के अधिक निकट है। परस्पर समानता स्थापित होना, सबको विकास करने का समान अवसर प्राप्त होना, शोषण एवं वर्ग-वैषम्य का अन्त होना , यही उनके उपन्यासों का मूल स्वर है। उन्होंने ऐसी क्रांति का सूत्रपात करने का प्रयत्न अपनी कृतियों में किया है, जिसका सम्बन्ध ग्राम्य जीवन से अधिक है और जिसके सफल होने से ग्रामों की रूढ़ियॉं एवं जर्जरित मान्यताएँ समाप्त होगी और समाजवादी ग्राम समाज की नव रचना होगी।"

नागार्जुन के लघु-उपन्यास सामाजिक हैं अतः उनमें व्यक्तिवादी लघु-उपन्यासों जैसी एकतानता नहीं है। अधिकांश कथानक की वह तीव्रता भी नहीं है जो लघु-उपन्यास के लिये अपेक्षित है। कई कृतियों में लेखक अपने-आपको प्रकट करने से रोक नहीं पाया है। बीच-बीच में अपनी ओर से वे कथासूत्र जोड़ते चलना भी लघु-उपन्यास की संशलिष्टता को ठेस पहुँचाता है।

रूद्र ने जिस प्रकार 'बहती गंगा' में काशी का व्यक्तित्व विकास दिखाया है, उसी प्रकार नागार्जुन ने मिथिला का चरित्र विकास उपस्थित किया है। मिथिला अंचल के परिप्रेक्ष्य में फैले असंख्य नर-नारी, बाल-वृद्ध, पशु-पक्षी, तालाब-पोखर, पेड़-पौधे आदि को लेखक ने सजीव कर दिया है। आंचलिक उपन्यास कहते ही उसे हैं जिसमें किसी स्थान-विशेष का सम्पूर्ण जन-जीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ प्रतिबिम्बित हो उठता है।। नागार्जुन के सभी चरित्र मिथिला से सम्बद्ध हैं, जो मिथिला का व्यक्तित्व विकास करते हैं। मिथिला के ग्रामीण जीवन से उनका इतना घनिष्ठ

परिचय है कि हम उनके प्रत्येक उपन्यास में एक ऐसा आत्मीय भाव पाते हैं जो बहुत थोड़े कथाकारों को सुलभ हो पाता है।

नागार्जुन ने उपर्युक्त भाव-भूमि पर उपस्थित होकर जिस उपन्यास परम्परा को जन्म दिया हैं, उसमें 'रतिनाथ की चांची' उनका पहला हिन्दी उपन्यास है। बाबा बबटेसर नाथ, बलचनमा, नई पौध आदि उपन्यास इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले उपन्यास हैं। बलचनमा इनमें सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। कला और शिल्प की दृष्टि से उनके उपन्यासों में आदर्श आंचलिक उपन्यास के सारे गुण सहज ही मिल जाते हैं।

उपन्यासों का क्रम इस प्रकार है -

१. रतिनाथ की चाची :-

इसका प्रकाशन १९४९ में हुआ। इस नाम से नागार्जुन का यह प्रथम उपन्यास है। विधवा गौरी देवी को किस प्रकार समाज के अपमान, अत्याचार और संघर्ष का सामना करना पड़ता है, इसका बड़ा करुण और सजीव चित्रण नागार्जुन ने इस उपन्यास में किया है।

मुख्य कथा गौरी देवी को केन्द्र बनाकर अन्य छोटी-छोटी घटनाओं को जैसे- किसानों का संघर्ष, निष्क्रिय जय नाथ के इधर-उधर घूमने, रतिनाथ का छात्रजीवन, बागों से उसका प्रणय, उसके ननिहाल जाने, चाची की ग्राम सेवा, उमानाथ का कलकत्ता का जीवन आदि पर प्रकाश डालती हुई आगे बढ़ी है।

कथानक में जिज्ञासा उसका प्रमुख गुण होता है, किन्तु इस उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसी प्रतीक्षा नहीं रहती कि आगे क्या होने वाला है। नागार्जुन के पिता बड़े उग्र स्वभाव के थे। बच्चों के शिक्षण आदि के प्रति उन्होने बड़ी उपेक्षा बरती थी। जयनाथ भी पुत्र की पढ़ाई की ओर से लापरवाह दिखाया गया है। अपनी भाभी को उनसे और उपन्यास में गौरी को जयनाथ से गर्भ रह जाता है फिर चमराइन द्वारा भ्रूण

हत्या उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार उपन्यास में । बालक नागार्जुन नेअपने पिता को माँ की छाती पर चढ़ गर्दन रेतता हुआ देखा था, इधर रतिनाथ ने जयनाथ को ऐसा ही करते देखा। "पिता के रूद्र स्वभाव के प्रति इस बालक के ह्रदय में प्रतिहिंसा की आग कभी-कभी सुलग उठती ।" (रतिनाथ की चाची) दूसरी ओर 'आइने के सामने' में नागार्जुन लिखते हैं: "मगर मैं पिता को अन्त तक खुली क्षमा कहाँ दे पाया।"

स्पष्ट है कि लेखक ने बचपन की स्मृति को उपन्यास के कथानक का आधार बनाया है। रतिनाथ के जीवन में घटित घटनाऐं नागार्जुन की अपनी है, जिसमें उन्होंने कुछ कल्पना का मिश्रण अपनी ओर से कर दिया है। उपन्यास का आरम्भ और अन्त तथा रतिनाथ के शिक्षण आदि की बातें वास्तविक और शेष काल्पनिक हैं।

'उपन्यास' लिखते समय हर उपन्यासकार का एक निश्चित उद्देश्य रहता है। उसी के अनुसार वह कथानक की योजना बनाता है।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने समाज द्वारा सतायी गयी एक कुलीन विधवा के जीवन की करुण कथा का अंकन करना ही अपना उद्देश्य बनाया है। चाची की करुण कथा कहते हुये लेखक का उद्देश्य उसके प्रति पाठकों की सहानुभूति जाग्रत करना रहा है।

प्रगतिशील होते हुये भी नागार्जुन इस कष्ट गाथा को कोई हल नहीं दे सके और उपन्यास दुखान्त बनकर रह गया। उपन्यास पढ़कर पाठक के मन में एक ही विचार आता है कि क्या एक विधवा और असहाय नारी समाज के भेड़ियों से त्रस्त होकर उसी प्रकार दण्ड भोगा करे ? तिरस्कृत ही हुआ करे? आँसू की लड़ियों से ही उसका शेष जीवन गुथा रहे? और पाठक के इस प्रश्न को लेखक ने यों ही छोड़ दिया है।

दूसरे इस उपन्यास में नागार्जुन ने समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित

करने का प्रयत्न किया है। जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार लेखक ने शुभंकरपुर और आस-पास के कृषकों में पनपती हुई वर्ग संघर्ष की भावना का चित्रण करते हुये जमींदारों द्वारा उनका शोषण, कांग्रेसियों का कुचक्र, कृषकों की जागरुकता का प्रतीक उनका नाश, 'कमाने वाला' खाएगा' - इसके चलते जो कुछ हो' आदि को व्यक्त करना भी अपना उद्देश्य बनाया है।

क्षेत्र की संस्कृति, बोली-बानी, परिवेश, परम्परायें आदि से परिचित कराना भी नागार्जुन का गौण उद्देश्य को व्यक्त करने में लेखक को सफलता मिली है।

२. बलचनमा :-

आत्मकथात्मक शैली में लिखा नागार्जुन का दूसरा लघु उपन्यास 'बलचनमा' है। प्रेमचन्द्र के 'हीरो' ने बलचनमा' के रूप में नागार्जुन पुर्नजन्म प्राप्त किया है। मिथिलांचल के भूमिहीन किसान की यह कहानी संघर्ष, उत्पीड़न और नई जागृति की कथा कहती है। प्रेमचन्द्र का होरी किसान है, जो अपनी जमीन, रूढ़ियों और अंधविश्वासों से बंधा है। किन्तु नागार्जुन का 'बलचनमा' किसान तो है मगर जमीन उसकी अपनी नहीं है। उसके जीवन की पहली घटना उसके पिता को जमींदारों द्वारा पीटा जाता है और फिर जैसे इन अत्याचारों का एक सिलसिला चलता है। खैनी बलचनमा की बहन को छोटे मालिक द्वारा प्राप्त करने की कुचेष्टा, उसकी माँ से धर्म, नीति और कर्तव्य के नाम पर जमींदार द्वारा जमीन अपने नाम लिखवा लेना और बलचनमा का भाग खड़ा होना, यही सब उसकी जिन्दगी है। बलचनमा का भागना जीवन से पलायन या भय के कारण नहीं है, बल्कि न्याय, सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन प्राप्त करने के लिये है और वह जीवन प्राप्त करने के लिये क्या नहीं करता। कहाँ-कहाँ नही भटकता। उसके जीवन में फूलबाबू, राधाबाबू जैसे कई लोग आते हैं। उनके जीवन के हर पहलू को उसने देखा है। फूलबाबू जो आश्रम में रहते थे, स्वराज्य की लड़ाई में एक सैनिक थे, उनसे अपना दुख कहने पर बलचनमा को जो उत्तर मिला

उससे उसके सामने सब जैसे स्पष्ट हो जाता है।

नागार्जुन ने बलचनमा' को केन्द्र बनाकर उभरते हुये किसान जीवन की जो तस्वीर पेश की है, वह स्वाभाविक एवं जीती-जागती है। जमींदारों के नौकरी की कम तनख्वाह और ऊँचे ठाठबाटों के लिये "रैयत को लूटने में जमींदार के नौकर-चाकर किसी बात की परवाह नहीं करते।" [1] वैसे मालिक लोगों अपने ही लोगों के बारे में विचार है कि "नौकर चाकर टहलू और खबास को दही खाने का हक नहीं है।" [2] इस तरह मालिक, नौकर और रैयत के बीच चलता हुआ मत्स्य न्याय 'बलचनमा' में साकार उभरकर आया है और बलचनमा एक समय में रैयत और नौकर चाकर दोनों जिन्दगियाँ जीता है। परिणामतः उसे मिलती है चिन्तायें, लेकिन वह होरी की तरह टूटता नहीं।

नागार्जुन की अन्य औपन्यासिक कृतियों की अपेक्षा बलचनमा का कथा फलक कुछ बृहत है। वास्तव में 'बलचनमा' एक पात्र है जिसका चरित्र चित्रण ही इस लघु उपन्यास का केन्द्र है। समाजवादी लघु उपन्यासों में किसी एक प्रश्न, समस्या या चरित्र को उभारने के लिये कई छुटपुट घटनाएँ तथा पात्र जोड़ने पड़ते हैं, अतः उनका कलेवर तथा कथा प्रवाह की तीव्रता व्यक्तिवादी लघु उपन्यासों की तुलना में वृहत् एवं शिथिल जान पड़ती है किन्तु ऐसा होता नहीं है।

भाषा की दृष्टि से अधिकांश तद्भव शब्दों का प्रयोग लेखक ने किया है। विरोध, कुकरम, नगीच, माला, धिरनी, मसोभात असक आदि के प्रयोग ले जहाँ था को स्वाभाविक बनाया है, वहीं उसे आंचलिकता के सीमित दायरे में भी पहुँचा दिया है। कुल मिलाकर नागार्जुन का यह लघु उपन्यास 'गोदान' के बाद दूसरी औपन्यासिक कृति है, जिसने बलचनमा जैसा सशक्त चरित्र हिन्दी साहित्य को दिया है।

---

१. बलचनमा, नागार्जुन, पृ०सं० १२४
२. बलचनमा, नागार्जुन, पृ०सं० १२८

बाबा बटेसर नाथ :-

"बाबा बटेसर नाथ (१६५४) नागार्जुन की चौथी औपन्यासिक रचना है जिसमें कथा शिल्प सम्बन्धी नवीन प्रयोग लक्षित होता हैं,"[1] यह एक आंचलिक उपन्यास है। नागार्जुन के 'बाबा बटेसर नाथ' में समाजवादी यथार्थ कथा-शिल्प सम्बन्धी नूतन प्रयोग के समन्वित रूप में प्रस्तुत हुआ है, इसमें लेखक ने नये रूप-शिल्प की उद्भावना से एक पुरान वट-वृक्ष के मुख से रूपउली गाँव के उत्थान-पतन, सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों का अंकन किया है।

लेखक ने वट वृक्ष कों एक प्रतीक के रूप मे लिया है। वह नई पीढ़ी को नया सन्देश देता है।'जैकिसुन को वह सामूहिक शक्ति से अवगत कराते हुए कहता है - "झींगुर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों - हजारों की तादात् में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समां बंध जाता है। झींगुर की यह अखण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहता है, और होता रहेगा।" [2] वटवृक्ष के रूप में स्वयं लेखक ही जैसे 'संघ शक्ति कलयुगे' की विवेचना करा रहा है कि लेखक समाज के इस शोषित वर्ग की प्रत्येक नस-नस को पहचानकर उसे नई दिशा देना चाहता है लेखक का प्रगतिशील दृष्टिकोण सारे उपन्यास पर छाया रहता है और उपन्यास वर्तमान की परिवर्तनशीलता का यथार्थ प्रतीक बनकर महत्वपूर्ण बन जाता है।[3]

अपनी संप्रेषणीयता के नयेपन एवं संवेदनाजन्य अनुभवों के कारण यह कृति एक विशेष स्थान रखती है।

---

१. *सुषमा धवन, हिन्दी उपन्यास, पृ०सं० ३०७*

२. *नागार्जुन, बाबा बटेसर नाथ, पृ०सं० ११*

३. *डॉ० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० सं० ५१३*

दुखमोचन :-

ग्रामसेवा की भावनाओं से युक्त नागार्जुन का यह १६० पृष्ठीय उपन्यास है। सन् १६५७ में ही एक और लघु उपन्यास लेखक का प्रकाशित हुआ। पिछली अन्य औपन्यासिक कृतियों की भांति इसकी मूल समस्यायें भी वर्ग संघर्ष की है। वर्ग-वैषम्य, सामाजिक असमानता, शोषण आदि का चित्रण है। इसका प्रमुख विषय है।

मिथिला प्रान्त के एक गांव की इन समस्याओं का समाजवादी चेतना के अनुरूप वर्णन करने का प्रयत्न अधिक सफल नहीं हुआ है। शैल्पिक दृष्टि से भी इस लघु उपन्यास की अपनी कोई विशेषता नहीं है। गांव के जमींदार के छोटे भाई द्वारा गांव की समस्याओं का समाजवादी ढ़ंग से निराकरण ही इस लघु उपन्यास का मूल स्वर है। "इसका उपन्यास शिल्प कुछ विशेष सफल नहीं रहा है।"[1]

उक्त कृति में दुखमोचन के माध्यम से एक आदर्शवादी नेता होने की ओर संकेत करना लेखक का लक्ष्य रहा है। दुखमोचन ने जनसेवा का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो चिरकाल तक हमारे नेताओं को प्रेरणा देता रहेगा, उनका मार्ग आलोकित करता रहेगा, स्वार्थान्धता से उन्हें बचाता रहेगा।

दुखमोचन द्वारा तन-मन-धन से अपनी ग्राम सेवा को लेखक देशसेवा के लिये उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करना चाहता है। लेखक ने उससे प्रायश्चित का विरोध एवं विधवा विवाह का समर्थन करा कर रूढ़ियों को तोड़ने और प्रगतिशील चेतना को अपनाने का संदेश दिया है।

वरूण के बेटे :-

मछुआ जाति के जीवन-संघर्ष की कहानी 'वरुण के बेटे' लघु उपन्यास में कही गयी है।

---

१. डॉ० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ०सं० ५१४

लेखक ने अपने इस लघु उपन्यास में समाजवादी चेतना को कुछ अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया है। सुरेश सिन्हा के शब्दों में "इसमें वर्ग संघर्ष का तो नागार्जुन ने यथार्थ चित्रण किया है, पर उनके सभी पात्र यथार्थवादी नहीं हैं और उन पर प्रगतिशीलता का जो जामा पहना दिया गया हैं वह स्वभाविक नहीं आरोपित प्रतीत होता है। माधुरी इसी प्रकार का पात्र है। पात्रों को जीवन के यथार्थ से चुनकर भी उनके यथार्थवादी चारित्रिक विकास करने में लेखक से चूक हो गई है जिससे ये पात्र यन्त्रात्मक हो गये हैं, जबकि स्थिति इसके विपरीत है। माधुरी का चारित्रिक विकास लेखक ने जिस सामाजिक और वैयक्तिक परिस्थितियों में विकसित किया है, उनके आधार पर वह नितान्त सहज और स्वाभाविक हो उठी है। पति और ससुराल की उपेक्षा एवं अमानुषिकता तथा पिता के घर की यह विपत्ति उसे एक मार्ग खोजने को उकसाती है, तो दूसरी ओर मंगल के प्रति उसके सहज प्रेम ने उसे एक निश्चित दिशा प्रदान की है।'[1] खान-पान, वेश-भूषा, भाषा-शैली तथा यथार्थ के परिवेश ने केवल 'वरुण के बेटे' लघु उपन्यास को स्वाभाविकता प्रदान की है वरन् वह एक श्रेष्ठ कृति बन गया है। सामाजिक जीवन संघर्ष के बीच व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व से संघर्ष बहुत कम कथा कृतियों में उभरकर आया है, जिसकी पूर्ति नागार्जुन ने इस लघु उपन्यास में की है।

कुम्भी पाक :-

१९६० का वर्ष हिन्दी साहित्य में युग प्रवर्तक माना जाता है। साठोत्तरी कविता, साठोत्तरी कहानी और साठोत्तरी उपन्यास की विशेष चर्चाएं हुयी हैं। स्वतंत्र्योत्तर भारत वर्ष में समाज के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं का चित्रण इन कृतियों में हुआ है।

समाज के गलनशीलता, सड़ांध, अनाचार और भृष्टाचार के जिम

---

1. *डॉ० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ०सं० ५१३*

स्वरूप को लेखक ने उभारने का प्रयत्न किया है, उसमें काफी सफल रहा है। विशेषता यह रही हैं कि इस तमाम के वर्णन में किसी प्रकार की बदमानगी या भद्दापन नहीं आ पाया है। इस संसार में कई नरक हैं, उन्हीं में से एक कुम्भीपाक, जिसका इस उपन्यास में नागार्जुन ने अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास के हर पृष्ठ से समाज की गलनशीलता, सड़ांध, वर्ग वैषम्य, सामाजिक अत्याचार एवं शोषण की बू आती है, जिससे घबराहट होती है, पर नई दृष्टि मिलती है। सामाजिक यथार्थ का यथातथ्य चित्रण करने में लेखक ने कोई कसर शेष नहीं रखी है। पर इसके लिये उसने स्वाभाविकता का भी ध्यान रखा है, इसीलिये यह लघु-उपन्यास नागार्जुन के सफल उपन्यासों में है।

नारी चेतना का प्रमुख उद्‌घोषक बनकर कुम्भीपाक हमारे सामने आया है। इसके अलावा मंत्र-तंत्र एवं अंधविश्वासों का खण्डन, भ्रष्टाचार का चित्रण, अनैतिकता का पर्दाफाश, राजनीति की स्वार्थपरता आदि विभिन्न विषयों पर चुटकी लेते हुये उनका यथार्थ चित्रण करना लेखक का लक्ष्य रहा है। हिन्दुओं के माने हुये नर्कों में से एक कुम्भीपाक है, जहाँ पापी मृत्यु के बाद जाता है। समाज के भ्रष्ट भेड़ियों ने अपने मनोरंजन के लिये जिन युवतियों को जीते-जी कुम्भीपाक में डाल रखा है, उसी की यहॉं चर्चा है। यही उपन्यास पाकेट बुक्स में 'चम्पा' नाम से प्रकाशित भी हुआ है।

नई पौध :-

'नयी पौध' में नागार्जुन ने असंगत विवाह की समस्या को नवीन ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। अनमेल विवाह भारतीय समाज की परम्परागत समस्या रही है, और आज भी उसका सर्वथा लोप नहीं हो सका है। इस सामाजिक समस्या को राजनीतिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। 'रतिनाथ की चाची' में विधवा-जीवन की गाथा कह चुकने के बाद यह स्वाभाविक ही था कि नागार्जुन उक्त जीवन के एक मूलभूत कारण अनमेल-विवाह पर भी विचार करते। 'रतिनाथ की चाची' के समान

'नयी पौध' का कथानक भी साधारण किन्तु सुगठित है।

नागार्जुन की औपन्यासकि कृतियाँ व्यंग्य प्रधान होती हैं। 'नई पौध' में इस व्यंग्यात्मकता की प्रमुखता है। पुरानी पीढ़ी ने 'धंटकराज', 'खोखाइझा', 'चतुरा चौध ारी' आंदि का चरित्र चित्रण इसी शैली में किया गया है। इस उपन्यास में सामाजिक कुरूपताओं पर नागार्जुन ने व्यंग एवं हास्य का गुलाल उड़ाकर उनके मुखड़ों की असली हालत चित्रित करने का प्रयत्न किया है, जो उपन्यास की एक प्रमुख विशेषता है।[1]

नई पौध प्रेमचन्द्र युगीन उन उपन्यासों का विकास है, जो समस्या-प्रध ान होते हैं लेकिन इसके बाद भी वह उन सबसे पृथक एवं सफल कृति है। "बिसेसरी एक बूढ़े से विवाह कराकर नरकीय जीवन में ढ़केलने का जो षडयन्त्र ढ़लती पीढ़ी ने किया है, और समाज ने जिसका अनुमोदन किया है उसे उठती पीढ़ी के नवयुवकों ने तोड़ दिया है। परिवार और ग्राम के युवक अपनी समस्त शक्तियों के उपयोग से आयोजित विवाह का विरोध कर योग्य युवक से उसका विवाह करा देते हैं।"[२] समाज की किसी भी समस्या को हास्य, व्यंग, और साथ ही संवेदनात्मक स्तर पर संप्रेषित करना नागार्जुन की विशेषता है।

कथ्य और शैली की दृष्टि से इस रचना में कोई नवीनता नहीं है वहीं पुरानी घिसी पिटी गांव की कथा इसके केन्द्र में है जो प्रेमचन्द युगीन कथाकारें ने कही है। लोक जीवन की प्रमुख समस्या को जिस ढ़ंग से लेखक ने ग्रहण किया है, साथ ही उसका जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह अपने आप में न केवल नया बल्कि आकर्षक भी है।

हीरक जयंती :-

'हीरक जयंती' का प्रकाशन काल १९६२ ई० है। प्रस्तुत उपन्यास

---

१. डॉ० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, पृ०सं० ५१२

२. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ०सं० १६५

नागार्जुन की सशक्त व्यंग कथाकृति है। इसमें भ्रष्ट नेतृत्व पर चुटीले व्यंग और हास्य का छिड़काव किया गया है।

'हीरक जयंती' ऐसा ही उपन्यास है, जिसमें एक भ्रष्ट कांग्रेसी मंत्री नरपतनारायण सिंह 'बाबू जी' की हीरक जयंती का आयोजन उनके द्वारा लाभान्वित भक्तों द्वारा किया जाता है। इस समारोह की योजना चाटुकार कवि मृगांक के मस्तिष्क की उपज है, क्योंकि समर्पित किये जाने वाले अभिनन्दन ग्रंथ की तैयारी में उनके लिये ६००० रुपये कूट लेने का सुअवसर था। यह योजना बाबू जी के सभी प्रशंसकों द्वारा अनुमोदित तो की ही जाती है, पर बाबू जी की अनन्य हित-चिन्तिका "मुजमुखी देवी तो इसे सुन खुशी के मारे दुहरी हो जाती हैं।"

पन्द्रह सदस्यों की 'श्री नरपत हीरक जयन्ती समारोह समिति' गठित की जाती है। अर्थ उपसमिति डेढ़ लाख रुपया कलकत्ता और आस-पास के खान क्षेत्रों से वसूल करती है।

समारोह की तारीख तय कर ली जाती है, अध्यक्षता के लिये केन्द्रीय मंत्री घासीराम जी पधारते हैं। बाबू जी को अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने के बाद वे उनकी जन-सेवा और त्याग का उल्लेख अपने भाषण में करते हैं। बाबू जी कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं, और राजा रेवती रंजन प्रसाद सिंह अपना 'फुलझड़ी' भाषण देते हैं। कार्यक्रम के अन्त में कवि-गोष्ठी के अतिरिक्त दो तरुणियों का नृत्य भी रखा जाता है। नृत्य की भाव-भंगिमा और षोडशियों के अंग-प्रत्यंगों का उठाव-कसाव देख केन्द्रीय मंत्री घासीराम जी के नेत्र न्यौछावर हो जाते हैं।

डुमरिया के कुमार प्रद्युम्न नारायण सिंह द्वारा आयोजित प्रीतिभोज के बाद ही फोन से ज्ञात होता है कि बाबू जी के सुपुत्र नगेन्द्र को अवैध रूप से ट्रक में गॉजा भरकर लाने के अभियोग में पुलिस कस्टडी में रखा गया है, किन्तु एम०पी० श्री

राय अपनी पूर्व अर्जित राजनीतिक कुशलता से नगेन्द्र को उसी समय छुड़वा लेते हैं। दूसरे ही दिन बाबू जी की पुत्री मृदुला अपनी स्वर्गीया माँ के गहने और ५००० रुपये लेकर अपने युवक प्रेमी के साथ बम्बई भाग जाती है। इस समाचार को दो पैसे वाला अखबार 'बिगुल' पिता की. 'हीरक जयन्ती' और पुत्री की 'ताम्र जयंती' शीर्षक से छापता है। यही इसका कथानक है।

कुल मिलाकर 'हीरक जयन्ती' का संक्षिप्त कथानक रोचकता एवं कौतूहल का सफल सामंजस्य लिए हुए जन-सेवा की आड़ में किये जा रहे अवसरवादी नेताओं के भ्रष्ट साधनों का लेखा-जोखा है।

उग्रतारा :-

'उग्रतारा' का प्रकाशन १९६३ ई० में हुआ। यह नागार्जुन का आठवां उपन्यास है। विवश उगनी की करुण गाथा इसमें चित्रित है। लेखक ने कामेश्वर के द्वारा सामाजिक क्रान्ति की प्रेरणा दी है।

कथानक में एक सामाजिक समस्या को उठाया गया है। और उसका स्वस्थ एवं सात्विक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुतः नागार्जुन ने उगनी के जीवन के दिशा-परिवर्तन को ही चित्रित करने का प्रयास किया है। उपन्यास पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि पात्र किसी अर्न्तद्वन्द्व से ग्रस्त नहीं है। संघर्ष उनके मन में चला ही करता है। कामेश्वर होने वाले पुत्र या पुत्री का नाम चयन करता है। उगनी को भी उसने पूरी तरह सींथ में सिन्दूर भरकर अपना लिया है।

प्रथम परिच्छेद से उगनी और फेरीवाले कामेश्वर को देखकर पाठक का कौतूहल जाग्रत हो जाता है। ये कौन है, इनका क्या सम्बंध है? आदि प्रश्न मन

में उठने लगते हैं।

प्रेमचन्द के अनुसार, "उपन्यासों के लिये' पुस्तकों से मसाला न लेकर जीवन ही से लेना चाहिये।" 'उग्रतारा' का कथानक नागार्जुन ने जीवन से ही चुना है। समाज में बलात्कार और व्यभिचार की चर्चा आये दिनों सुनी जाती हैं। इसी प्रकार की घटना को लेखक ने मौलिक और आकर्षक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में प्रवाह सतत् बना रहा है।

इस उपन्यास में नायिका उगनी के माध्यम से समाज की विधवा या समाज के भेड़ियों द्वारा भ्रष्ट की गयी नारियों पर आने वाले संकटों से परिचित कराते हुये युवकों को उनके प्रति छिछली नहीं, सक्रिय सहानुभूति रखने की प्रेरणा देना लेखक का लक्ष्य रहा है।

इमरतिया अथवा जमनिया के बाबा :-

इस नाम से नागार्जुन का यह नवीनतम उपन्यास है। 'इमरतिया' का प्रकाशन १९६८ और 'जमनिया के बाबा' का १९६९ में हुआ है। दोनों की कहानी एक ही है किन्तु प्रकाशन अलग-अलग है। इसमें साधुओं और मठों के धार्मिक आडम्बरों का पर्दाफाश किया गया है।

इस उपन्यास के कथानक में पूर्व घटित एक-एक घटना को लेखक ने पात्रों के वर्तमान में घटित घटनाओं के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है। बाबा और मस्तराम की गिरफ्तारी का कारण, 'लक्ष्मी के बच्चे की बलि की घटना, स्त्रियों का बेंत लगवा कर आशीर्वाद लेना, भगौती का वकील से मिलना, सब लेखक ने पात्रों के मुख से ही स्पष्ट कराया है। इस उपन्यास में प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी बात आकर सुनाता है। हमें इनसे ही ज्ञात होता है कि साधु के भेष में ये लुटेरे जनता को कैसे लूट रहे हैं।

घटनाओं के चयन और प्रस्तुतिकरण में लेखक की प्रतिभा दिखाई देती है। पहले परिच्छेद में बलि की घटना, दूसरे में मस्तराम द्वारा अभयानन्द की पिटाई और गिरफ्तारी, जेल के कर्मचारियों को भी उसी अंध विश्वास में डूबे हुए दिखाये जाने, आगे बाबा की जटाएँ उतारने, हरिजनों की समस्या, पूँजी-पतियों का लोभ, बाबा की समाधि का रहस्य, आदि सारी चर्चायें होती हैं।

इस उपन्यास में 'इमरतिया' की चारित्रिक विशेषताओं के उद्‌घाटन के साथ ही साधुओं द्वारा दुराचरण, स्मगलिंग, जनता अंधश्रद्धा से अनुचित लाभ उठाने की उनकी तिकड़मों आदि का यथार्थ रूप प्रस्तुत करना लेखक का ध्येय प्रतीत होता है।

आज देश में निम्न जाति समझे जाने वाले हिन्दुओं के प्रति भेद-भाव के परिणाम स्वरूप एकता समाप्त होती जा रही है। उच्चवर्ग के द्वारा हरिजनों को निम्न समझना उनमें एक प्रकार के असंतोष को जन्म देने के लिये उत्तरदायी है। वे ध र्म-परिवर्तन करके क्यों न ईसाई या मुसलमान बनें और समाज में अपना खोया सम्मान प्राप्त करें? यह एक सेसा गम्भीर प्रश्न है जिसे नागार्जुन ने इस उपन्यास में उठाया है। प्रश्न का समाधान उन्होंने इस रूप में दिया है, कि अछूत कोई नहीं है। स्नानादि से स्वच्छ होने के बाद सब अच्छे हैं। अतः इस भेद-भाव को समाप्त किया जाय।

समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा जैसी बुराइयों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए इन दुष्ट और भ्रष्ट साधुओं की निरर्थकता और व्यर्थता नागार्जुन में सिद्ध कर दी है। उसने दिखाया है कि आज हमें समाज पर भार बनने वाले साधु नहीं चाहिए, हमें चाहिए जनता में देश प्रेम, एकता और राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करने वाला ऐसा व्यक्ति जो सैनिक प्रशिक्षण लेकर हमें राष्ट्र विरोधी खतरे का सामना

करने के लिये तैयार कर दे।

आज हमें इसी प्रकार के समाज सेवियों, राष्ट्रहित में लगे देश सेवकों और समाज से कुछ नहीं लेने वाला बल्कि अधिक-से-अधिक देने वाला साधु चाहिए। यही घोषणा भ्रष्ट और पाखण्डी साधुओं की पोल खोलने और लेखक द्वारा अभयानन्द के लिये व्यक्त उपर्युक्त विचारों में ध्वनित होती है - जो कि इस उपन्यास का उद्देश्य है।

पारो :-

यह उपन्यास प्रथम पुरुष में लिखा गया है। इस लघु उपन्यास में मिथिला की रूढ़ समाज-व्यवस्था से आक्रांत 'पारो' के जीवन की दुखान्त कथा है। यात्री का उद्देश्य इस उपन्यास द्वारा मिथिला में विवाह की गलत परम्पराओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना रहा है। मिथिला में पंजी प्रथा प्रचलित थी। वहाँ जन्म लिये हर बालक का नाम, वंश, गोत्र आदि पंजीकार पंजीयन कर लेते थे। विवाह के लिये वहाँ सौराठ की सभा प्रमुख है जिसमें विवाहेच्छुक वर इकट्ठे होते हैं, कन्या के अभिभावक वर का चयन कर पंजीकार से उसके नाम, वंश, गोत्र आदि का लेखा ले लेते हैं। विवाह में कुछ मध्यस्थ भी होते हैं जो 'घटक' कहलाते हैं। ये मध्यस्थ और पंजीकार जमकर भ्रष्टाचार करते हैं।अधिक उम्र के दूल्हे से रूपये लेकर कम उम्र की कच्ची कली से उसका विवाह करवा देना और लड़की का जीवन बरबाद कर देना उनके लिये सामान्य बात है। इसी अव्यवस्था का शिकार प्रस्तुत उपन्यास की नायिका 'पारो' है। वृद्ध ठूँठ से बंध कर वह जीवन भर घुटती रही और उसकी मृत्यु ने ही उसे इस कष्ट से छुड़ाया।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में रूढ़िवादी मैथिली समाज पर करारा व्यंग करते हुये भ्रष्ट सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराओं का यथार्थ चित्र उपस्थित कर

दिया गया है।

यात्री जी के उपन्यास 'पारो' इसी क्रांतिकारी कदम से मिथिला का पुरातन ब्राह्मण समाज चौंक गया। उपन्यास की रूढ़िभंजक प्रहारक शक्ति से वहाँ के पंडित वर्ग ने क्षुब्ध हो अपनी विभिन्न प्रतिक्रियाएं व्यक्त की।

४. अनुदित रचनायें :-

सन् १६४४ और १६५४ ई० के नागार्जुन ने अनुवाद का काफी काम किया। बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र के कई उपन्यासों और कथाओं का हिन्दी अनुवाद छपा। कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी के उपन्यास 'पृथ्वी बल्लभ' का गुजराती से हिन्दी में १६४५ ई० में अनुवाद किया था। 'मेघदूत' का मुक्त छन्द में अनुवाद १६५३ ई० का है। इसके अलावा जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' और 'विद्यापति' के १३५ गीतों का गद्यानुवाद भी नागार्जुन ने किया। इस तरह पैंतालीस पुस्तकों की सूची बनती है, नागार्जुन साहित्य की। इनके अलावा बंगला और गुजराती की लगभग दस पुस्तकों का अनुवाद भी किया है। हो सकता है, कि लंका-प्रवास और जीवन के शुरुआती दौर में पंजाब और सिन्ध में रहते हुये भी कुछ अनुवाद कियें हों, पर इसकी कोई जानकारी नहीं है।

मेघदूत (कालिदास के मेघदूत का मुक्तछंद में अनुवाद) :-

कालिदास नागार्जुन के सर्वाधिक प्रिय कवि थे और 'मेघदूत' उनकी सबसे अधिक मनलग्गू पुस्तक। १६५३ में नागार्जुन ने 'मेघदूत' का मुक्तछन्द में अनुवाद किया था। उसी वर्ष 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में एक अंक में यह रूपान्तर छपा। १६५५ ई० में इसे पुस्तकाकार रूप देते हुये उन्होंने मुक्तछन्द और 'मेघदूत' को लेकर एक लम्बी भूमिका इसमें जोड़ दी और कुछ फुटनोट भी। इस संस्करण के प्रारम्भ में नागार्जुन ने लिखा है "मेघदूत का यह रूपान्तरण वर्षों से अप्राप्य था। पहली बार

साप्ताहिक हिन्दुस्तान में छपा। दूसरी बार वाणी प्रकाशन मंडल (पटना) से प्रकाशित हुआ। अब वाणी प्रकाशन (दिल्ली) इसे छपवा रहा है। निःसंदेह पाठक समाज इस अभिनव संस्करण को पसन्द करेगा।" भूमिका में विस्तार से मुक्तवृत्त, कालिदास और मेघदूत के बारे में नागार्जुन ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। अनुवाद के साथ मूल भी प्रकाशित है।

मेघदूत हमारे भारतीय वाड्मय का एक अनुपम अंश है। कविकुल-गुरु कालिदास की यह रचना विश्व-साहित्य में बेजोड़ समझी गई। दुनिया की प्रमुख भाषाओं में आज इसका अनुवाद सुलभ है। अपने देश में मेघदूत के अनुवाद हिन्दी, उर्दू, बंगला, मराठी आदि भाषाओं में उपलब्ध है।

'मेघदूत' नागार्जुन के लिये एक प्रेरणाश्रोत का कार्य करता है। वह कहते हैं कि मेघदूत भारतीय काव्य-जगत में नवीन परम्परा का आरंभ था, क्योंकि कालिदास ने मेघदूत को दूत बनाकर विरही यक्ष का संदेशा ही उसकी प्रेयसी तक नहीं पहुँचाया अपितु रास्ते में नगरों, पर्वतों और नदियों के माध्यम से या लोकोपकार और यथार्थ की भूमि पर उस क्षेत्र के जन जीवन के सजीव चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। विश्व-साहित्य में 'मेघदूत' का सम्मान जनक स्थान है। कई भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी में भी इसके कई अनुवाद हुये हैं, पर उन्होनें स्वयं भी इसका अनुवाद किया। इसी से ग्रंथ के लिये उनका गहन लगाव तथा कालिदास के लिये गहन श्रद्धा देखी जा सकती है। हॉ, उन्होंने यह भी कहा है कि उन्होनें जो अनुवाद देखे उनमें से कुछ उन्हें पसंद आये पर इन अनुवादों में कहीं ढ़िलाई अवश्य रह गई है। इस ढ़िलाई को दूर करने के लिए उन्होने मुक्तछंद का उपयोग किया। उन्हीं के अनुसार, "मैं बहुत दिनों से सोचता रहा, सोचता रहा कि किस प्रकार कालिदास की मूल भावना को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचा दिया जाए। हिन्दी कविता का आधी शताब्दी का विकास-क्रम सामने था। निराला थे, तारसप्तकों की झंकार थी, सरदार जाफरी का श्रृंखलित मुक्त्वृंत

था। कई कृति कलाकारों के गद्य काव्य थे। प्रयाग के नये साहित्यकारों की हमारी अपनी गोष्ठी तो खैर थी ही।"

इस सारे हिन्दी के विकास क्रम से नागार्जुन ने मुक्त छंद को 'मेघदूत' के अनुवाद के लिये सर्वथा उपयुक्त माना। वह कहते हैं, "मगर इसमें भी स्वरों की गुंजाइश रहती है। घनाक्षरी, मनहर जैसे वार्णिक छंदों के पाये पर मुक्तवृत्त के इस प्रभेद को मजे में खड़ा किया जा सकता है। कभी-कभी लोक कथा की तुकान्त शैली भी इसमें आकर भिड़ जाती है तो पंक्तियों की पूँछे जगमगा उठती हैं। भावनाट्य के लिये यह शैली खूब ही उपयुक्त बैठती है। इसे मैं 'निर्वध मुक्तवृत' कहूँगा।" और आगे लिखा है कि -

"कहना नहीं होगा कि मेघदूत का प्रस्तुत अनुवाद भी इसी शैली में किया गया है। आरंभ में कुछ एक श्लोकों तक अनुवादक की चेतना पर निराला छाये रहे, बाद को उसने उनसे छुटकारा पा लिया।"

'मेघदूत' की लम्बी भूमिका में इस ग्रंथ की लोकप्रियता के कई कारण नागार्जुन गिनाते हैं और रूसी अनुवादक पी० रित्तेर के द्वारा एस्थेटिक एंजॉयमेंट (सौंदर्य मूलक रसोपलब्धि) के अन्तर्गत स्वयं कालिदास का कथन उद्धृत कर देते हैं। पर इसी से संतोष नहीं होता। आगे वह कहते हैं कि "कहने को यों इस काव्य का नायक है यक्ष परन्तु मैं तो मेघ को ही कवि की विलक्षण कल्पना का नायक मानता हूँ। विश्वविदित कुल में उसका जन्म हुआ। उसकी अन्तरात्मा करुण एवं आर्द्र है। दान में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता। वह काम रूप है, चाहे जब जैसा रूप धारण कर लेता है। वह प्रकृति पुरुष है, असामान्य व्यक्तित्व वाला। एक ऐसी उत्तम कोटि का है, कि उसके समक्ष हाथ फैलाते वक्त किसी को लज्जा या ग्लानि का अनुभव नहीं होता। संतप्त प्राणी उसी की शरण में आकर शान्ति प्राप्त करते हैं। इतना प्यारा है वह, इतना भला कि उससे अनुचित प्रार्थना भी की जा सकती है, और चुपचाप मित्रों

का काम कर लाता है। बिजली ठहरी मेघ की प्राणवल्लभा।"

यहां नागार्जुन के 'मेघदूत' अनुवाद का लक्ष्य भी स्पष्ट हो जाता है। लेकिन यह तो एक पक्ष है। वह कहते हैं कि प्रेयसी-विरह की प्रत्यक्ष अनुभूति का यह विवरण कोरा कविधर्म नहीं बल्कि कालिदास की निजी संवेदनाओं का सहज परिपाक था। यात्रा निर्देश के प्रसंग में भी धरती, आकाश, नदियां, पहाड़ जंगल, मैदान, खेत, खेतिहर, वृक्ष, वनस्पति, उद्भिद और घास फूस , गांव, नगर, उपनगर, बाग-बागीचा, नर-नारी, पशु-पक्षी, देव-देवी सभी कुछ तो आ गया है। इसके बाद यक्ष की अलका नगरी जहॉ सिर्फ एक ही वेदना है, मदन वेदना और इसका इलाज होता है प्रियतम प्रियतमा का परस्पर समागम। सिवाय प्यार की छेड़खानियों के अन्य प्रकार की कोई कलह नहीं और वहॉ धनपतियों की नगरी में सारी की सारी आयु जवानी ही होती है।

'मेघदूत' यथार्थवादिता, यथार्थ आदर्श और धनात्मक रूझान को प्रस्तुत करने वाली कृति है। नागार्जुन का कहना है कि कालिदास को मनवीय ह्दय की भारी पहचान थी। इसी से उनके साहित्य में हम तत्कालीन समय एवं उत्तम वर्ग के समग्र लोकमानस की ये झांकियॉ पाते हैं। स्पष्ट है, कालिदास के मन में निम्न वर्ग की अहमियत कुछ नहीं थी, क्योंकि वह दरबारी कवि थे पर नागार्जुन? वह तो सर्वहारा के कवि है। उनकी सौन्दर्य-चेतना एक पक्षीय क्यों हो जाती है? वह समग्र भारतीय साहित्य को कालिदास की तुलना में हेय मानते हैं। वह कहते हैं कि यदि एक ही व्यक्ति का नाम भारतीयता के प्रतीक के रूप में लेने को कहा जाये तो मैं कालिदास का ही नाम लूँगा। कालिदास साहित्य के बेजोड़ शिल्पी थे, यह सही है पर उनकी सौन्दर्य चेतना एकांगी थी। यह भी उतना ही सच है। नागार्जुन की अतिशय श्रृद्धा कालिदास के प्रति कहीं स्वयं कवि की एकांगी मनः स्थिति को उजागर करती है। अलबत्ता हिमालय को गरिमा प्रदान करने वाले भौगोलिक ज्ञान को यथा रूप दिखाने वाले प्रकृति प्रेमी श्रृंगारिक कवि कालिदास निश्चित रूप से महान काव्य-शिल्पी कहे जाएंगे और

नागार्जुन का काव्यानुवाद निश्चित ही उत्तम है क्योंकि पढ़ने में वह आनन्द तो देता ही है। सुस्पष्ट और सरल भी है। अनुवाद की विशेषता यह है कि नागार्जुन ने कालिदास की भावनाओं को पूरा-पूरा उतारने का प्रयास किया है। इसमें उन्होंने अंचलीय शब्दों, उर्दू शब्दों और कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्दों को भी स्थान दिया है। ऐसा उन्होने अधिक- से -अधिक बोधगम्य बनाने के लिए किया है। संस्कृत के इस श्लोकः-

नेत्रा नीताः सततगतिना युद्विमानाग्रभूमी
रालेख्यानां नव जलकणेर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।
राडः कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जाल मार्गे-
धूर्मोद्गारनुकृति निपुणा जर्जरा निधतन्ति ।।

का अनुवाद नागार्जुन ने इस प्रकार किया है :-

सतमंजिला मकानों के
ऊपरी हॉल में होते हैं दाखिल
सदा गतिशील पवन से प्रेरित तुम्हारे हमजोली बादल
फुहियों से भिगो-भिगो मिटा देते हैं
भीत पर उरेहे हुये चित्र
और फिर धुएँ के छल्लों को नकल करने में उस्ताद
डर के मारे निकल भागते हैं दुष्ट
छितरा-छितरा कर जालीदार झरोखों से

इस अनुवाद में हॉल, दाखिल, फुहियों, उरेहे, उस्ताद आदि शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है।

विद्यापति के गीतों का भावानुवाद :-

सन् १९६५ ई. में नागार्जुन ने विद्यापति के सौ गीतों का भावानुवाद

किया था पटना में रहकर। उसी वर्ष 'रामलोचन पॉकेट बुक्स' पटना से 'सौ गीत विद्यापति के' का प्रथम प्रकाशन हुआ। फिर १९७२ ई. में हिंद पॉकेट बुक्स से 'विद्यापति के गीत' नाम का एक संग्रह आया। इस संग्रह में नागार्जुन ने विद्यापति के अट्ठाइस और भी पद एवं उनके भावानुवाद शामिल किए। १९७९ ई० में इसका पुस्तकाकार संस्करण भी छपा था।

कवि परिचय में उन्होने लिखा है कि "यह नहीं कि राधाकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित ये गीत कवि ने स्वांतः सुखाय लिखे थे। यह भी नहीं कि उन्होंने वैष्णव भावना के आवेग में यह पद लिखे हों। विद्यापति वैष्णव थे या रौव थे या शाक्त थे, समालोचकों की खींचातानी सामान्य पाठकों का अवश्य ही मनोरंजन प्राप्त करेगी। मुझे तो विरह श्रृंगार वाले ये कोमल गीत तत्कालीन सामन्तवर्ग के मनोविनोद की सामग्री प्रतीत होते हैं।" नागार्जुन का विद्यापति के गीतों के प्रति आकर्षण उनकी कोमलता के कारण था।पर विद्यापति के गीत विरह - श्रृंगार के ही कोमल गीत होते तो कोई बात नहीं थी। कुछ गीतों में काम और उद्दीपन इस हद तक व्याप्त हैं कि उन्हें कामशास्त्र की संज्ञा भी दी जा सकती है। नारी के शारीरिक विकास का पूरा जैव वैज्ञानिक चित्र, किशोरावस्था से लेकर युवावस्था तक का इन गीतों में है। विद्यापति के व्यक्तित्व और चरित्र का भी इससे पता चलता है - "जीवन के अन्त में मेरे सामने निराशा ही निराशा नजर आ रही है। आधी जिंदगी मैने सोचकर गंवा दी है। बुढ़ापा और बचपन ने न जाने कितने दिन हड़प लिये होंगे। शेष आयु मैने स्त्रियों के साथ रंगरेलियां मनाते हुये मदमस्त जवानी के हवाले कर दी।" विद्यापति का आत्म स्वीकार काफी संगत था। उनकी पोर-पोर में निराशा अटी हुई थी क्योंकि एक अन्य पद में कहा है, "बड़ी मुश्किल से मैने पाप की कमाई बटोरी। घर वाले मिलजुलकर उस धन का उपभोग कर रहे हैं।" विद्यापति के इन गीतों का अनुवाद करके नागार्जुन ने काम-रसिकों को तो प्रसन्न किया ही है, नियतिवाद को भी प्रश्रय दिया है।

नागार्जुन ने विद्यापति के सौ गीतों का हिन्दी में रूपान्तरण परम्परागत ढ़ंग से किये जाने वाले रूपान्तरों को छोड़कर नये ढ़ंग से किया है। पदों को पढ़े बिना भी रसिक जन केवल अर्थ से रस प्राप्त कर सकते हैं :

सखि पर बोधि समय-तन आनि
पिय हिय हरषि धएल निज पानि
छुबइत बालि मलिन भए गेलि
बिधु-कर मलिन कमलिनी भेलि
नहि नहि कहए नय झर नोर
सूति रहलि राहि सयनक ओर
आलिंगए नीबि-बंध बिनु खोरि
कुर कुव परस सेह भेल थोरि
आचर लेइ बदन पर झाँप
थिर नहि होअए थर थर काँप
भनइ विद्यापति धरैज सार
दिन-दिन मदनक होए अधिकार

इसकी व्याख्या अत्यन्त सरल भाषा में नागार्जुन ने इस प्रकार की है :

"सहेली समझा-बुझाकर उसे शयनगृह तक पहुँचा गयी। प्रीतम बहुत खुश हुआ। उसने सुन्दरी के हाथ पकड़ लिये। .... पति के छूते ही वह लड़की मुरझा गयी। लगा कि चाँद की किरणों के स्पर्श से कमलिनी उदास हो उठी है। .... वह लगातार नहीं-नहीं करती रही। आँखों में आँसू आते रहे। आखिर राधा ने अपने को बिस्तर के किनारे से सटा लिया .....। सो गयी। साड़ी की गाँठ नहीं खुली फिर भी आलिंगन तो मिला ही। कुचों पर थोड़ा वहुत हाथ फिरे इतना ही क्या कम है? मुख को उसने आंचल से ढ़ंक लिया। थर-थर काँपने लगी। "विद्यापति ने कहा, "धीरज सब

गुणों का निचोड़ है। कामदेव धीरे-धीरे अपना अधिकार जमा लेगा।"

इस प्रकार कवि का पांडिव्य एक सफल अनुवादक के रूप में भी स्पष्ट होता है। इसमें भी उसकी अपनी मौलिकता बनी हुई है।

गीत गोविन्द (जयदेव कृत गीत गोविन्द का गद्यानुवाद) :-

राधाकृष्ण केलि को जयदेव के गीतों में खोजकर 'गीत गोविंद' के माध्यम से पाठकों के सामने लाने का श्रेय भी नागार्जुन को ही है। इससे नागार्जुन का अतिशय श्रंगार-प्रेम विदित होता है। रीतिकालीन साहित्य में नागार्जुन की गहरी रुचि उनकी श्रंगारिक अभिरुचि की परिचायक है।

५. संस्कृत रचनायें :-

नागार्जुन ने हिन्दी और मैथिली के साथ ही संस्कृत कविताएं भी लिखी हैं। कवि को संस्कृत शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन था। इन कविताओं में उसने अपने श्रमिकों और कृषकों को ही अपना विषय बनाया है।

एक बार नागार्जुन ने कहा था - "संस्कृत काव्यों की जो रचनाभूमि है, वह जब हमारे सामने आती है तो फिर हिन्दी-बंगला-मैथिली वाला वो सब हम भूल जाते हैं। दिमाग से हटाना पड़ता है उसे।" हिन्दी और मैथिली का यह रचनाकार स्वीकारता है - "शब्दों को गढ़ने की ताकत मुझे संस्कृत से प्राप्त हुई है।" नागार्जुन संस्कृत रचनाओं पर उनके कवि-मित्रों ने उनसे उक्सर चर्चा की थी और जब वे नहीं हैं तब भी उन संस्कृत रचनाओं की चर्चा होती है।

नागार्जुन की ये संस्कृत कविताएँ हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित 'कौमुदी पत्रिका' में सन् १९४२ ई० में प्रकाशित हुई है। कुछ संस्कृत कविताएँ 'चाणक्य' उपनाम से भी नागार्जुन की प्रकाशित हुई हैं। अपने लंका-निवास के समय सिंहली लिपि में 'धर्मालोक शतकं' शीर्षक से एक खण्ड काव्य भी भिक्खु नागार्जुन ने लिखा था, जो वहाँ के विद्यालंकार विद्यालय' की मैगजीन में प्रकाशित हुआ था। 'महामानव लेनिन' पर बीस श्लोक नागार्जुन ने संस्कृत में लिखे हैं।

नागार्जुन रचित संस्कृत कविता की जब चर्चा होती है तो 'देशदशकम्', 'कृषक दशकम्', श्रमिक दशकम्' आदि की बात आ ही जाती है। दस-दस श्लोकों का बीस पंक्तियों, तीस पंक्तियों या फिर चालीस पंक्तियों का एक-एक दशकम् रहा होगा. .... कहाँ और कब छपे या नहीं छपे- कुछ नहीं कहा जा सकता। इन 'दशकमों' के सम्बन्ध में मात्र सूचनायें हैं - एक भी श्लोक कहीं मिल नहीं पाया। हिन्दी-मैथिली-बंगला रचनाओं के साथ संस्कृत रचनाओं की चर्चा भी तेज हुई पर नागार्जुन स्वयं भी उन संस्कृत श्लोकों की पंक्तियों को पुनः कागज पर उतार नहीं पाये।

इसी तरह विद्यालंकार परिवेण (श्रीलंका) में जब बौद्ध होकर रह रहे थे तो सिंहली लिपि में 'धर्मलोक शतकम्' की रचना की थी। यह भी सूचनात्मक चर्चा है। इसके छपित होने की भी सूचना मिली। पर वर्षों के प्रयास के बाद भी इसका मुद्रित अंश देखने को नहीं मिला ..

'लेनिन स्तोत्रम्' के अनेक श्लोक बार-बार लिखे गए। डायरी/नोटबुक के यहाँ-वहाँ खिसकने-खोने से उनमें से भी अनेक अंश खोए और गए..... संस्कृत रचनाएँ छोटी-छोटी स्लिपों पर अनेक बार लिखी गई।

६. बच्चों के लिये रचनायें :-

प्रायः सभी बड़े रचनाकारों ने बच्चों और किशोरों के लिये साहित्य लिखा है। विश्व-प्रसिद्ध रचनाओं का अपनी भाषा में बालोपयोगी रूपान्तरण भी बड़े रचनाकारों ने किया है। इस तरह के रूपान्तरण को मौलिक लेखन का अंग मान लिया गया है। प्रौढ़ पाठकों ने भी ऐसी कृतियों की सराहना की है। नागार्जुन ने भी बाल साहित्य एक अच्छी मात्रा में लिखा है।

रचनाकार होने के आरम्भिक दौर में ही नागार्जुन 'दीपक' (मासिक पत्र, अबोहर, पंजाब) के सम्पादक बने। उस पत्र में बच्चों के लिये भी कुछ पृष्ठ सुरक्षित होते थे। सम्भवतः बाल साहित्य लिखने की बात वहीं से उपजी है।

नागार्जुन ने अधिकांश बाल-साहित्य पटना में लिखा। कारण शायद स्थानीय सम्पादक मित्रों का स्नेह पूर्ण आग्रह रहा हो या फिर रचना तैयार होते ही भुगतान। पटना से एक जमाने में 'बालक', 'चुन्नू-मुन्नू' और 'किशोर' जैसी बालोपयोगी और किशोरोपयोगी नामी पत्रिकाएँ निकलती थीं। नागार्जुन का अधिकांश बाल साहित्य इन्हीं पत्रों में छपा है।

रामकथा का एक किशोरोपयोगी रूपान्तर नागार्जुन ने १९५४-५५ ई०

में पटना रहते हुये तैयार किया। बाल्मीकि और तुलसी – दोनों के राम को सामने रखकर यह पुस्तक तैयार की गई। पटना से पहली बार प्रकाशित इस पुस्तक का नाम था – 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम'। फिर इसका एक संस्करण 'भगवान राम' के नाम से पटना से ही छपा। अब यह पुस्तक 'मर्यादा पुरुषोत्तम' नाम से प्रकाशित है।

रामायण की कथा, कथामंजरी, वीर विक्रम, अयोध्या का राजा और प्रेमचन्द की जीवनी ('बाल साहित्य माला' के अन्तर्गत) लिखी है। उनकी बाल कहानियाँ हैं – सैनिक की भिड़न्त, यमराज से दुख, नदी फिर जी उठी, पारितोषिक, ठहाका – दाढ़ियों वाली फसल का, अद्भुत टापू अभिनेता, ड्यूटी पिता जी..... पैसे, बानर कुमारी, दया आती है, गजेन्द्र कुमार, तुकों का खेल, आसमान में चंदा तैरे आदि। तुकों के खेल में बच्चों को कविता लिखने के लिये खेल ही खेल में मात्रा गिनना सिखाया गया है।

'वानर कुमारी' में 'बेबी' एक वानर कुमारी है, जिसे माधवी' बन्दर शाला में सम्हालने का काम करती है। 'माधवी' बन्दरों पर शोध कार्य कर रही है। इस कहानी में बड़े रोचक ढ़ंग से बालकों का मनोरंजन किया गया है। 'छात्रसखा' (जनतन्त्र विशेषांक, जनवरी- फरवरी १६६६) में यह कहानी प्रकाशित हुई। 'भुट्टो की फसल का ठहाका' के रूप में चित्रित कहानी में विमल मचान पर सोया हुआ यह ठहाका सुनता है। उसकी नीद खुल जाती है और वह भी भारत में कृषि वैज्ञानिक 'मिचूरिन' के समान ही सफलता प्राप्त करने के विषय में सोचता है। बालकों को इस कहानी में जहाँ प्रेरणा दी गयी है, वहीं यह भी बताया गया है कि असावधानीवश बीड़ी फेंक देने से तैयार फसल कैसे बरबाद हो गयी। 'दया आती है' कहानी में बालक विपिन के पिताजी उसके लिये जरा भी समय नहीं देते, इस बात पर राजू जो प्राचार्य महोदय का लड़का है, पिता के अति व्यस्त रहने के बाद भी उनसे समय प्राप्त करता रहता है। 'दया आती है' कहानी में बड़ो को भी प्रेरणा दी गयी है, कि वे बच्चों को केवल रुपया

ही न दें, समय भी दें; उनके साथ उठे-बैठें, बातें करें, खेले आदि।

इन कहानियों की भाषा सरस एवं सरल है। प्रस्तुतिकरण: रोचक है।

नागार्जुन ने प्रेमचन्द का जीवन-परिचय (बाल जीवनी माला' के अन्तर्गत) बालकों के लिये लिखा है। इसमें प्रेमचन्द के बचपन से लेकर साहित्यकार हो जाने की कहानी है। इस पुस्तिका के अन्त में नागार्जुन ने एक स्वप्न देखा है, जिसमें प्रेमचन्द जी से बातचीत करते हुये कुछ प्रश्न पूछे हैं। प्रेमचन्द के ठहाके, कहकहे एक बार फिर हमें इसमें सुनाये गये हैं। उनकी प्रकाशन-संस्था, जिसे उनके सुपुत्रों ने साधन-सम्पन्न रहने के बाद भी मुरझाा दिया और दूसरी इच्छा से बड़ा भारी व्यंग किया गया है कि "गोदान आदि पॉकिट बुक्स में प्रकाशित होना चाहिये।" मुंशी जी के सुपुत्रों द्वारा प्रेमचन्द साहित्य के प्रकाशन में शुद्ध व्यावसायिक दृष्टिकोण अपना लेने के कारण ही शायद यह व्यंग नागार्जुन ने उन पर किया है। प्रेमचंद की इच्छा ग्रामीण और शहरी मजदूरों की हालत सुधारने की व्यक्त हुई है, जो बड़ी स्वाभाविक और मुंशी जी के विचारों के अनुकूल है।

यद्यपि इसकी भाषा सरल है तथापि काफी आकर्षण लिये हुये है। टेकनीक के लिहाज से यह पुस्तक 'बाल जीवनी माला' की अन्य पुस्तकों से अलग हो जाती है। काफी बातें स्वप्न में हुई हैं। ऐसा लेखक ने रोचकता और नयी टेकनीक के लिये ही किया है।

१९५५ ई० के अन्तिम महीने के बाद मई १९५६ ई० में पटना में रहते हुये नागार्जुन ने बाल और किशोर रचनाकारों से सीधा सम्पर्क जोड़ा। उन दिनों बिहार से निकलने वाले प्रमुख साप्ताहिक 'योगी' में अपने बाल स्तम्भ 'होनहारों की दुनिया' को संभालने का जिम्मा नागार्जुन को दिया गया; अर्थात् 'होनहारों की दुनिया' के 'बुझावन काका' नागार्जुन बने। सबके साथ आसानी से घुल-मिल जाने के लिये

अपने समय मे विख्यात रहे हैं वे। बच्चा, युवा, वृद्ध, महिला या पुरुष, किसी भी उम्र का पाठक क्यों न हो, नागार्जुन से उसकी आन्तरिकता तुरन्त हो जाती थी। वे हमउम्र हो जाते। इस क्रम में उन्हें यह अच्छा लगता यदि १०-१२ वर्ष का कोई किशोर अपनी लिखावट में छोटी कहानी या आठ पंक्तियों का छन्द जोड़कर सामने लाता। बहुत दुलार के साथ उस छन्द की मात्रा को समझकर या गद्यांश को थोड़ा वाक्य परिवर्तन कर पुनः लिखने के लिये प्रेरित करते।

पटना का साप्ताहिक 'योगी' और पटना की गलियों, बाजारों, सड़कों पर चिर-परिचित मुद्रा में दिखने वाले नागार्जुन 'बुझावन काका' बने तो परिचित परिवारों के बच्चे तो उस स्तम्भ से जुटे ही, दूर-दराज देहातों के नवांकुरों ने भी बुझावन काका से सीधा या पत्र सम्पर्क जोड़ा। बाल स्तम्भ कैसा हो, कैसे नए तुरन्त कलम पकड़कर लिखें - यह सब काका की तरफ से लिखे पत्रों से स्पष्ट हो जाता है।

पटना से ही मासिक 'छात्र-सखा' भी निकलता था। हाईस्कूल के छात्रों के लिये विभिन्न विषयों की सामग्री के साथ हिन्दी की विशेष सामग्री छपती थी इस पत्रिका में। इस पत्रिका के कुछ अंकों में 'तुकों का खेल' धारावाहिक प्रकाशित हुआ था। 'छात्र-सखा' पत्रिका के दो ही अंक खोजे गये हैं जबकि वह पत्रिका बहुत पुरानी नहीं थी। बिहार के छात्रों की पत्रिका होने के कारण इसकी फाइल किसी पुस्तकालय में नहीं है।

'तुकों का खेल' के इन दो अंकों में बच्चे छन्द कैसे जोड़ें, कविता किस तरह लिखें - इसी विषय को आधार बनाकर नागार्जुन ने कथा-गुंफन किया था।

कथा मंजरी :-

सन् १९५८ ई० में 'कथा-मंजरी' नाम से बच्चों के लिये कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ दिल्ली से। इसकी कहानियाँ पूर्व में पत्र-पत्रिकाओं में

प्रकाशित हो चुकी थीं। सरल भाषा-शैली और सहज वाक्य-विन्यास के कारण यह संग्रह चर्चित रहा। काफी दिनों बाद, १९७८ ई० में इस संग्रह को 'सयानी कोयल' नाम से प्रकाशित किया गया। 'वीर विक्रम' नाम एक लम्बी बाल कथा को इसी नाम से १९५६ ई० में पहली बार पटना से प्रकाशित किया गया था। अब यह पुस्तक इसी नाम से प्रकाशित है।

७. कहानियाँ :

नागार्जुन की कहानियॉ, जो १९३६ से लेकर १९६७ तक के दौर में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं - "दीपक", "कौमीबोली", "योगी", "गाँव", "पारिजात", "हंस", "ज्ञानोदय", "पुस्तक जगत", "कहानी", और "नई धारा" में प्रकाशित हुई। वे एक हद तक प्रेमचन्द और निराला दोनों के अगले विकास के रूप में देखी जा सकती हैं। वैसे नागार्जुन ने समय-समय पर जिन कहानियों की रचना की, उनको देखकर उनके क्रमिक विकास का अंदाजा जरूर लगाया जा सकता है। लेकिन उनके उपन्यासों की चर्चा छोड़कर यह नहीं कहा जा सकता कि नागार्जुन की कहानियाँ प्रेमचन्द या निराला की कथा परम्परा का पूरा-पूरा विकास करती है। यही कारण है कि नागार्जुन की अधिकांश कहानियों में चित्रित पात्रों, उमंगों और घटना क्रम की संगति का सूत्र उस काल-खण्ड में खोजना थोड़ा कठिन कार्य है। बहरहाल नागार्जुन की कहानियों में जो एक चीज़ सामान्य है, वह है ग्रामीण परिवेश और पात्रोचित भाषा का प्रयोग।

नागार्जुन जितनी तैयारी के साथ अपने उपन्यासों की रचना करते हैं, कदाचित उतनी तैयारी से वे अपनी अधिकांश कहानियॉ लिखते वक्त नहीं कर सके हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि नागार्जुन उन दिनों अपने आभावग्रस्त जीवन से समझौता करने के लिए प्रायः पत्र-पत्रिकाओं के लिये कहानियॉ लिख रहे थे। नागार्जुन ने शुरू में "अकिंचन" नाम से कहानियाँ लिखना आरंभ किया था और इस नाम से लिखी उनकी कहानी "असमर्थ दाता" शीर्षक से प्रकाशित हुई थीं। इस कहानी

का रचना काल १६३६ है। यह पहले पहल मासिक पत्र "दीपक के अक्टूबर, १६३६ के अंक में प्रकाशित हुई थी तथा बाद में वह "विशाल भारत" के वर्ष १६४० के एक अंक में वैद्यनाथ मिश्र के नाम से छपी। इस कहानी के दो पत्रिकाओं में छपने का एक मुख्य कारण तो आर्थिक हो सकता है, और दूसरा कारण "विशाल भारत" जैसी अच्छी और स्तरीय पत्रिका में छपने का लोभ भी रहा होगा।

नागार्जुन की कहानियों पर हिन्दी पाठकों का तो ध्यान गया है, लेकिन आलोचकों और समीक्षकों ने उनका नोटिस बहुत कम लिया है। यों भी उन्होंने अधिक कहानियाँ नहीं लिखीं।'आसमान में चन्दा तैरे' शीर्षक से वर्ष १६८२ में उनके सुपुत्र शोभाकांत ने कुछ कहानियाँ खोज कर एक संकलन तैयार किया जिसमें १२ कहानियाँ हैं। इन कहानियों में भी नागार्जुन संघर्ष और सौन्दर्य को एक साथ चित्रित और ध्वनित करने की उच्च्व कोटि की कला का परिचय देते हैं।

दरअसल नागार्जुन ने अपनी कहानियों के जरिये जिन कथा-चरित्रों की सृष्टि की है, वे स्वाधीनता पूर्व की स्थितियों में रहते हुए एक ऐसे सामाजिक तथा राजनैतिक परिवेश का निर्माण करते हैं, जो उनके चरित्रों की एक खास विशेषता भी कही जा सकी है। वैसे नागार्जुन अपने पात्रों की जिस मानसिकता को अपने कथा-साहित्य में चित्रित करते हैं, उनका वे वास्तविक जीवन में साक्षात्कार कर चुके होते हैं। यही कारण है कि उनके कथा-पात्र काल्पनिक न होकर आस-पास के परिवेश से उभर कर सामने आये होते, जिस प्रकार निराला, प्रेमचन्द, मुक्तिबोध, राहुल आदि लेखकों की कहानियों के पात्र सामाजिक जीवन के बीच से चुने गये होते हैं। हलांकि यह एक अलग विशेषता भी है, जो इन लेखकों के कथा चरित्रों को चिरस्मरणीय बनाने में बहुत हद तक मदद करती हैं।

नागार्जुन की कहानियों का संसार विभिन्न प्रकार की स्थितियों, घटनाओं और प्रसंगों से निर्मित है। उनकी कहानियों में कहीं सामाजिक और ऐतिहासिक प्रसंगों की

अवधारणा की गयी है। इससे स्पष्ट है कि नागार्जुन जीवन की विविधता के चित्रण के प्रति ज्यादा सतर्क रहे हैं, जो एक बड़े लेखक की विशेषता भी मानी जा सकती है। वैसे नागार्जुन जिन-जिन स्थितियों और प्रसंगों का चित्रण अपनी कहानियों में प्रस्तुत करते हैं, उनके पीछे उनका कोई न कोई रचनात्मक अभिप्राय निहित होता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो पहली और अंतिम कहानी में एक प्रकार का साम्य भी है और वह यह है कि दोनो कहानियों मे नागार्जुन ने मानवीय सहानुभूति और करुणा का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है। नागार्जुन की अन्य कहानियाँ किसी न किसी अर्थ में सामाजिक यथार्थ के आसपास की स्थितियों को ही चित्रित करती देखी जा सकती हैं। इनकी "तापहारिणी" १९४५ शीर्षक कहानी में पुरुष वर्ग की नारी वर्ग की उपभोक्तावादी दृष्टि पर व्यंग किया गया है तो "जेठा" (१९४७) शीर्षक कहानी में जेठा नन्द नामक युवक की अपनी प्रेमानुभूति का चित्र प्रमुख रूप से प्रस्तुत हुआ है। काया पलट १९४६ कहानी इसके विपरीत गॉवों से जाकर शहरों में बस जाने की आम प्रवृत्ति को अपना विषय बनाती है और इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करती है कि यदि पढ़े लिखे लोग गॉव आकर रहना शुरू करें तो गॉवों की काया पलट हो सकती है। कहानी के एक प्रमुख पात्र का यह कथन है "पढ़े-लिखे आदमी छठे छमाहे आकर दो-चार दिन गाँव में रहें तो देहात का रंग ही बदल जाये", इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

यों नागार्जुन की कहानियाँ शिल्प, कथ्य और कहीं-कहीं भाषा के स्तर पर एक-दूसरे से भिन्न हैं, लेकिन उनकी प्रस्तुति की शैली लगभग एक ही प्रकार की है। इस दृष्टि से उनकी ऐतिहासिक कहानी "विशाखा मृगार माता" १९५८ का जिक्र किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य बौद्ध धर्म को जैन धर्म से उत्कृष्ट साबित करना है। चूँकि बौद्ध धर्म का आधार वैज्ञानिक चिंतन है, इसलिए वह अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है। वैसे उसमें कुछ असंगतियाँ भी हैं, और वे यह कि कपड़े के आभाव के कारण भिक्षु-भिक्षुणियों का नंगे स्नान करना तथा दास-दासियों का भिक्षुक संघ में शामिल न करना। इसी कारण कहानी में बौद्ध धर्म के प्रति आलोचनात्मक रुख व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार

"हर्षचरित" का पॉकेट एडिशन (१९५६) भी एक प्रकार ऐतिहासिक कहानी है, जिसमें स्थाण्वीश्वर के महाराज हर्ष और राजवर्धन के घातक गौड़ाधिपति, नरेन्द्र गुप्त शशांक के बीच का युद्ध प्रसंग वर्णित है। इसके अलावा कहानी में बहन के प्रति भाई की त्याग-भावना प्रमुख रूप से व्यक्त हुई है। दूसरी ओर "ममता" (१९५८) शीर्षक कहानी जो एक सामान्य कहानी है, इस तथ्य को रेखांकित करती है कि मातृहीन बालक को मॉ की ममता की ज्यादा जरूरत होती है। इसके विपरीत "विषम ज्वर" (१९५५) कहानी में इस सच्चाई को बखूबी चित्रित किया गया है कि अल्प वेतन भोगी कर्मचारी या कामगार को अपनी आर्थिक सीमा का बराबर ध्यान रखना पड़ता है, यह कारण है कि उसे कभी-कभी अपनी इच्छाओं का दमन भी करना पड़ता है।

नागार्जुन की कहानियों में प्रायः जहॉ व्यंग्य और आलोचना का स्वर प्रमुख रूप से व्यक्त होता है। वहां वे इस बात के प्रति सतर्क रहते हैं कि उनका व्यंग्य ज्यादा प्रखर और प्रभावशाली हो। उनकी कहानी हीरक जयंती (१९५७) इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय रचना है। यह नागार्जुन की सबसे लम्बी कहानी होने के बावजूद इस दृष्टि से स्मरणीय है कि उसमें पात्रों के बीच संवाद का लम्बा सिलसिला चलता है। दूसरे, इस कहानी में पत्रकार, साहित्यकार, महिला, जमींदार, सेठ, विधानसभा और लोकसभा के सदस्य गण आदि मुख्य पात्र हैं। कहानी के बीच-बीच में कविवर मृगांक की कविता का दौर चलता रहता है, जिससे हास्य और व्यंग्य का मिला-जुला माहौल पैदा हो जाता है। वास्तव में नागार्जुन जिस अर्थ में एक सशक्त व्यंग्यकार माने जाते हैं, वह इस कहानी से ज्यादा स्पष्ट होता है। यह कहानी कई प्रसंगों के बीच होकर गुजरती है, जिनके जरिये नागार्जुन सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों और विसंगतियों पर लगातार व्यंग्य प्रकार करते चलते हैं। समाज में जहाँ भ्रष्ट व्यवस्था का माहौल है, और जहाँ सरकारी संस्थाओं द्वारा शिक्षा फैलाने, समाज कल्याण करने और निरक्षरता दूर करने का अभियान चलाया जा रहा है। वहीं व्यापक स्तर पर जनता के पैसे लूटने और उसे गुमराह करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। इसकी ओर संकेत करना कहानी का उद्देश्य

है और इस दिशा में यह बहुत हद तक सफल भी रही है।

इस प्रकार देखा जाये तो नागार्जुन की अधिकांश कहानियाँ अपने शिल्प में ठीक-ठाक होने के बावजूद कथ्य की दृष्टि से प्रायः औसत दर्जे की कहानियाँ होने का एहसास कराती हैं । यहीं नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों से उनकी कहानियों का अंतर स्पष्ट हो जाता है, दूसरी कहानियों में जो कथ्यगत विविधता है, उसका कारण सम्भव है, समय-समय पर उनके मानसिक रचाव पर पड़ने वाला तात्कालिक प्रभाव भी रहा हो। इसके अलावा पत्र-पत्रिकाओं के लिए कहानियाँ लिख कर भेजने की जल्दबाजी भी एक कारण हो सकता है अथवा आर्थिक दबाव के तहत उन्हें लिख भेजने की विवशता भी रही होगी। वैसे जो कहानियाँ पूरी तैयारी के साथ लिखी गई हैं उनमें "विशाखा मृगारमाता", "हर्षचरित का पॉकेट एडीशन" और "हीरक जयंती" जैसी कहानियों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

नागार्जुन की कहानियों की चर्चा का अंत करने से पहले एक बात की ओर संकेत करना आवश्यक है कि नागार्जुन ने बड़ी जीवंतता के साथ लम्बी साहित्य-साधना को सही मुकाम तक पहुँचाया है। राम विलास शर्मा ने इसी लिए नागार्जुन को जनता के साहसी अभियान का प्रतीक माना है और लिखा है कि "हिन्दी साहित्य की जीवन्त परम्परा को और भारतीय जनता के साहसी अभियान के प्रतीक हैं कवि, नागार्जुन"[1]

---

१. नई कविता और अस्तित्ववाद : संस्करण १९७८

सम्पादन कार्य :-

साप्ताहिक हिन्दी 'जनयुग' में नागार्जुन 'यत्किंचित्' स्तम्भ भी लिखते रहे हैं, जिसमें देश की विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक घटनाओं और सामयिक प्रश्नों पर लेखक की व्यंग्यात्मक टिप्पणी देखी जा सकती है। २८ दिसम्बर १९६८ के 'जनयुग' में जय प्रकाश जी के 'चक्षुदान' के समाचार पर व्यंग किया गया है। १० नवम्बर, १९६८ के 'जनयुग' में देश की दूषित राजनीति पर उन्होंने लिखा, "पहली बार, दूसरी बार, तीसरी बार यानी बार-बार दल बदलने वालों का अन्त अब निकट है। फिर भी वर्ष-दो-वर्ष लग जायेंगे। अन्ततः तीन साढ़े तीन साल.....।" कांग्रेस की तत्कालीन स्थिति पर उन्होने लिखा है, "देश की सबसे बड़ी राजनैतिक पार्टी खुद ही "इन्द्रजाल का अखाड़ा बनी हुई है। केन्द्र में कांग्रेस का सुहाग-सिन्दूर कब तक अमिट रहेगा? कब तक निजलिंगप्पा जैसे पंचानन (पाँच मुँह वाले) अपनी सुनहली पूँछ फटकारते रहेंगे?" इसमें निजलिंगप्पा के पाँच साथियों पर व्यंग किया गया है। १५ सितम्बर' ६८ में 'जनयुग' में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा केवल उच्च्व जाति वालों को ही लाठी परिचालन एवं अन्य कलाओं की ट्रेनिंग के सन्दर्भ में स्तम्भकार ने लिखा है : "छोटी जाति के युवक शायद सीटी नही बजा सकते।" ७ जून, १९७० के 'जनयुग' में विजय लक्ष्मी पण्डित पर व्यंग करते हुये लिखा है - "बुआ जी, कहाँ गयी? ... . अर्से से बुआजी के बारे में हमें कुछ नहीं पता चला? फूलपुर वाला उनका कॉटेज. ...... वो बगिया...... वो लॉन..... सब रो रहे होंगे माताजी के विछोह में फीके पड़ चुके होंगे।" आगे की पंक्ति में व्यंग और गहरा हुआ है : "बाबू सत्यनारायण सिंह, आचार्य कृपलानी, प्रोफेसर रंगा, मिसेज़ पंडित की याद जब इन बुजुर्ग सांसदों को आती होगी तब उसॉस नहीं छोड़ते होंगे बेचारे?" [1] उनके व्यंग की धार अत्यंत पैनी है।

---

1. *जनयुग : नागार्जुन, पृ०सं० ११*

लघु प्रबन्ध :-

एक व्यक्तिः एक युग :-

नागार्जुन ने महामनिषी निराला पर एक लघु प्रबन्ध 'एक व्यक्ति : एक युग' लिखा है। निराला के प्रति बरती गयी हमारी उपेक्षा और उनकी मानवता तथा अभावग्रस्त का जिक्र भी किया गया है। इसमें निराला के साहित्य का भी मूल्यांकन हुआ है। अर्थात् इस पुस्तक को लिखने में लेखक का उद्देश्य निराला के किसी एक पक्ष को प्रकाशित करना नहीं बल्कि समग्र निराला को रेखांकित करना रहा है।

प्रथम अध्याय में निराला के अभावगस्त जीवन का परिचय दिया गया है। इसके साथ ही उनकी दानशीलता एवं व्यक्तित्व के अन्य पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में नागार्जुन ने यह स्पष्ट किया है कि 'निराला हमें अपने स्वरूप का ज्ञान करा गये। वे दिखा गये कि हिन्दुस्तान में शुद्ध साहित्यकार कितना उपेक्षित और असहाय है। ... अगर साहित्यकार राजनीतिज्ञों का अनुगमन करने से हिचकता है तो भौतिक तौर पर उसका भविष्य अन्धकारपूर्ण है।" हमारे यहाँ आर्थिक लाभ के उच्च्व पदों पर पदासीन साहित्यकार ही सुखी हो सकते हैं। नागार्जुन ने अन्त में उन उच्च्व वेतनभोगी साहित्यकारों पर व्यंग्य किया है, जो साधारण साहित्यकारों की दयनीय स्थिति पर ड्राइंग रूम पर अपनी सांध्य चर्चाओं में मानवतावादी बघार मारते हैं।

इसमें नागार्जुन निराला के प्रति राजनीतिज्ञों की उपेक्षा से अत्यन्त क्षुब्ध दिखाई देते हैं, और यह क्षुब्धता राजनीतिक अकड़ पर जगह-जगह व्यंग का रूप ले उभरी है। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बनकर आये पर उन्होंने रूग्ण निराला की सुधि नहीं ली। शायद उनकी परम श्रेष्टता को आँच्च आने का भय था। नेहरू और शास्त्री भी कई बार इलाहाबाद आये पर अपने प्रशंसकों से ही वे भी घिरे रहे, दो क्षण निराला से चर्चा करने का अवकाश उनके पास भी नहीं

रहा। स्थिति पर अत्यन्त आक्रोश से भर कर नागार्जुन ने पूछा है : "साहित्य क्या राजनीति के आगे फटी जूती भी नहीं?"

नागार्जुन ने राजनीति ही नहीं, साहित्य में व्याप्त दूषित मनोवृत्ति पर भी आक्षेप लगाया है।

निराला चाहते थे कि साहित्यिक मर्यादाओं के प्रति पूरी-पूरी आस्था रखने वाले लोग ही साहित्य में आयें। बड़े पिता का पुत्र होना ही साहित्यिक होने का मानदण्ड नहीं है। इस दृष्टि से नागार्जुन ने बताया है कि तुलसी दास निराला के आदर्श कवि थे। तुलसी दास को अपने समय में पुरातन पण्डितों से संघर्ष करना पड़ा था, निराला का भी सम्पूर्ण जीवन संघर्षरत रहा। इस पर नागार्जुन ने लिखा है : " देशकाल में शर से बिध कर निराला का भी अशेष छविधर कवि जागा था। स्पष्ट है कि निराला का अपना कवि और उनके आदर्श कवि तुलसीदास दो नहीं एक ही व्यक्ति थे।"

'श्रमनिष्ठा कलम के मजदूरों की' अध्याय में नागार्जुन ने महाकवि निराला को कलम का सच्चा मजदूर घोषित किया है। नागार्जुन ने इस बात पर भी क्षोभ व्यक्त किया है कि हमारे साहित्यिकजन लोकसभा में चले जाते हैं, या प्रकाशन आरम्भ कर व्यवसायी बन जाते हैं पर निराला ने हमेशा अपनी दृष्टि अपने ध्येय पर रखी और वह था साहित्य देवता के चरणों में एक से एक सुगन्धित पुष्प अर्पण करना। उनका लेखन चलता रहा, पर वे किसी के सामने अपने अभावों के लिये गिड़गिड़ाये नहीं। यही सच्चे साहित्यकार की विशेषता है।

इसमें नागार्जुन ने निराला के कुछ संस्मरण भी प्रस्तुत किये हैं।

'एक व्यक्ति : एक युग' में नागार्जुन ने निराला की अपराजेयता और उनका समाज-संघर्ष तथा नेताओं की उनके प्रति बरती गयी उपेक्षा आदि तथ्यों को उपस्थित किया है। भारतीय साहित्यकार की दयनीय स्थिति, उसके द्वारा जीवन के

व्यावहारिक पक्ष की ओर आकर्षित होने की विवशता और इससे साहित्य में होते हुये ह्रास की ओर भी संकेत दिया है। सारी कृति में नागार्जुन की सधी, खरी, तीखी भाषा-शैली दिखाई देती है, जो गद्य लेखन पर उनका सबल अधिकार सिद्ध करती है। निराला के प्रति की गयी अवहेलना, साहित्य एवं राजनीति में व्याप्त प्रमाद और भ्रष्टाचार पर नागार्जुन ने कसकर व्यंग्य किये हैं। निराला द्वारा जीवन की जटिलताओं का आसव पीना और समाज की भ्रष्ट परम्पराओं को छिन्न-भिन्न कर स्वस्थ समाज निर्माण तथा श्रेष्ठ साहित्य के सृजन पर जोर देना इस कृति का लक्षण है। नेताओं पर किये गये व्यंग्य प्रहारों और उच्च पदों पर चिपके साहित्यकारों पर लगाये गये आक्षेपों के मूल में नागार्जुन की कुछ वैयक्तिक कुण्ठाएँ भी हैं, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। निराला के सम्बन्ध में ज्ञातव्यता की दृष्टि से यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है, विशेषकर निराला साहित्य के शोध छात्रों के लिये। उन्हें इसमें निराला सम्बन्धी कई अप्रकाशित तथ्य मिलेंगे।

पत्र तथा डायरी लेखन :-

नागार्जुन अपने समय में सम्भवतः सबसे बड़े पत्र -लेखक के रूप में भी स्थापित हो चुके थे। जैसा उनका जनसंपर्क का संसार विशाल था, वैसी ही पत्र सम्पर्क की बड़ी दुनिया थी। न ज़ाने कितने हजार पत्र उन्होंने अपने घुमन्तू जीवन में लिखें होंगे।

घुमक्कड़ी की तरह पत्र लेखन भी बढ़ता ही गया था। किसी भी स्थिति में रहें आठ दस पत्र रोज लिख ही लेते थे। पत्र लिखकर खुद ही लेटर बाक्स के हवाले करना पसन्द करते थे। इतना ज्यादा पत्र लिखने के कारण ही किसी भी नगर में यह आसानी से पता लग जाता था कि कहाँ और किस स्थिति में रह रहे हैं। समकालीन लेखकों में सम्भवतः सबसे ज्यादा पत्र-साहित्य इनका ही होगा।

नागार्जुन के पत्र लिखने का ढ़ंग भी अपना खास था। सैकड़ों कार्ड पड़े

हों फिर भी उनके लिखे पोस्ट-कार्ड दूर से ही पहचान लिये जायेंगे। पोस्टकार्ड पर जहाँ पत्र पाने वाले का पता लिखने की जगह होती है, और आधी जगह पत्र लिखने के लिए, उस आधी जगह में नागार्जुन बड़े अक्षरें में अपना पता लिखा करते। कुछ कार्डों पर अपने पते के ऊपर तारीख लिखते।

अन्तर्देशीय के भीतरी पृष्ठों को अपनी सुविधा के अनुसार जैसे-तैसे लिखते। पत्र पाने वाला परेशान न हो, इसलिये पृष्ठों पर नम्बर डाल देते। कभी-कभी हाशिए पर दो बारीक अक्षरों में लिखते, दो कालम बनाकर। कालमों को क्रम से अवश्य लगाते। अन्तर्देशीय में कभी-कभी भीतर भी अपना पता डालते। और कभी-कभी पत्र भेजने वाले का पता की जगह पर उस नगर का नाम मात्र लिखते, जहाँ से पत्र लिख रहे होते।

पत्र कैसे शुरू हो, बातों का क्रम किस प्रकार बदला जाए, अपना पता और तारीख आदि अपने 'खास' तरीके से लिखते। पहले तो 'पिनकोड' नहीं था। जब से चालू हुआ, नागार्जुन पत्रों में 'पिनकोड' नहीं डालते। सम्भवतः पिन नम्बर को याद करना या पत्रों से उतारना कठिन लगता। कभी-कभी सादे लिफाफे पर उचित डाक टिकट से कम का डाक टिकट भी लगाते और लिफाफे के ऊपर ही लिखते Stamped ...... Paise इसे अंडरलाइन करते। तर्क था इसके पीछे कि यह पत्र पहुँचेगा क्योंकि पोस्ट ऑफिस को पैसा वसूलना है।

पत्र लिखने को वे रचनात्मक कार्य मानते थे।एक-दो वाक्यों का पत्र भी इस तरह के वाक्यों में होगा कि पत्र पाने वाला पूरी तरह से आश्वस्त हो जाए। अपने समकालीनों से ज्यादा युवा पीढ़ी के लोगों से इनका पत्र-व्यवहारा हुआ करता था। पत्र काफी तन्मय होकर लिखा करते थे। इनके थैले में पता लिखे दस-बीस पोस्टकार्ड-अन्तर्देशीय हमेशा रहते थे। कवि कर्म की तरह ही पत्र-लेखन में स्थान और परिस्थिति बाधक नहीं रही। उनके नियमित कार्यों में पत्र लेखन सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण

कार्य रहा।

बड़ा पत्र तो मनोयोग पूर्वक लिखते। पत्रों में अपने कार्यक्रमों की सूचना, जहाँ से पत्र लिखते उस निवास-स्थान की सूचना-सन्दर्भित बातें और स्थानीय भूगोल के साथ वहाँ की सामाजिकता दे देते। उन पत्रों में वे तरल हृदय वाले भावुक कवि के साथ ही एक निकटस्थ विचारक की तरह लगते, जो पत्र-वाचक की सभी उलझन-भ्रान्ति को दूर करने का सामर्थ्य रखता हो।

पत्र डाक में खो जाए या जिसे पत्र लिखा गया है, उसकी लापरवाही से पत्र इधर-उधर हो जाए और इसकी सूचना मिलती तो नागार्जुन को बड़ा कष्ट होता। एक पत्र में उन्होंने लिखा है- "अगर मेरे पत्रों को इसी प्रकार ऐरे-गैरे हवाले आप भविष्य में भी करते चले तो मैं इतनी मेहनत से और इस प्रकार खुलकर विस्तार से तुम्हें क्यों पत्र लिखने लगा।"

सम्भवतः हजारों पत्र नष्ट हुए और हजारों पत्र देश-विदेश के विभिन्न भागों में सुरक्षित भी होंगे। यह भी नहीं कि जिनके पास पत्र हों, वे सबके सब साहित्यिक रूचि के ही हों, पर नागार्जुन उनके अपने अवश्य हैं।

पत्रों से डायरी और रिपोर्टिंग -दोनों का काम लेते थे। यदि भविष्य में पत्रों को वर्ष क्रम से जमा किया जायेगा तो निश्चित ही इनकी काफी गतिविधियों और जहँ-जहाँ घूमते रहे, उसका परिचय प्राप्त हो जायेगा। इनके घुमक्कण व्यक्तित्व को सही ढ़ंग से जानने में इनका पत्र साहित्य ही सहायक होगा।

नागार्जुन कभी-कभार मास-पन्द्रह दिनों के उपरान्त डायरी में वे बड़े ही मनोयोग से व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनितिक आदि समस्याओं तथा सन्दर्भों पर लिखा करते थे। डायरी के शुरू वाले पृष्ठ पर बड़े अक्षरों में 'यत्किंचित' लिख देते। यह 'यत्किंचित' शब्द उन्हें खूब भाता इस तरह के लेखन के लिए। डायरी तो

यदा-कदा शुरू के दिनों में लिखते थे और सम्भवतः १६७१-७२ ई० तक यह क्रम रहा। बाद में यह क्रम टूट क्या गया, छूट ही गया।

लिखित नोट, बुक कापियाँ-डायरियाँ बराबर खोती रहीं। पुस्तकें खोई, फिर खरीद ली गई। कविताएँ खोई तो वे कविताएँ तो नहीं कुछ और कविताएँ लिखी गई, पर 'यत्किंचित' वाली डायरी फिर नहीं लिखी गई, किसी भी रूप में। पहली उपलब्ध डायरी ३० जनवरी, १६६७ से २५ सितंबर, १६६७ के बीच की है।

दूसरी डायरी के कुछ पृष्ठों में नागार्जुन ने अपनी रूस-यात्रा को अति संक्षिप्त रूप में कलमबद्ध किया। शेष पृष्ठ सादे हैं। यह डायरी तिथि और पक्की 'प्लास्टिक जिल्दवाली' है।

नागार्जुन का सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी की अमूल्य निधि है। कवि मान बहादुर सिंह' की ये पंक्तियाँ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का लेखा जोखा प्रस्तुत करती है :-

तुम मारत की मूल चेतना
भारत की तुम जीवन शैली
बैजनाथ के देह धाम से
नागार्जुन की गंगा निकली
जीवन टांगे घूम रहे हो
हर पग धरती चूम रहे हो
तुमने ऐसे मंत्र गढ़े हैं
घन प्रेतों के होश उड़े हैं।
हंस बने जो काले कौए
हड़ा तुम्हारी जब भी सुनते

x x x x

तुम आदिम हो तुम नवीन हो

तुममें हैं भविष्य के सपने

तुम धरती के ऐसे कवि हो

लगते हो तुम सबके अपने

x x x x

तुम मलयानिल तुम हो आंधी

थोड़ा मखमल थोड़ी खादी

तुम घरबारी तुम हो नागा

तुम हो सुई, तुम हो तागा

तुम्हीं सड़क हो, तुम पड़ाव हो

बीच शहर में उगे गांव हो

तुम अक्षर हो तुम मात्रा हो

तुम यात्री हो तुम यात्रा हो।

तृतीय अध्याय

नागार्जुन की शब्द साधना

१. काव्य में शब्द की महत्ता :-

'कविता मूलतः शब्दों की कला है। इसमें ऐसे सार्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है कि उनके स्थान पर पर्याय रख देने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।'[१] जब एक सार्थक शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है, तो उसका अपना एक निश्चित स्थान होता है और उसके स्थान परिवर्तन में भी अपेक्षित भाव के सम्प्रेषण में अन्तर आ जाता है। शब्दों की एक व्यवस्था जो प्रभाव डाल सकती है, जिन संवेगों को जगा सकती है, हो सकता है उन्ही शब्दों की दूसरी व्यवस्था उसको न जगा सके।[२] कविता में पाठक शब्दों के माध्यम से कवि की भावनाओं के साथ सीधे तादात्म स्थापित करता है। साहित्य की अन्य विधाओं में भी शब्दों का महत्व है, किन्तु उतना नहीं, क्योंकि साहित्य की अन्य विधाओं में पाठक लेखक के शब्दों से नहीं उसके द्वारा सृजित पात्रों के माध्यम से लेखक के विचारों तक पहुँचता है। इसीलिये कविता में साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा शब्द का विशेष महत्व माना जाता है।[३]

भाषा की लघुत्तम इकाई ध्वनि है। उन्हीं ध्वनियों के समूह का नाम शब्द है। अर्थ की दृष्टि से शब्द स्वतंत्र होता है। अर्थ शब्द की माला है। जिसे व्यक्त करने की क्षमता शब्दों में होती है। कहा भी गया है-

गिरा अरथ जल बीचि सम
कहियत भिन्न नभिन्न।

वस्तुतः शब्द में ही अर्थ के उत्पादन की क्षमता होती है। शब्द के अर्थ और स्वरूप का सही परिचय पाने के लिये सबसे पहले उसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ जानना आवश्यक है।

---

१. *छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप : डा० सुधा गुप्ता, पृ०सं० १०६*
२. *ये सपने : ये प्रेत - डा० रणजीत, पृ०सं० ८*
३. *परिप्रेक्ष्य : डा० रणजीत, पृ०सं० २६*

शब्द की व्युत्पत्ति-

शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में यद्यपि मतभेद है पर सबसे अधिक प्रचलित मत के अनुसार शब्द की उत्पत्ति 'शब्द' धातु से हुयी है। उस धातु से शब्द की रचना इस प्रकार हुयी है।

शब्द + धञ्

अर्थात् शब्द धातु में धञ् प्रत्यय के योग से 'शब्द' का निर्माण हुआ है।

शब्द का अर्थ है 'ध्वनि करना' या 'बोलना' आदि।

विभिन्न भाषाओं में प्राप्त होने वाले शब्द के पर्याय भी प्रायः इसी अर्थ को व्यक्त करते हैं।

डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार "अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई शब्द है।"

हर देश की भाषा की अपनी शब्द सम्पदा होती है। उसका प्रयोग साहित्यिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गति-विधियों में होता है। डॉ० राम विलास के शब्दों में, भाषा की मुख्य सम्पत्ति है उसका शब्द- भंडार। शब्द भंडार में जिन शब्दों का सम्बन्ध मनुष्य के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से है, जो उसकी नित्य-प्रति की आर्थिक और सांस्कृतिक कार्यवाही में काम आते हैं, उन्हें मूल शब्द -भण्डार मानना चाहिए।" [1]

इस प्रकार उच्चारित ध्वनि को शब्द कहा जाता है।

२. नागार्जुन की शब्द साधना-

नागार्जुन ने यद्यपि कविता को जड़ाऊ बनाने का विरोध ही किया है पर शब्दों का उपयुक्त चयन और उनकी सही संयोजना उनके काव्य में सर्वत्र है।

---

१. भाषा और समाज : पृ०सं० १०

इनकी कविताओं का आदर्श ऐसी जनभाषा का प्रयोग है, जो एक ओर तो इनकी जनवादी अनुभूतियों को साफ-साफ व्यक्त कर सके। यही कारण है कि सरल, सीधे और दिन-प्रतिदिन व्यवहार में आने वाले शब्दों का प्रयोग इन्होंने पूरी सावधानी के साथ किया है।

नागार्जुन को देशी-विदेशी अनेक भाषाओं का ज्ञान है अतः उनकी कृतियों में अनेक प्रकार की भाषाओं के शब्द स्वतः आ गये हैं। उनकी भाषा कभी-कभी अत्यन्त सरल और सपाट हो जाती है और कभी-कभी आभिजात्य। शब्द-शक्ति की दृष्टि से उनके काव्य में अमिद्या, लक्षणा और व्यंजना -तीनों शब्द-शक्तियों का प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं उनकी भाषा बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक और मिथकीय हो गई है। उनकी भावात्मक कविताओं में सामासिक पदावली का प्रयोग मिलता है। जब वे आक्रोश की मुद्रा में होते हैं, तो भद्दी और ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं अनगढ़ शब्दों का प्रयोग करते हैं। एक बात अवश्य है कि वे बिम्बवादियों की तरह सटीक शब्दों का प्रयोग करते हैं। अलंकार और विशेषणों का प्रयोग प्रायः कम करते हैं। विशेषणों के आधिक्य से भाषा की प्रवाहमयता शिथिल हो जाती है। एजरा पाउन्ड के अनुसार ''विशेष साज-सज्जा वाले शब्द और विशेषणों के अधिक प्रयोग से भावों की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।''[1] नागार्जुन एजरा पाउन्ड के विचारों से परिचित है। इसलिए शब्दों की फिजूलखर्ची से बचते हैं।

नागार्जुन संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, पंजाबी, बांग्ला, उड़िया, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के सम्पर्क में ही नहीं आये, बल्कि विदेशी भाषाओं में से अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी तथा रूसी आदि से भी वे भली-भांति परिचित है। अतः इन भाषाओं के शब्दों का उनके काव्य में प्रयोग हो जाना स्वाभाविक है। हम उनके काव्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को मुख्य रूप से तीन समूहों में बांट सकते

---

१. The Peotry of Ezra Pound, Allice Amdur, Page - ३६

है- १) संस्कृत २) बोली और ३) विदेशी।

हिन्दी भाषा की परम्परागत स्रोत भाषाओं में संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश की गणना होती है। संस्कृत भाषा का ज्ञान उन्हें संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ है। कालिदास, भवभूति आदि के काव्यों का उन्होंने केवल अध्ययन और मनन ही नहीं किया है, उनके विचारों तथा सम्प्रेषण-साधनों को भी अपने मानस-पटल पर अंकित कर लिया है। यही कारण है कि उनके काव्य में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। उन्हें निम्नलिखित रूप में अंकित किया जा सकता है:

उद्गाता, ऊर्जा, अनावृत, चरण, युगल, अणीयान, महीयान, महत, महत्तर, नितम्ब- भंजन, अविराम, यंत्रणाएँ, अग्नि-स्नान, कर्मकाण्ड, संकल्प, शीतोष्ण, वाक्य-विन्यास, उत्पीड़न, रस, शांति-सुधा, अनाविल धारा, मुनिगण, वरण, कारा, किंचित, किसलय, गुच्छित, शर-शय्या, कुसुमास्तीर्ण, प्रवचनरत, तरूणी, युगावतार, पितामह, मुक्तहस्त, चिंतित दलपति, शनैः-शनैः संवैधानिक, निरन्तर, फाल्गुन-सी, कंपित, उत्तम, भद्रतापूर्वक, विगलित, अर्पित, प्रवाहित, चर्वण-चर्वित, प्रखर-प्रचण्ड, पूर्णावतार, विषकन्या, रूद्ध, सुस्पष्ट, जीर्ण-शीर्ण कलेवर, आशीष, अभिमुख वहिन-स्नान, प्रकृति, व्याकरण-सम्मत-प्रांजल भाषा प्रवचन, मेघा, अन्त्याज, लघु, लघुतर, लघुत्तम, प्रणयिनी, प्रचारित, प्रज्वलित, विच्युति-विभ्रम, केबन्ध, भक्ष, आस्तिक गतानुगतिकता, प्रतारक, पट्रस्स, विजित, सर्वग्रास-सर्वत्रास अंत्योदय अन्त्यनाश आदि।

सामान्य जनता तक अपने सन्देश को पहुँचा कर उन्हें अनुप्रेरित कर उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिये तुलसी और सूर ने बोलियों को अपने सम्प्रेषण का माध्यम बनाया। बोलियों में जो शब्द-समूह मिलता है, उसमें अर्थवहन की अपूर्व क्षमता ही नहीं, सहजता, प्रवाहमयता और बोधगम्यता भी होती है। ग्रामीण हिन्दी बोलियों के महत्व का प्रतिपादन करते हुये डॉ० हरदेव बाहरी ने लिखा है कि, "कभी-कभी विशिष्ट अभिव्यक्ति के लिये साहित्यिक एवं सामान्य शब्दावली काम नहीं

आती और कभी-कभी साहित्यिक भाषा का शब्द सूझता ही नहीं, अपनी बोली का शब्द ही सामने आता है। यह भी कहा जाता है कि साहित्यिक भाषा में जो कृत्रिमता, रूढ़ि और अप्रेषणीयता आ जाती है उससे वह नीरस और निष्क्रय हो जाती है। प्रत्येक साहित्यकार बोली के सहज प्रवाह, नैसर्गिक-सारस्य और सीधे प्रवाह से लाभ उठाना चाहता है। कभी बोली को ही सामान्यता के धरातल पर लाने की चेष्टा करता है। इससे साहित्यिक भाषा समृद्ध होती रहती है।"[1] नागार्जुन जन कवि है और जनभाषा बोली के माध्यम से अपने विचारों को साधारण पाठक तक पहुँचाने के लिये उन्होंने पूर्वी हिन्दी बोलियों का प्रयोग किया हे। उदाहरणतः डग, सुग-बुगाई, अगहनी, परमान, रगड़ू, धरम, नाहक, अकल, शऊर, भाई, लोटा, गोबर, अबेर, सबेर, डायन, फंसाद, टुकुर टुकुर, रखैल, हिरनौटा, कपार, भागमत, बुकनी, सरऊ, किरपिन इ-ती-सी, सबाद, थूथन, गुजार, मना-मुनूकर, करनूत, जइयो, सुतरी, लम्हे-भर भेड़िया-घसान, बतियाता, हांका, जमना-पारी, टहलुवा, पनिहा, व्यान, पतइयो, टटका, भूत, मुसकाता, खदेरन, मजूर, पुष्टई, अगयानी, तिपहरिया, चेला-चाटी, बंटाढ़ार आदि।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से फारसी के शब्दों का प्रयोग होता आ रहा है और वे केवल महानगरों तक सीमित न होकर छोटे-छोटे ग्रामीण क्षेत्रों तक फैले हुए है। सामाजिक जीवन तक ही नहीं, भोजनालय तथा अन्य जगहों में व्यवहृत होते हैं। हिन्दी के मार्क्सवादी लेखक अरबी-फारसी के शब्दावलियों का प्रयोग जबर्दस्ती करते हैं और इस प्रकार का उनका प्रयोग कृत्रिम ही नहीं लगता है, चौकाने वाला भी होता है। पर नागार्जुन जब अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं तब उनमें सहजता, स्वाभाविकता तथा बोधगम्यता का पुट अधिक रहता है। उनके काव्य में व्यवहृत अरबी-फारसी शब्दावली की पड़ताल हम निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं।

---

१. ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ : डा० हरदेव बाहरी, पृ०सं० १०

मुगलाता, इंशा, हुकूमत, शहीद, बीबी, नावाबों, नफाखोर, नशा, कदम-कदम, मुस्तैद, महसूस, तमाशे, शामिल, माहौली, वक्त, मसीहाई, काहिल, फिजूल, बकवास, हकीकत, साबित, फर्क, हरकत, आहिस्ता, आहिस्ता, बारिश, रोज, सुबह-शाम, जादुई, बेकाबू, शायद, इम्तिहान मिन्नते, अर्से, जबरन, कब्जा,हमदर्द, तबीयत, मौजूदी, काश, किस्मत, मर्तवान, कतई, आखिर, अलविदा, बदन, दर-असल, फिलहाल, नाश्ता, तबादला, तन्दुरूस्ती, दुरूस्त, नित्तह, याकि नाज, नखरे, बेगम, साहबा, पेशा, गुफ्तगू, जाहिर, कारगुजारी, शौकीन, गोश्त, ताकत, खत्म, कामयाब, उस्ताद, फुर्ती, लस्त-पस्त, ज्यादा, यक-ब-यक, सौफीसदी, हजूम, मर्जी-मुताबिक, आजमाइश, गुमसुम, अमूमन, सिपहसालार, हफ्ते, बरकरार, मजा, मगर पाबन्दी, फहरा, जरा, आवाम, गिरफ्तार, अहसास, सिर्फ, आजादी, लोथ, बेरूखी, तनख्वाह, हाकिम, जरूरत, तकलीफ, बन्दूक, लफड़ा, जिक्र, चहलकदमी, इर्द-गिर्द अदना, बदहोश, बहकी-बहकी, मुहर, मनसूबा, तुनुक मिजाज, बदजुबान, बदतमीज, शादी, फौलादी, करीब, खैर, वर्ना, शैतान, वेदाग, नशा, ज्यादातर, कर्ज, सिफारिश, मर्द, सही-सलामत, ओफ्फोह, दंगे, दरमियान, गमगीन, फौरन, ज़ालिम, कहर, मुर्दाबाद, बर्बर, जंगबाज, तवारिश आदि।

रामवृक्ष बेनीपुरी के लिए 'श्रृद्धांली स्वरूप लिखी गयी कविता में उर्दू शब्दों के कारण भाषा में एक भव्यता आ गयी है -

शख्श की बेबसी को सलाम, उकताहट को सलाम
अब्र की तपिश को सलाम, जमीं की तरावट को सलाम
हमसफीर को सलाम, हमसफर को सलाम
सूबा-ए-बिहार के जौहर को सलाम।'[1]

---

1. पाण्डुलिपि से।

नागार्जुन ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये तुर्की शब्दों का भी प्रयोग किया है। उनमें उजबक, उर्दू, अरमान, कुली, ,खान, चाकू, चम्मच, दरोगा, बाबर्ची, मशाल, लाश, सौगात आदि प्रमुख शब्द है।

अंग्रेजों के आगमन तथा उनकी शासन-व्यवस्था के साथ ही अंग्रेजी का हमारे देश में प्रचार हुआ। पहले अंग्रेजी का प्रयोग सरकारी कार्यालयों, स्कूलों तथा महाविद्यालयों तक ही सीमित रहा, पर बाद में कल-कारखानों, कचहरियों, फौजी, सिपाहियों, अस्पतालों, रेलवे कर्मचारियों तथा यात्रियों के माध्यम से कुछ अंग्रेजी शब्द विकृत रूप से सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में पहुंच गये। आज वे शब्द आम जनता के व्यवहार के उपकरण बन गये है। अंग्रेजी की जो स्वर और व्यंजन ध्वनियां हिन्दी में नहीं मिलती है, उनके उच्चारण का हिन्दीकरण कर लिया गया है। अंग्रेजी के ये शब्द सामान्य जनता में प्रचलित हो गए है। अगर अंग्रेजी के इन शब्दों की जगह अनुवाद पेश किया जाय तो वे कृत्रिम और अस्वाभाविक लगते है। बिगड़े हुए रूप में अंग्रेजी के इन लोक-प्रचलित शब्दों को स्वीकार कर लेने से हिन्दी शब्द-सम्पदा का भंडार बढ़ा है। नागार्जुन एक जनकवि है। वे इस सत्य से भली-भांति अवगत थे कि आम जनता को किन अंग्रेजी शब्दों का बोध है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग स्वच्छन्दतापूर्वक हुआ है। नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द-समूह को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं: पोस्ट ग्रेज्युएट, डेविएशन, ब्वाय, मटन चाप, लायल्टी, पब्लिक, ब्यूरोक्रेसी, एम्बुलेंस, यूनियन, एग्रीमेण्ट, प्रूफरीडर, फोर्टीन, स्लंपिंग, स्टिवाच, स्टेप्टोमाइसिन, पैरासूट , मिलिट्री, पेट्रोल, वोट, करेंसी, एलेक्ट्रिक, कण्डक्टर, पुलिसमैन, ड्यूटी, इमर्जेन्सी का शौक, रिकार्ड, कलैण्डर, केस डिस्ट्रिक्ट, जेल, आनरेबुल, चीफ मिनिस्टर, प्लीज, सेंटिमेंटल, फेमिली, हाईजम्प, किलास, लेक्चर अलार्म, किचन, रूम, स्लोगन, आफर, टाउन, प्रोग्राम, अरेस्ट, सर्कुलर, साइक्लोस्टाइल, अण्डर ग्राउण्ड, अकूपंचर, न्यूज एजेन्सी, फंक्शन, पंक्चर, फासिज्म, फेडरल, सिल्कन, नम्बर,

सोशालिस्ट, सेल, नो नो, एक्सक्यूज, यंग टर्क, स्पीच, न्यूट्र-बम, क्वाटरो-फाइल, कामरेड, प्रेसिडेंट, कालिज, लिमिटेड कम्पनी, कलैण्डर, बूट, सिगरेट, ट्रंक, स्टेट्समैन, पेन्शन, बोफोर्स, डालर, रूबल, सुपर फास्ट, एनीव्हेयर, एनीटाइम, लिटिल, नेव्हर, क्राइम, प्योर, मिल्क, पम्प, रेडिओ, मनीआर्डर, प्रोमोशन, मार्क्स, फ्रेश, फुटपाथ, स्ट्रीट, ट्रेन माइण्ड, ब्रेन, प्लेट, सेन्टेन्स आदि।

नागार्जुन ने ऊपर लिखित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग जिन संदर्भों में किया है, वे बोध की दृष्टि से प्रभविष्णु हो गये हैं।

जनभाषा-

नागार्जुन के पास भाषा का विराट संसार है कवि ने भाव के अनुसार ही भाषा को अपनाया है। इसी कारण भाषा संसार इतना विषम हो गया है कि साध ारण वर्णन में भी सावधानी न बरतने वाले पाठक को धोखा हो सकता है। हिन्दी प्रदेशों की सर्वहारा जनता, किसान, मजदूर एवं निम्न मध्यवर्गीय लोग जिस प्रकार की भाषा को समझते एवं उपयोग करते हैं, उनका परिष्कृत रूप इनकी कविताओं में मिलता है। जब सर्वहारा से कवि जुड़ता है तो उसे ऐसे ही साहित्य की रचना करनी होती है जो देश की स्थितियों से उन्हें परिचित कराते हुये उनके अधिकारों के प्रति उन्हें सचेत कराकर उनके ज्ञान को बढ़ा सके। नागार्जुन के काव्य की आत्मा गांव की भाषा ही है। इस संदर्भ में हम डॉ० रामविलास शर्मा के कथन को देख सकते है-

'वह गांव का है, वहीं की जनता में पैदा हुआ है, पढ़ लिख गया है लेकिन इससे उनके संस्कार विकृत नहीं हुए है, परिष्कृत हुए है। वह संस्कृत का पंडित है लेकिन अपनी भाषा का सादा जातीय रूप खूब पहचानता है। 'अभी कल तक पथराई हुई थी धननर खेतों की माटी' वह भाषा वैसी ही ठेठ हिन्दी है जैसे धनहर

खेतों की माटी ठेठ भारतीय धरती है यहां लोक संस्कृति की सहज आत्मीयता है।"[१]

गांव की चमर टोली में जब कवि की दृष्टि जाती है तब उनके द्वारा प्रयुक्त बोली हम हरिजन गाथा में देख सकते हैं-

'पैदा हुआ दस रोज पहले अपनी बिरादरी में
क्या करेगा भला आगे चलकर ?
राम जी के आसरे जी गया अगर
कौन सी माटी फोड़ेगा ?, कौन सा ढेला फोड़ेगा ?"[२]

'इनकी झोंक मारती बोलियों का जीवन्त खाका-भभाकर हंसना, मुलुर-मुलुर देखना, पीनिक, टुकुर-टुकुर ताकना, बटुर-बटुर आयेगी दुनिया... बुक्का फाड़कर रोना, बिड़बिड़ा बोलना, बहुत जोहा बाट...

पतईयों का कोड़ा तापना, कनरवी मारना, भीत, पोर-पोर आदि बहुतायत से मिलता है।[३]

नागार्जुन की भाषा जन भाषा होने के कारण स्थिति को मजबूती से पकड़ती है। जनवादी होने के नाते नागार्जुन की कविताओं में लोकभाषिक आग्रह अधिक दिखलाई देता है। जनता के मन की बात को जनता की भाषा में कहने वाला नागार्जुन अपनी भाषिक संरचना में सरल, स्पष्ट और बोलचाल के शब्दों को ही अधिक अपनाता रहा है। उनकी भाषा भावों के अनुसार न केवल बदलती रही है, अपितु जनमानस की संवेदनाओं के रंगों में भी ढलती रही है। भाषा को सामान्य स्तर

---

१. *डॉ० राम विलास शर्मा : नई कविता और अस्तित्ववाद, पृ०सं० ४६*

२. *नागार्जुन, 'हरिजन गाथा'।*

३. *डॉ० रतन कुमार पाण्डे : नागार्जुन की काव्य यात्रा, पृ०सं० १०८*

पर लाने के प्रयास में ही नागार्जुन ने ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त देशज और बोलचाल के कुछ शब्द ये है : थाम, जादुई, छुअन, मसें, छिरकना, दो जने, थपथपाए, खूसट, निढाल, अनमेल, खिलवाड़, ऊट-पटॉग, बक-बक, अनाप-शनाप, असगुन, जमात, गलबहियां, ठूँठ, फुट्टियां, टुकर टुकर, छलिया, आंख मिचौली, सजी-धजी और पटियॉ आदि।

मैथिली भाषा :-

मैथिली शब्दों के प्रयोग की स्वाभाविकता को न समझ सकने के कारण कुछ लोग नागार्जुन की भाषा पर ऊबड़-खाबड़ होने का आरोप लगाते हैं, पर इसी विशेषता के कारण उनकी भाषा में एक अछूती आत्मीयता के दर्शन होते हैं। मिथिला की माटी की सोंधी-सोंधी महक उनके काव्य से उभरती-सी लगती है। भाषा का यह ठेंठपन ही एक आकर्षयण है, अपने को समष्टि में मिला देने की उत्सुकता है और इसी गुण के कारण नागार्जुन जनता और धरती के गायक के रूप में सामने आते हैं।

लोक भाषा किसी विशेष अंचल का प्राण होता है। नागार्जुन के उपन्यास आंचलिक भाषा से युक्त है। मैथिली शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। जैसे 'नयी पौध' में सतमाय सौतेली माँ, टधार (पतली धार), गाछी (चौखट), 'रतिनाथ की चाची' में ओहार (पर्दा), पितियाइन (चाची) आदि शब्द।

ठिकियाकर, कै ठो, औंठो आहि वा रे, मउगी, गे मइयो, ए गो, बथान, घिरावां, मइया री, सींथ, जुगाड़ आदि।

बलचनमा में मैथिली के शब्दों का बाहुल्य देखकर 'हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास' के लेखक डॉ० लक्ष्मी कान्त सिन्हा लिखते हैं: "इसमें गँवारु भाषा के उद्धार करने का हठ है।"

ग्रामीण पात्र के मुख से सरल, सहज और स्वाभाविक मैथिली को, जिसमें विद्यापति के लिखे गीत आज भी मिथिला के जन-जन का कंठहार बने हुए है, गँवारु भाषा कहना अनुचित है। वस्तुतः अब क्षेत्रीय लोक भाषाओं के विकास पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर ने भी तो अपने अंचल की भाषा में ही अपने भाव विहल हृदय को उड़ेला हे। आंचलिक उपन्यास के निरक्षर पात्र से क्या डॉ० सिन्हा, शेली, कीट्स, टैनिसन या टैगोर की भाषा प्रयुक्त करवाना चाहते हैं। मैथिली शब्द जहां-जहां प्रयुक्त हुये है, प्रकृत रूप में। स्वाभाविकता लाने की खातिर ही नागार्जुन ने मैथिली शब्दों का प्रयोग किया है। मैथिली के ही कुछ लोक-गीतों से लेखक ने उपन्यासों की भाषा में माधुर्य बिखेर दिया है।

मैथिली भाषा में नागार्जुन ने कई कविताओं पर भी अपनी लेखनी चलायी है। 'यात्री' की कविताओं के मूल मैथिली में मात्र दो संग्रह है ''चित्रा और 'पत्रहीन नग्न गाछ''।

'पत्रहीन नग्न गाछ' से एक उदाहरण दृष्टव्य है-

भोरे-भोर

आएल छी बूलि

दुबिआही लॉन में

भोरे-भोर

भोरे-भोरे

पैरक दुहू तरबाक ग' ह ग' हद' ने

आएल छी पीबि

माघी आकाशब हेमाल ओस

भोरे - भोर

आएल छी बूलि

दुबिआही लॉन में

भोरे-भोर

(भोरे -भोर' कविता)

'चित्रा' से एक उदाहरण दृष्टव्य है -

नान्हिटा छलौं ,दूध पिबैत रही

राजा -रानीक कथा सुनैत रही

घर -ऑगनमे ओंघड़ाइ छलौं

कनिया -पुतरा खेलाइ छलौं

दुबिहाही लॉन में

'चित्रा' से एक उदाहरण दृष्टव्य है-

नान्हिटा छलौं, दूध पिबैत रही

राजा-रानीक कथा सुनैत रही

घर-ऑगन में ओंघड़ाई छलौं,

कनिया-पुतरा खेलाइ छलौं,

मन ने पड़ै अछि, केना रही

लोक कहै अछि, नेना रही।

(विलाप' कविता)

ध्वन्यात्मक शब्दावली-

नागार्जुन के शब्द-विधान की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उन्होंने परिस्थिति के अनुरूप ध्वन्यात्मक शब्दावली का प्रयोग करके एक विचित्र नाद-सौन्दर्य उत्पन्न किया है। मछली को तलने से उठने वाली आवाज को नागार्जुन ने इस रूप में

पकड़ा है-

कड़-कड़-कड़ाक कड़ कुस्स

धुस सुस् सुस् सुस् सुस् ...'[1]

मन को पुचकारते हुए नागार्जुन ने लिखा है-

च्चु : च्चुः, च्चुः च्[2]

युद्धीय विमानों की उड़ान कवि का ध्यान इस तरह आकृष्ट करती है-

तड़ड़ तड़ड़ तड़, तड़ड़ तड़ड़ तड़

धड़ड़ धड़ड़ धड़, धड़ड़ धड़ड़ धड़[3]

संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली-

नागार्जुन की काव्य-भाषा की संरचना दो प्रकार की है। एक लोकधर्मी भाषिक रूपाकारों की भाषा और दूसरे संस्कृत निष्ठ तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग जो हमें मिथकीय रचनाओं और 'रत्नगर्भ की कविताओं में प्राप्त होता है। 'भस्मांकुर' की भाषिक संरचना संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान है।

नील-मणि पद्मराग स्फटिक और वैदूर्य

महामूल्य फीरोजा प्रियदर्शन चंद्रकांत

स्थूलतम मौत्तिकों की महोज्जवल एकावली

निकले महार्घमणि।[4]

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ४४

२. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १२७

३. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १५६

४. रत्नगर्भ : नागार्जुन, पृ०सं० ६३

नागार्जुन संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हैं, इस तथ्य से मुकरा नहीं जा सकता। इसी कारण काव्य-भाषा कहीं-कहीं संस्कृत-बहुल हो उठी हैं। संस्कृत छन्दबद्ध रचनायें भी अपने आप हो गयी है। 'पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने' कविता में उगते हुए सूर्य को अरसे बाद देखते ही कवि कह उठता है-

ओम् नमो भगवते भुवन-भास्कराय
ओम् नमो ज्योतिरीश्वराय
ओम् नमः सूर्याय सवित्रे

इसी प्रकार 'राजकमल चौधरी के लिये' कविता में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है। जहां पर संस्कृत शब्दों के प्रयोग से काव्य में लालित्य लाया जा सकता है, वहाँ निःसंकोच नागार्जुन ने संस्कृत का प्रयोग किया है 'बादल को घिरते देखा है' कविता में बाणभट्ट की कादम्बरी' के समान पूरे बीस पंक्तियों में एक वाक्य पूरा हुआ है, एक क्रिया आयी है। अगर ग्राम्य शब्दों द्वारा कविताओं के तथ्य का स्वाद बदलता है (क्योंकि छींक मारने पर खाद्य वस्तुओं का जायका बदल जाता है)। उसी प्रकार संस्कृत शब्दावली द्वारा रूप बदलता है और कवितायें लालित्यपूर्ण हो उठती है। 'धरती' कविता की कुछ पंक्तियां इस सन्दर्भ में ली जा सकती है-

कषण-विकर्षण-सिंचन-परिसिंचन
वपन-तपन, सेवा-सुश्रुषा
कर-चरण-तन का सचेतन संस्पर्श
सुदुर्लभ स्वेद कण
प्रतीक्षातुर नयनों के स्निग्ध-तरल प्रक्षेपण
शिष्योचित श्रद्धा भक्ति
पुत्रोचित परिचर्या

पति सुलभ प्रीति

मातृ सुलभ ममता

पितृ सुलभ परिपोषण

चाहती आयी है सदा से धरती

धरती का ऐसा बिम्ब निर्माण संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में ही सम्भव हो सकता है। धरती शिष्य की श्रद्धा ,पुत्र की परिचर्या, पति की प्रीति, माता की ममता एवं पिता की तरह देख-रेख की आकांक्षा रखती है। जो इन दृष्टियों से जुड़ेगा वही उसका वास्तविक सुख पाने का अधिकारी है।

संस्कृत शब्दावली का प्रयोग जिन कविताओं में हुआ है वे आकर्षण युक्त होते हुये भी कवि की प्रकृति के विशेष अनुकूल नहीं लगती है। 'भस्मांकुर' काव्य की भाषा तो प्रायः तत्समीकरण की वृत्ति से युक्त है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां देखिये-

''असमय अंकुर, असमय लतावितान

वृद्ध वनस्पतियों का नव परिधान

असमय कुसुम विलास, हास, हिलकोर

गुंजित अलिदल, कपित कलिकाकोर

असमय चंचल दखिन पवन चितचोर

असमय हरियाली का पारावार

असमय पिककुल मुखन्ति बारम्बार।।''

इसी प्रकार 'बादल को घिरते देखा है' और 'जनवंदना' कविताओं में भी संस्कृतनिष्ठ शब्दों से युक्त भाषा के दर्शन होते हैं। 'जनवंदना' की ये पंक्तियां देखिये-

तुम मानवता के दूषित-गलित अवयवों पर

प्रलयांत बह्नि बन बरस रहे

हो तुम्हारे लोहित नील स्फुलिंगों से

त्रिभुवन का तम तोम हरण

हे कोटि शीर्ष? हे कोटि बाहु, हे कोटि चरण।'[1]

'अमल धवल के गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है' और वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका/प्रथम दिवस आषाढ़ मास का/देख गगन से श्याम धन घटा/चित्रकूट के सुगम शिखर पर उन पुष्करावर्त मेघों का /आदि (कालिदास के प्रति कविता) में भी भाषा की संस्कृतनिष्ठता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। इसी प्रकार कवि नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त इस शब्दावली को भी भुलाया नहीं जा सकता है- युग्म, लावण्य, प्रलम्बित, मणिकुट्टिम, अधित्यका, ब्रीड़ा, विगलित, हित प्रांतर, मायावार, मृगमदवासित, किसलय-कुसम प्रसार, सहकर्मी, स्वरूप, युगनद्ध, धवलाद्रि, शिलोच्चय स्वर्ण चन्द्र, स्वर्ण चन्द्र, निराभरण श्लथ, स्मरशरबिद्ध, वलय, अभिसूत्रित, वलय, कोरक गुच्छ, श्रुति-संपुट, जिजीवषा, रक्तांशुक निमृतकक्ष आदि।

मुहावेदार शब्दावली-

नागार्जुन का भाषा पर जबरदस्त अधिकार है। उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति के लिये मुहावरों तथा कहावतों का आश्रय लिया है।

दरभंगा में प्रचलित एक मुहावरा देखिये- ''चाची मुट्ठी बांधकर खर्च करती, तो उनके लिये सौ -दो सौ रूपए बचा लेना आसान था''[2] मुट्ठी बांध कर खर्च

---

१. *युगधारा (जनवंदना कविता) : नागार्जुन, पृ०सं० १०*

२. *रतिनाथ की चाची : नागार्जन, पृ०सं० १११*

करने का अर्थ है कृपणता से खर्च करना। एक मुहावरा और देखा जा सकता है- "बाबू कोयले की खांन का हीरा है।"[1] 'कोयले की खान का हीरा' का तात्पर्य है निकृष्टतम वस्तु में अत्यन्त सुन्दर होना। इनके अतिरिक्त कान पाथ कर, नाक काट ली, गांठ बांधना (नयी पौध) आंखे तरेरना (इमरतिया), गुस्सा घोंट कै पीना (उग्रतारा) नजाकत की सोन छड़ी (हीरक जयन्ती), गाल फुलाना, नाक में नकेल डालना (दुखमोचन) आदि मुहावरे है।

अपने असंख्य पाठकों के लिये कवि नागार्जुन तीव्र, सघन और पारदर्शी संवेदनाओं के कवि रहे जो अपने परिवेश और काल के कठिन सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों से पूरी तरह परिचित थे, चाहे वे मुद्दे स्थानीय हो, राष्ट्रीय हों या वैश्विक हों उनकी कुछ प्रेम कविताएं तथा अकाल और कालिदास पर लिखी कविताएं आधुनिक हिन्दी साहित्य की 'क्लासिक' धरोहर है। इन रचनाओं का हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत करते हुए उन्होंने जिन पदबंधों और मुहावरेदार शब्दावली का प्रयोग किया है- उनकी बानगी यहाँ दृष्टव्य है :

'चंदन वृक्षों की जड़ में बड़े-बड़े विषधर सांप है।
उनके विष से मलयानिल, व्याकुल हो उठा और बड़ी
कठिनाई से उत्तर की ओर चला है। वहां हिमालय
में आज वह अपनी जलन मिटाएगा।
आम्र की रस-भरी मंजरियां देखकर खुशी के मारे
कोयलों ने 'कुहू-कुहू' की मानों रट लगा दी है।
आम्र-मंजरियों की भीनी-भीनी महक जितनी ही फैलती
है, भौंरे उतने ही उल्लास से उन मंजरियों को आन्दोलित
करते हैं। कोयल की कूक से बटोहियों के कान गरमा

---

१. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ०सं० ७०

गए हैं। ध्यानस्थ होकर स्मृति द्वारा ही वे समागम-सुख
की अनुभूति ले रहे हैं। इस प्रकार बेचारे विरही जिस
किसी भांति वसंत के ये दिन काट रहे हैं।

(हिन्दी रूपांतरः कवि द्वारा)

कहना न होगा, कवि नागार्जुन द्वारा मूल संस्कृत से अनूदित ये अंश अपनी मुहावरे दानी और प्रस्तुति में मूल जितने ही रचनात्मक और प्रभावी प्रतीत होते हैं।

नागार्जुन ने जगह-जगह पर लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सटीक प्रयोग किया है।

उदाहरणार्थ-

१. देखते तुम इधर कनखी मार
और होती जबकि आंखे चार

२. वह झोंक रहे हैं धूल हमारी आंखों में

३. कहां न जनता दाँत पीसती हत्यारों पर[१]

४. कवि हूँ सच है
किन्तु षट्पदों जैसा क्या मैं
फूल सूँघ कर रह सकता हूँ।[२]

५. बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।[३]

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १८, ३१ व ३८

२. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ६२

३. तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ०सं० ४६

६. घिनौने इंगित है, रंगे सियारों के।[1]

७. देखों गिरने ही वाले है, भहराकर अब महल ताश के।[2]

ग्रामीण लोकभाषा के शब्द-

नागार्जुन ने अपनी कविता में ग्रामीण बोल-चाल के शब्दों को भी स्थान दिया। कहीं-कहीं मैथिली के कुछ शब्दों को उन्होंने अपने मूल रूप में हिन्दी कविताओं में स्थान दिया है, जैसे 'छुच्छी'[3] पचास ठो रूपया'। लोकभाषा के अन्य शब्द- 'कलमुंही, बंसफोड़, जिमदारी, मुच्छड़, पछिया, छूंछे वोम्मारा, इत्ता-इत्ता सा, बतकही, ताल, पोखर, गाछी, सुरती, नुक्कड़, छिनाल, चुल्लू, तलइया' आदि। इसी प्रकार के अनेक शब्दों को उन्होंने काव्य में स्थान दिया है। रंग धुल रहा स्यारों का, तीसों दिन दिवाली है, हमला वर मुंह की खाएंगे- ग्रामीण रूप के प्रयोग से भाषा आकर्षणत्व प्राप्त कर गयी है।

अन्य उदा०

झुक आए कजरारे बादल

कूक उठे मोर

- -----

बिजनी की मूंठ से खुजलाकर पीठ

छेड़ती रहेगी छिनाल पुरबइया

इकलौती बिटियावाले अधेड बाप की भांति

---

१. खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, पृ०सं० १५

२. नया साहित्य : दिसम्बर, १९५०, पृ०सं० ४२

३. युगधारा 'जनवंदना कविता' : नागार्जुन, पृ०सं० १०५

और मेरा रोआँ-रोआँ हो उठा कंटकित।

(झुक आये कजरारे मेघ)[1]

ऋतु-संधि कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है-

प्रतीक्षा की बहुत जोहा बाट
जेठ बीता, हुई वर्षा नहीं नभ यों ही रहा खल्वाट
आज है आषाढ़ वदि षष्ठी

\- - - - - -

सुमुखि, वर्षा हुई होगी एक क्या कै बार
गा रहे होंगे मुदित हो लोग खूब मलार
भर गई होगी अरे वह वाग्मती की धार
उगे होंगे पोखरों में कुमुद पद्म मखान[2]

(ऋतु संधि)

विशेषण प्रयोग-

नागार्जुन ने शब्दों के रूप बदलकर भी कहीं-कहीं बड़ा आकर्षण पैदा कर दिया है। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से संज्ञा से विशेषण बनाने में देखी जा सकती है-

१. एम्बुलंसी कार आई, गई वापस
२. सिन्दूर तिलकित भाल
३. तुम्हारी यह दंतरित मुस्कान
४. केवल पल्टनिया हाथी, पावेगा दाना-पानी
५. अपनी गँवई पगडंडी की चन्दनवर्णी धूल

---

१. प्यासी पथरायी आँखें (झुक आये कजरारे मेघ कविता) : नागार्जुन रचनावली, भाग१
२. ऋतु संधि कविता : (नागार्जुन रचनावली भाग १) पृ०सं० ७१

६. चमक उठी गुलाबी धूप में तन की चंपई कान्ति।[1]

विशेषण प्रयोग की दृष्टि से नागार्जुन की 'और तू चक्कर लगा आया तमाम' तथा 'ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा'- कविताएं विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवि 'मन' की विभिन्न स्थितियों को स्थापित करने के लिये कई विशेषण एक साथ प्रयोग करता है-

रीते मन

छूछे मन

खाली मन

दिशा शून्य, इंगित हीन

भ्रांत-क्लान्त, दलित दीन

भीतर से भयभीत

बाहर से युग जीत

छुद्रमन, छिछोर मन

डाकू मन, चोर मन

बेहद भगोड़े मन।[2]

इसी प्रकार बी.एन.कालेज, पटना में विद्यार्थियों पर हुए पुलिस गोली कांड से शोक-संतप्त होकर नागार्जुन ने 'ऐसा क्या अब फिर फिर होगा'-कविता लिखी थी। इस कविता में भी घटना स्थल पर एकत्रित महिलाओं की विभन्न मनः स्थितियों को अंकित करने के लिये कवि ने बहुत से विशेषण एक साथ प्रयुक्त किए है-

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० २, १४, १७, ८६, १०३ व ११८

२. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १२७

ग्रामवासिनी-नगरवासिनी

माताओं-बहनों-बहुओं की

रुकी निगाहें, झुकी निगाहें

क्रुद्ध निगाहें, क्षुब्ध निगाहें

अरूण निगाहें, करूण निगाहें

डरी निगाहें, भरी निगाहें

तरल निगाहे, सजल निगाहें

व्यथित निगाहें, मथित निगाहें

स्तबध निगाहें, शून्य निगाहें

देख रही बी.एन.कालिज के बरामदे पर सूखा शोषित पंक।'[1]

निष्कर्ष-

नागार्जुन का शब्द विन्यास बहुत सशक्त है। एक-एक वाक्य अर्थगाम्भीर्य संजोये रहता है। उदाहरणार्थ

वह तमस्तोम -

वह विकट गुफा का अन्तराल -

वह राहु-कवल -

वह अशुभ-ग्रहों का पाप चक्र -

मानी क्या तुमने कभी हार? [२]

यहाँ पर कवि निराला जी के दुखपूर्ण जीवन का अनुभव सांकेतिक शब्दों में ही करा देता है। वाक्य के अन्य अवयव क्रियाएं आदि रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। तीव्र दुखानुभूति को वस्तुतः एकाध शब्दों में ही लोग व्यक्त कर जाते हैं-

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १३३

२. नागार्जुन रत्नावली : नागार्जुन, पृ०सं० २१३

पूरा वाक्य कहना संभव नहीं हो पाता। यहां भी एक-एक शब्द पूरी स्थिति को बिम्बायित करने में सक्षम है।

नागार्जुन के शब्द विधान का मूल्यांकन करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है- ''हिन्दी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह आसानी से समझते और बोलते हैं- उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहां है।''[1]

नागार्जुन की काव्य भाषा के सम्बन्ध में शिवकुमार मिश्र का यह वक्तव्य भी अत्यन्त प्रांसगिक और समीचीन प्रतीत होता है-- ''नागार्जुन की भाषा बहुरंगी भाषा है- जन साधारण की भाषा भी और पंडितों तथा काव्य रसिकों की भाषा भी। संस्कृत की क्लासिकल काव्य शैली में लिखी कविताओं की समास गर्भित उदात्त भाषा को छोड़ दिया जाये, तो सामान्यतः उन्होंने सरल और सादी भाषा का प्रयोग ही किया है। संस्कृत काव्य भाषा के संस्कार सब कहीं मिलेगे, परन्तु सादगी और सरलता भी इतनी कि बात सीधे मन पर उतर जाये। परन्तु बावजूद इसके नागार्जुन की भाषा अद्भुत व्यंजनागर्भी है अन्यथा वे व्यंगों के इतने बड़े शिल्पी केसे होते। व्यंगों के ही नहीं, वे भाषा के भी शिल्पी है। संस्कृत के अपने पाण्डित्य का लाभ उठाते हुये उन्होंने सैकड़ों नये शब्द अपनी कविताओं में गढ़े है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से उन्होंने शब्दों का चुनाव कर अपने शब्द-भंडार को व्यापक बनाया है। उनके वाक्य विन्यास पर संस्कृत कविता की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। गो-जन-सामान्य की अपनी तर्जे-बयानी को भी उन्होंने खूब पकड़ा है। एक वाक्य में कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि नागार्जुन के व्यक्तित्व और उनके काव्य की भांति उनकी भाषा भी बहुरंगी भाषा है।''[२]

---

१. *नई कविता और अस्तित्ववाद : डा० रामविलास शर्मा, पृ०सं० १४०*

२. *भस्मांकुर : नागार्जुन, पृ०सं० २५ से २६*

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के काव्य में बिंब विधान

(अ) बिंब का अर्थ एवं स्वरूप :-

बिंब का आविर्भाव कल्पना से होता है और बिंबों से प्रतीक का। बिंब विधान कला का क्रिया पक्ष है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिंब उत्थित होते हैं और जब पुनः-पुनः प्रयोग के कारण किसी बिम्ब का निश्चित अर्थ-निर्धारण हो जाता है तब प्रतीक का निर्माण होता है। अतः तात्विक दृष्टि से बिम्ब कल्पना और प्रतीक का मध्यस्थ है।

साधारण अर्थ में काव्यगत बिम्ब शब्दों द्वारा निर्मित चित्र है। शब्दों द्वारा चित्र खड़ा करना बिम्ब की मूलभूत विशेषता है। बिम्ब यथातथ्य और सर्वांगीर्ण होते हैं तथा एक अविछिन्न वस्तु व्यापार का प्रतिपादन करते है। बिम्ब अनेकार्थ व्यंजक होते हैं तथा काव्य के जीवन्त तत्व माने जाते हैं। अतः उत्कृष्ट कलाकृति योजित बिम्बों के द्वारा अपने क्षेत्र में आयी हुयी वस्तुओं को गेटे के कथनानुसार कंक्रीट युनिवर्सल बना देती हैं।[1]

बिम्ब का काव्य में बहुत महत्व है। बिम्ब कवि के अरूप संवेदन को तथा अमूर्त अनुभूति को रूप चित्रों में प्रस्तुत करता है। जिस कविता में जितने अधि क बिम्ब होंगे, उसकी प्रेषणीयता उतनी ही मनोहारी होगी। बिम्ब योजना के द्वारा कवि विचारों और वस्तुओं के कल्पित रूप को इन्द्रिय ग्राह्य बनाने की कोशिश करता है। बिम्ब शब्द का प्रयोग अंग्रजी के इमेज के पर्याय के रूप में होता है। बिम्ब एक शब्द चित्र है। बिम्ब विधान को कलासृजन के माध्यम के साथ-साथ आवश्यक उपकरण भी माना गया है -

इमेज शब्द का शाब्दिक अर्थ मूर्त अथवा आकृति रूप से लिया जाता

---

१. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व : डॉ० कुमार विमल, पृ० २०४

है। बिम्ब वस्तुतः मानसिक होता है। इस प्रकार कल्पना की ऐसी मानसिक प्रक्रिया जिसकी सहायता से कवि मूर्त या आकृतियों की सृष्टि करता है बिम्ब कहलाती हैं।[1]

रचना प्रक्रिया में इसका स्थान रचनाकार के मस्तिष्क तथा पाठक के मस्तिष्क आदि दो जगहों पर होता है। रचनाकार यथार्थ जगत को जैसा देखता है और उस यथार्थ जगत के संदर्भ में अपनी कल्पना को मिश्रित करके एक आकृति अपने मस्तिष्क में खींचता है, उसे वह कविता के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। यह आकृति ही बिम्ब है इस प्रकार साहित्य को बिम्ब का अभिव्यक्त वाह्य रूप (माध्यम) कहा जा सकता है। ड्रायइन की मान्यता है कि कविता की महानता और कविता का जीवन उसके बिम्ब प्रस्तुत करने की शक्ति में निहित है अर्थात् जो कविता जितनी शक्ति के साथ बिम्ब को सामने लाकर रखती है वह कविता उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है।

बिम्ब की दूसरी स्थिति पाठक के मस्तिष्क में होती है। पाठक किसी साहित्यिक रचना में क्रमिक रूप से निरन्तर एक साथ ऐसी अनेक स्थितियों को पाता है, जो सारी स्थितियॉं एक महान आंकृति (खाका) खींचना चाहती है। सीधे उस आकृति को नहीं रखती हैं। इन स्थितियों के माध्यम से पाठक के मन में जो विशेष प्रकार की आकृति बन रही है वह आकृति ही बिम्ब कहलाती है। इसलिये बिम्ब को एक मानसिक प्रक्रिया माना जाता है, जो प्रत्यक्ष बोध पर आधारित होती है।

बिम्ब का कार्य भी चिन्ह की तरह होता है।[2] जिस प्रकार चिन्ह स्वयं का बोधक होता है, उसी प्रकार बिम्ब भी स्वयं का बोधक होता है परन्तु अन्तर केवल इतना है कि बिम्ब का बोध परिस्थिति के माध्यम से होता है जबकि चिन्ह सीधे सामने

---

१. डॉ० सुधा श्रीवास्तव : महादेवी के काव्य में बिम्ब-विधान, पृ० १४

२. डॉ० वीरेन्द्र सिंह : प्रतीक दर्शन, पृ० २१

आ जाता है।

बिम्ब एक निरन्तर चलने वाली श्रृंखला में आते हैं। पूरी रचना कवि के मस्तिष्क में विद्यमान पूर्ण बिम्ब को व्यक्त करती है। रचनाकार इस पूर्ण बिम्ब को रखने के लिये अनेक उपबिम्ब गढ़ता है और इन उपबिम्बों को व्यक्त करने के लिये फिर उपबिम्बों को इस प्रकार एक पूर्ण बिम्ब अनेक उपबिम्बों तथा उपबिम्बों का परिणाम होता है। लेविस की मान्यता है। कि बिम्ब एक ऐसा चित्र है, जो कि शब्दों अर्थात् भाषा के माध्यम से खींचा जाता है तथा एक साहित्यिक कृति स्वयं में एक बिम्ब होती है, जो अनेक बिम्बों की बनी हुयी होती है।[१]

बिम्ब कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि वह भाव संप्रेषण और सौन्दर्य विधान का एक प्रभावी माध्यम है। बिम्ब कविता का पर्याय नहीं है किन्तु काव्य के सन्दर्भ में उसकी सशक्त भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। सामान्यतः बिम्ब शब्द चित्र को माना जाता है पर काव्य में बिम्ब का अर्थ कुछ अधिक व्यापक होता है। एक काव्यात्मक बिम्ब का रूप, रस, स्पर्श, गंध आदि ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य संस्पर्श होना चाहिये और उसमें भावों को उद्भूत तथा उद्वेलित करने की शक्ति भी होनी चाहिए। इन गुणों के अभाव में हम किसी शब्द चित्र मात्र को काव्यात्मक बिम्ब की संज्ञा नहीं दे सकते।[२] इस प्रकार काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। कवि अपनी अनुभूति को शब्दों के सहारे चित्रात्मक बनाता है। इसका आधार बाह्य जगत की रंग ध्वनियां हैं। ये ही रंग ध्वनियां कवि की संवेदनाओं को उद्वेलित करती हैं और साथ ही कला सृजन के लिये प्रेरित करती है। लेकिन एक काव्यात्मक बिम्ब के लिये उसका

---

१. *C. Day Luzxis, Paltic Image, P. 17*

२. *प्रगतिशील हिन्दी कविता : डॉ० दुर्गा प्रसाद, पृ० २५५*

ऐन्द्रिय गुणों से विलसित होना ही आवश्यक है। ऐसे बिम्ब अधिक स्पष्ट अनुभवगम्य एवं सजीव होते हैं। काव्य बिम्ब को संवेगात्मक होना भी जरूरी है। इसके अभाव में बिम्ब निर्जीव शब्द चित्र मात्र रह जाता है। बिम्ब की स्थिति पर विचार करते समय यह कहना पड़ेगा कि काव्य में बिम्ब किसी भी अंश में रह सकता है। सम्पूर्ण कविता भी बिम्ब हो सकती है। कभी एक पद, एक वाक्यांश और कभी एक वाक्य में भी बिम्ब पाया जा सकता है।

आधुनिक विचारों के क्षेत्र में बिम्ब शब्द बहुत व्यापक अर्थ रखता है, इसका अध्ययन समान रूप से साहित्य और मनोविज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में होता है। मनोविज्ञान में इसका अर्थ होता है।, एक स्मृति बोध अतीत की एक संवेदनात्मक अनुभूति अथवा अवचेतन के भीतर से मानसिक धरातल पर कल्पना शक्ति का एक विशिष्ट प्रकाशन।[9] काव्यात्मक बिम्ब का आधार भी वह मानसिक बिम्ब ही होता है पर दोनों के दृष्टिकोण में एक अन्तर है। मनोविज्ञान उस बिम्ब का अध्ययन करता है जो मनोगत होता है। जबकि साहित्य में हम उस बिम्ब की चर्चा करते हैं जो कवि के मन से निकल कर भाषा के कलात्मक ढ़ांचे में एक निश्चित रूप गृहण कर चुका होता है।

मनुष्य का सम्पूर्ण भाव व्यापार और चिन्तन क्रिया किसी न किसी रूप में बिम्ब से अनिवार्यतः सम्बद्ध होती है। हमारे पास यथार्थ को जानने का एकमात्र सुलभ साधन ऐन्द्रिय संवेदन है। मन के स्तर पर प्रत्येक बाह्य संवेदन दृश्य अथवा अनुभवगम्य बिम्ब के रूप में परिवर्तित हो जाता है। एक विचार से दूसरे विचार तक पहुँचने में बिम्ब सेतु का काम करते हैं। कवि जब मानव मन के सहज अकृत्रिम गतिशील तथा जटिल संवेगों का भाषा के जीवन्त अध्ययन के द्वारा शब्दिक पुनर्निमाण

---

9. *The Phychology of G.G. Jung & Jolande Jocabi, P. 75*

करता है तो उसे समीक्षा की आधुनिक पदावली में बिम्ब विधान कहते हैं। इस प्रक्रिया के पीछे ज्ञात या अज्ञात रूप से एक सतत् अन्वेषणशील रचनातुर मानव मन की गहरी पीड़ा और आत्मशोध की भावना होती है। इस रचनात्मक प्रक्रिया से छनकर आने के कारण कविता में चित्रित एक फूल या पक्षी केवल फूल या पक्षी न रहकर किसी अधिक जटिल और दुर्बोध मानवीय स्थिति के द्योतक बन जाते हैं।

बिम्ब विधान बहुत अंशों में कलाकार की सहजानुभूति की अभिव्यक्ति की सफलता को प्रमाणित करता है और कलाकार की सौन्दर्य चेतना को भी द्योतित करता है। वस्तुतः बिम्ब विधान कला का वह मूर्त पक्ष है जिससे कलाकार का भावानयन (एक्ट्रेक्शन) से श्लिष्ट सौन्दर्यानुभूति को वस्तु सत्य का संस्पर्श या तद्गत सम्पृक्त आधार के साथ सादृश्याभास (सेम्बेलेन्स) मिल जाता है।[1] शायद इसीलिये पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्रियों तथा काव्याचार्यों ने बिम्ब विधान को कवि की अभिव्यंजना का अनिवार्य एवं निर्विकल्पिक प्रसाधन माना है।

बिम्ब वस्तु जगत के संसर्ग से मन में उत्पन्न अरूप भाव संवेदनों को रूप प्रदान करते हैं इसके अतिरिक्त संश्लिष्ट एवं समृद्ध बिम्ब अभिव्यंजना को रूप सज्जा और अलंकरण भी प्रदान करते है। काव्य में बिम्ब की यही उपयोगिता है। कला का रसिक किसी पठित कविता को भूल जाता है परन्तु उसके कुल चित्र स्मृति पर अंकित हो जाते हैं क्योंकि बिम्ब विस्मृत कलाकृति का शेषांश अथवा स्मृत अंश होता है। मूर्तिमान होने के कारण वह स्मृति में सुरक्षित रह जाता है जबकि कलाकृति के भाव शैली या शिल्प पद्धति अमूर्त और भावात्मक होने के कारण विस्तृत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बिम्ब योजना द्वारा कवि विचारों और वस्तुओं के कल्पित रूप को इन्द्रिय ग्राह्य बनाने की कोशिश करता है। इस प्रकार काव्यगत भाव तथा उसके मूल

---

१. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व – डॉ० कुमार विमल, पृ० २०१

अर्थ को स्पष्ट मूर्त तथा तीव्रतम रूप में संप्रेषित करने में बिम्ब एक शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार काव्य में बिम्ब का तात्पर्य उस चित्र से है, जिसे कवि अपनी कविता द्वारा पाठकों के हृदय में उपस्थित कर देता है। बिम्ब अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का हिन्दी रूपान्तर है। कवि की अनुभूति पाठक के हृदय से तादात्म तभी स्थापित कर सकती है, जब वह सफल बिम्ब प्रस्तुत करे।' साहित्य के क्षेत्र में साहित्यकार बहुत से विषयों का वर्णन इन बिम्बों के माध्यम से ही करता है।[१] बिम्ब को न केवल सज्जा का उपकरण मात्र बल्कि मन की (सहजवृत्ति) भाषा का सार भी[२] कहा गया है। 'यह एक ऐसा ऐन्द्रिय-शब्द चित्र है जो कुछ अंशों तक अलंकार अथवा लाक्षणिक होता है - जिसके सन्दर्भ में मानवीय संवेदनाएँ निहित रहती हैं तथा जो पाठक के मन में विशिष्ट रागात्मक भाव उदीप्त करता है।[३] अत्यंत सामान्य एवं सरलतम शब्दों में बिम्ब को शब्द-चित्र भी कह दिया गया है,[४] यों इस शब्द-चित्र की एक अनिवार्य विशेषता ऐन्द्रियता है। बिम्ब ऐसा शब्द है, जो इन्द्रियानुभूति का बोध कराता है।[५] एक अन्य विद्वान का भी कहना है कि यद्यपि बिम्ब सदैव ऐन्द्रिय ही होता है, तो भी उसके वास्तविक स्वरूप का पता उसके प्रभावोत्पादक होने में ही है।[६] यह मत भी व्यक्त किया गया है कि बिम्ब को मात्र अलंकार या साज-सज्जा के रूप में नहीं समझना चाहिए। यह सम्पूर्ण काव्य का एक आंगिक अवयव होता है।[७]

---

१. *डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त : साहित्य की शैली, पृ० ३१३*

२. *Speculations : T.E. Hulme, P. 135*

3. *Poetic Image : C. Day Lenris. P. 22*

४. *Glid. P. 18*

5. *The Poetic Pattern : Rabin Sbetion, P. 90*

6. *The Art of Drama : Ronald Peacock*

7. *Elements of Poetry : J.R. Krenger, P. 121*

१. बिम्ब की परिभाषा :-

"बिम्ब कल्पना और स्मृति की वह क्रिया है, जो शब्दों द्वारा रूप (चित्र) प्रस्तुत करके पाठक के मन को प्रभावित करती है। बिंब-विधायक कल्पना पुनरुत्पादक कल्पना होती है। कवि-अतीत की घटनाओं, स्थितियों और अनुभूत पदार्थों को उनके रंग ध्वनि, गति, आकार-प्रकार, के साथ शब्द-चित्रों के रूप में उपस्थित करता है।[१] काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।"[२]

बिम्ब को इन्द्रिय ग्राह्य बनाने की चेष्टा के सम्बंध में डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम का मत है "वे बिम्ब जो हमारी कल्पना को हृदय में उपस्थित करते है,साधारण बिम्ब होते है, जो बिम्ब दृश्य उपस्थित करने के साथ हमारी अन्य इन्द्रियों (जिह्वा, घ्राणेन्द्रियों, स्पर्श, चेतना और नाद चेतना) को भी प्रभावित करते हैं, वे काव्य दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट होते हैं।"[३] "काव्य की दृष्टि से बिम्ब वस्तुतः बिम्ब या चित्र नहीं होता, अपितु एक ऐसा शाब्दिक विवरण होता है, जो हमारे मानस बिम्बों को उदित करता है।"[४] सेसिल डेलेबिस का कहना है, "बिम्ब ऐसा ऐन्द्रिय शब्द-चित्र है, जिसमें अलंकारिकता और भावावेग का सन्दर्भ होता है और जो पाठकों में भावोत्तेजना पैदा करता है।[५]"

बी०एन० झा - "बिम्ब सरलतम रूप में शैली के माध्यम से निर्मित एक चित्र है।[६]"

---

१. *डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम लेख - प्रतीक और बिम्ब का मनोविश्लेषण, साहित्य संदेश जुलाई-अगस्त, १९६७, पृ० ७*
२. *डॉ० नगेन्द्र : काव्य बिम्ब, पृ० ५*
३. *साहित्य संदेश - जुलाई-अगस्त, १९६७, पृ० ८*
४. *गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्य की शैली, पृ० ३२५*
५. *साहित्य संदेश - जुलाई-अगस्त १९६७, पृ० ६,७*
६. *Modern Education Psychology, P. ३२०*

सी०डी०लिवीस –"बिम्ब शब्दों के माध्यम से निर्मित एक चित्र है, जो ऐन्द्रिय गुणों से सम्पृक्त होता है।"[1]

"बिम्ब एक शब्द-चित्र है, जो भाव या संवेग में अनुप्राणित होता है।" (आइबिड)

रॉबिन स्किल्टन – ऐन्द्रियनुकूल भाव जागृत करने वाला एक शब्द है।[2]

टी०आर०करियूजर –"बिम्ब काव्य का आंगिक अवयव है जो अलंकार या साज-सज्जा से नितान्त भिन्न होता है।"[3]

एजरा पाउण्ड – "बिम्ब का तात्पर्य चित्रात्मक अभिव्यक्ति नहीं वरन् इसका सम्बंध विचारों के एकीकरण या समानुकूल मानसिक एवं भावात्मक मिश्रण से है।"[4]

बिम्ब को परिभाषित करते हुए डॉ० केदारनाथ सिंह ने लिखा है – "बिम्ब वह शब्द-चित्र है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।"[5]

इस परिभाषा में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं – पहली यह कि बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र है दूसरी यह कि उसका निर्माण कल्पना के द्वारा होता है और अन्तिम यह कि उसके निर्माण के लिये एन्द्रिय अनुभव के आधार का होना अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात बिना गाढ़ वस्तुगत परिचय के केवल अर्न्तदृष्टि अथवा प्रतिभावान के स्तर पर बिम्ब का निर्माण नहीं हो सकता।

कोलरिज के कल्पना सिद्धान्त पर विचार करते हुए आई०ए० रिचर्डस

---

1. Poetic Image, P. १८

२. The Poetic Pattern , P. ६०

३. Elements of Poetry, P. १२१

४. Parammes and Division New York, १६१८

५. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास – डॉ० केदार नाथ सिंह, पृ० २३

ने बिम्ब का जो स्वरूप स्थिर किया है, वह अधिक विचारणीय है :

बिम्ब एक दृश्यचित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बिम्ब की निम्नलिखत विशेषताओ को रेखांकित किया जा सकता है -

१. बिम्ब एक शब्द चित्र होता है।

२. उसका रूप-रस-स्पर्श-गन्ध आदि गुणों का अनिवार्य संस्पर्श होता है।

३. उसमें भावों को उद्‌बुद्ध करने की शक्ति होती है।

४. बिम्ब का निर्माण कल्पना के सहयोग से होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विश्व मानस पर एक चित्रात्मक अनुभूति है जो ऐन्द्रिय गुणों एवं भाव से अनुप्राणित होता है। परन्तु एक कलात्मक दृश्य चित्र बिम्ब नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह कलाकार के मस्तिष्क की रेखाओं द्वारा निर्मित होता है। साहित्य सृष्टा शब्दों के माध्यम से बिम्बांकन करता है, जो पाठक के चेतन मन में अचेतन स्तर पर सोई हुई संवेदनाओं को मूर्तित करता है। बिम्ब का सम्बन्ध इन्द्रिय-जन्य होता है, दूसरी ओर चित्र एक समवेत अंकन मात्र ही रह जाता है।

३. बिम्ब और प्रतीक में अन्तर :-

बिम्ब का सबसे निकटवर्ती शब्द प्रतीक है। प्रायः विचारकों ने दोनों के पारस्परिक स्वरूप को समझने में एक बहुत बड़े तथ्य की उपेक्षा की है कि वस्तुतः दोनों में उतना बड़ा अन्तर नहीं है, जितना समझा जाता है। प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है और उस मौलिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक बिम्ब अपने प्रभाव में चाहे जितना ऐन्द्रिय और संवेगात्मक हो पर अन्ततः उसकी परिणति किसी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होती है। प्रतीकात्मक ध्वन्यात्मकता से हीन बिम्ब काव्य के शोभा धर्म को क्षीण करने वाला होता है। प्रतीक तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम कोटि परंपरागत प्रतीकों की है, जिनका प्रयोग प्रत्येक युग का कवि अपनी आवश्यकताओं के अनुसार करता है। द्वितीय कोटि वैयक्तिक प्रतीकों की है जिनकी रचना कवि के विशिष्ट मानसिक गठन संस्कार और अनुभूति का एकान्तिकता पर निर्भर करती है। तृतीय कोटि प्राकृतिक प्रतीकों की है जिनका प्रयोग प्रत्येक युग का कवि एक नये दृष्टिकोण से करता है। सभी प्रकार के प्रतीक विशेषोन्मुख होते है वे किसी अमूर्त भाव अथवा उपमा अथवा सादृश्य बनकर नहीं आते। तात्पर्य यह है कि प्रतीक स्वयं गौण होता है। मुख्यतः उस दिशा की होती है जिधर वह संकेत करता है। यही उसका बिम्ब से सबसे मौलिक अन्तर होता है। बिम्ब उठी हुयी उंगली की तरह किसी एक ही दिशा में सदैव इंगित नहीं करता है।वह एक साथ कई स्तरों पर और कई दिशाओं में इंगित करता है। परन्तु प्रतीक की तरह उसको निज की सत्ता उस संकेत में विलीन नहीं हो जाती बल्कि अर्थ की प्रतिध्वनि समाप्त हो जाने के बाद भी वह बहुत देर तक हमें अभिभूत किये रहता है। शास्त्रीय पदावली में कहें तो प्रतीक व्यंग्यात्मक होता है और बिम्ब लाक्षणिक बिम्ब प्रकृति से ही संश्लिष्ट होता है। अतः उसका ग्रहण भी प्रतीक के विपरीत संश्लिष्ट रूप में होता है। इस दृष्टि से बिम्ब प्रतीक की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द और अनेकार्थ व्यंजक होता

है। एक प्रसिद्ध अंग्रेज समीक्षक के अनुसार प्रतीक में अंकों की सी निश्चितता होती है और जैसे (१) कहने से केवल एक संख्या का बोध होता है दो अथवा पाँच का नहीं वैसे ही एक प्रतीक भी अनिवार्य रूप से केवल उसी भाव अथवा विचार का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके लिये वह लाया गया होता है।[१] अतः दोनों की रचना प्रक्रिया में भी अन्तर होता है। प्रतीक अपेक्षाकृत चेतन मन की सृष्टि होता है या अधिक से अधिक कह सकते हैं कि वह उपचेतन की ऊपरी स्तर की सृष्टि हो सकता है। बिम्ब विधान का स्त्रोत मुख्यतः उपचेतन मन है जो व्यापकता की दृष्टि से शेष दोनों स्तरों से अधिक महत्वपूर्ण होता है।

प्रतीक का एक पक्ष बराबर परंपराजीवी और समाज स्वीकृति सापेक्ष होता है। कोई भी नया प्रतीक अपने अभीसिप्त अर्थ की प्राप्ति के लिये एक ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह निरन्तर प्रयुक्त होते ही नियत अर्थ और निश्चित आकार गृहण करता है। इसके विपरीत बिम्ब प्रायः आकस्मिक होते हैं। उनका जीवन प्रवाह जीवन नहीं होता। वे समय के सबसे छोटे और अत्यन्त निजी अंश को बांधने का प्रयास करते हैं।

तात्पर्य यह है कि बिम्ब विधान बहुत से विश्रृंखल क्षणों का एक समुच्चय होता है। उसका आधार जीवन और जगत की अनेकता में है। इसके विपरीत प्रतीक किसी सूक्ष्म और गहरी एकता का बोधक होता है। इसीलिये प्रतीकों की योजना में जाने अनजाने तार्किक संगति अवश्य रहती है परन्तु बिम्बविधान में तार्किक संगति का पाया जाना लगभग असंभव है और यदि पायी भी जाती है तो वह उसकी तीव्रता को कम करती है। बढ़ाती नहीं।

प्रतीक मूर्त और अमूर्त दोनों ही हो सकता है।[२] इसके विपरीत बिम्व

---

१. *The Poetic Image : C.Dry Lewis P. ४०*

२. *काव्य में अभिव्यंजनावाद - लक्ष्मी नारायण सुधांशु, पृ० १२४*

के लिये ज्ञानेन्द्रिय के किसी भी स्तर पर मूर्त होना आवश्यक है। यह मूर्तता केवल दृष्टि विषयक ही नहीं होती। नाद, घ्राण, और स्वाद परक भी हो सकती है। प्रतीक किसी वस्तु का चित्रांकन नहीं करता केवल संकेत द्वारा उसकी किसी विशेषता को ध्वनित करता है। इसीलिये प्रतीक का ग्रहण संदर्भ से अलग और एकान्त रूप में संभव हो सकता है पर बिम्ब की प्रेषणीयता उसके पूरे संदर्भ के साथ होती है।

नागार्जुन ने भारत के पूँजीवादी वर्ग का एक मार्मिक बिम्ब अंकित किया है:

जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं, व्यापारी हैं,
अन्दर-अन्दर बिकट कसाई, बाहर खद्दरधारी हैं।
सब घुस आए, भरा पड़ा है, भारत-माता का मंदिर,
एक बार जो फिसले अगुआ फिसल रहे हैं, फिर फिर फिर।[1]

यहाँ पर शोषित वर्ग अभावों की चक्की में पिस रहा है, कृषक अनेक समस्याओं से जूझ रहा है, श्रमिक भरपेट भोजन नहीं जुटा पा रहा है, किन्तु उच्च वर्ग भोग विलास में पानी की तरह धन बहा रहा है। लोग मुखौटा लगाये हुये दोहरी जिन्दगी जी रहे हैं। बाहर से खद्दरधारी हैं पर भीतर से कसाई हैं।

चमगादड़ की वृत्ति न लेकिन मैंने सीखी
दृढ़ निष्ठा अपना न सका मैं श्वान सरीखी
वर्ना मैं भी तो अब तक लक्षेश्वर होता
मन माफिक खाता-पीता, सुखपूर्वक सोता ......[2]

चमगादड़ और श्वान आज की अंधी व्यवस्था के चाटुकार कवियों और लेखकों के प्रतीक हैं इन प्रतीकों के माध्यम से नागार्जुन ने आज के चापलूस सुविधा

---

१. *हजार-हजार बाहों वाली, नागार्जुन, पृ० ४६*
२. *हजार हजार बाहों वाली, नागार्जुन, पृ० ७५*

भोगी साहित्यकारों पर गहरा व्यंग्य किया है।

ऊपर बिम्ब और प्रतीक में जो अन्तर किया गया है उसका यह अर्थ नहीं है कि दोनों सर्वथा भिन्न और विरुद्ध हैं। विकास की दृष्टि से दोनों में पूर्वापर ऐतिहासिक सम्बन्ध है। एक विशेष बिम्ब किसी एक ही कवि की अनेक रचनाओं में बार-बार दोहराया जाकर प्रायः प्रतीक बन ज़ाता है। महादेवी वर्मा की आरंभिक रचनाओं में दीप, फूल, झंझा, समीर, आकाश, निर्झर, आदि के जो चित्र आये हैं वे निश्चय ही बिम्ब की स्थिति के अधिक निकट हैं पर धीरे-धीरे उनके विकसित प्रयोगों में इन बिम्बों की इतनी आवृत्ति हुयी है कि उनके अर्थ में एक प्रतीकात्मक निश्चिन्तता आ गयी है वे प्रतीक हो गये हैं हम कह सकते हैं कि बिम्ब से प्रतीक तक का यह सफर विकास की कलात्मक प्रौढ़ता और स्थिरता का सूचक है। होता यह है कि जब एक ही बिम्ब बार-बार कई प्रसंगों में दोहराया जाता है तो वह अतिपरिचय के कारण अपनी दृढ़ता खोकर केवल सूचनात्मक संकेत या चिन्ह रह जाता है। यह कवि की प्रौढ़ता और सीमा दोनों का सूचक है। समर्थ कवि इस परिणाम से बचने के लिये नये विषयों और नूतन संदर्भों की खोज करते हैं। एक नया संदर्भ किसी सुपरिचित बिम्ब को बिल्कुल नयी अर्थवत्ता और ध्वनि प्रदान करता है। निस्सन्देह प्रत्येक बिम्ब के भीतर एक प्रतीक अन्तर्निहित होता है और व्यापक प्रयोगों में जैसे-जैसे वह अमूर्तता की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती जाती है। प्रतीकात्मक शून्य बिम्ब अधिक से अधिक कविता के बाह्य सौन्दर्य की ही वृद्धि कर सकता है। वह उसकी अर्थ संहति को बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकता।[1]

३. बिम्बों का वर्गीकरण :-

अनेक दृष्टियों से बिम्बों के वर्गीकरण के प्रयास किये गये हैं। कहीं कार्य की दृष्टि से, तो कहीं विषय वस्तु की दृष्टि से, कहीं रूप के आधार पर, तो कहीं

---

१. काव्य में अभिव्यंजनावाद, श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु, पृ० १२०

इन्द्रियों के आधार पर। विषय-वस्तु की दृष्टि से बिम्ब अनन्त हैं और उनकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। भाव या विचार को केन्द्र में रखकर विषय-वस्तु की दृष्टि से बिम्बों को भावनात्मक, बौद्धिक और मिश्रित कहा गया है।[1] कार्य की दृष्टि से बिम्बों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है - अलंकरणात्मक (Decorative) और क्रियात्मक (Functional)।[2] अलंकरणात्मक बिम्ब वे कहे गये हैं जो मूल विषय को अलंकृत करते हैं। क्रियात्मक - बिम्ब वे माने गये हैं जो मूल विषय के अविच्छिन्न अंग बने रहते हैं। कुछ वर्गीकरण ऐसे भी हैं; जिनका कोई स्पष्ट एवं पुष्ट आधार प्रतीत नहीं है।

हेनरी वेल्स ने बिम्ब के सात प्रकार माने हैं [3] - सज्जानात्मक अथवा अलंकरण प्रधान बिम्ब, उदात्त बिम्ब, संवेदनात्मक बिम्ब, वस्तु प्रधान बिम्ब, धनात्मक बिम्ब, विस्तार प्रधान बिम्ब,[4] आदि। केदार नाथ सिंह ने जिन वर्गों में बिम्ब को वर्गीकृत किया है वे वेल्सकृत वर्गीकरण के ही रूपान्तर हैं। इस प्रकार का वर्गीकरण रूप अथवा अभिव्यक्ति गठन पर अधिक निर्भर और बिम्ब की कतिपय आन्तरिक और अनिवार्य विशेषताओं को ध्यान में रख कर नहीं किया गया। करिंगर ने अवश्य इस आधार को गृहण कर वर्गीकरण के प्रयास किए हैं। उन्होंने बिम्ब को घ्राणपरक, स्वादपरक, ध्वनिपरक, और चाक्षुष आदि कहा है।[5]

बिम्ब के वर्गीकरण सम्बन्धी ये धारणायें एवं मत अधिकतर विद्वान - आलोचकों की बिम्ब सम्बन्धी निजी दृष्टियों से प्रसूत है। उपर्युक्त वर्गीकरणों में से

---

१. *Language and Reality. M. Hope Parke, P. ९३*

२. *The Poetic Pattern : Rabin Skelton, P. ६३*

३. *Theory of Literature, at P. २०७*

४. *कल्पना और छायावाद : केदारनाथ सिंह, पृ० ८७*

५. *Elements of Poetry : J.R. Krenger, P. ११६*

किसी एक को उपयुक्त अथवा आदर्श वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता। बिम्बों का वर्गीकरण करते हुये बिम्ब की सभी अनिवार्य विशेषताएं हमारे दृष्टिपथ में रहनी चाहिए। बिम्ब की हमने तीन विशेषताएं मानी हैं - चित्रात्मकता, ऐन्द्रियता और साम्य-सौन्दर्य। ऐसे सभी वर्गीकरण, जिनमें ऐन्द्रियता को प्रमुख आधार पर नहीं रखा गया है, मूलतः दोषपूर्ण माने जायेंगे। ऐन्द्रियता के साथ-साथ, दृश्यात्मकता तो बिम्ब में अनिवार्य ही है। यह बिम्ब की मूल विशेषता है। बिम्ब में प्रत्यक्षीकरण अथवा दृश्यात्मकता तो बिम्ब में अनिवार्य ही है। यह बिम्ब चाक्षुष इन्द्रिय से विशेष रूप से सम्बद्ध है किन्तु यहाँ 'प्रत्यक्ष 'से अभिप्राय केवल चाक्षुष ज्ञान से नहीं है, दृश्य को केवल नेत्रों का विषय नहीं माना जा सकता। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'प्रत्यक्ष' और 'दृश्य' शब्दों को चाक्षुष ज्ञान के सीमित एवं संकुचित अर्थ में ही स्वीकार किया है, इसीलिये वे कहते हैं - "बिम्ब का सम्बन्ध तो केवल प्रत्यक्षीकरण, या रूप के बोध से है - स्वाद, गंध और ध्वनि को बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।[1]" स्पष्ट है कि स्वाद, गंध और ध्वनि को बिम्ब की परिधि से बहिष्कृत करने का डॉ० गुप्त का तर्क यह है कि बिम्ब का सम्बन्ध केवल प्रत्यक्षीकरण से, रूप के बोध से है। बिम्ब के सम्बन्ध में एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि बिम्ब की दृश्यात्मकता अथवा प्रत्यक्षीकरण का सम्बन्ध केवल चाक्षुष ज्ञान से है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बहुत पहले 'प्रत्यक्ष' और 'दृश्य' शब्दों का ऐसा आशय लिये जाने का निराकरण किया था - 'प्रत्यक्ष' से हमारा अभिप्राय केवल चाक्षुष ज्ञान से नहीं है। रूप, शब्द के भीतर शब्द, गंध, रस और स्पर्श भी समझ लेना चाहिये।[2] एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं 'दृश्य' शब्द के अन्तर्गत केवल नेत्रों के विषय का ही नहीं, अन्य ज्ञानेन्द्रियों के विषयों (जैसे-शब्द, गन्ध, रस) का भी ग्रहण समझना चाहिये।[3] बिम्ब केवल चाक्षुष-प्रत्यक्ष नहीं होता

---

१. साहित्य विज्ञान : डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० ३२२

२. चिन्तामणि, भाग १, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४४

३. चिन्तामणि भाग २, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १

है अन्य इन्द्रियों के रूप में भी इसका प्रत्यक्षीकरण होता है। यह श्रृव्य स्पर्शिक और घ्राण भी हो सकता है। पर बिम्ब केवल इन्द्रियों के स्तर पर ही प्रत्यक्ष नहीं होता, यह साथ ही साथ मानस-प्रत्यक्ष भी होता है। इसलिये बिम्ब को मन का विशुद्ध सृजन भी कह दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से दो बातों पर् प्रमुख रूप से प्रकाश पड़ता है। एक बिम्ब में 'दृश्य' एवं 'प्रत्यक्ष' का बड़ा व्यापाक अर्थ है। इसके अन्तर्गत चाक्षुष इन्द्रिय ही नहीं, अन्य इन्द्रियों से संबद्य बिम्ब भी आ जाते हैं। दूसरे बिम्ब मानस प्रत्यक्ष भी होता है। हमारे राग बोधों को छूने और उन्हें झंकृत करने की इसमें अपार शक्ति है। अतः हम बिम्ब का सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण वर्ग - "दृश्य-बिम्ब" मानते हैं, जिसके अन्तर्गत चाक्षुष इन्द्रियों के अतिरिक्त अन्य सभी इन्द्रियों से संबद्ध और संवेदित बिम्ब भी आ जाते हैं। ये बिम्ब जब मानस-प्रत्यक्ष होकर हमारे रागबोधों को स्पन्दित करने लगते हैं तो 'भाव-बिम्ब' की श्रेणी में आ जाते हैं और जब ये 'वस्तु' को स्फूर्त करते हैं (यानि वस्तु के बिम्ब रूप में संक्रान्त होने की प्रक्रिया) तो 'वस्तु-बिम्ब' की संज्ञा से अभिहित किए जा सकते हैं। वस्तु का चित्रण करते हुए भी उसे बिम्ब रूप में संक्रान्त (उसे दृश्यात्मक एवं साम्य-सौन्दर्य से संयुक्त करना) कठिन कार्य है। प्रायः 'वस्तु-बिम्ब' के वास्तविक स्वरूप को समझा नहीं गया है। इसीलिये वस्तु के परिगणन को वस्तु-बिम्ब समझने की भूल हुई है। आधुनिक हिन्दी कविता के बिम्ब-विधान का सोदाहरण विवेचन करते हुये हमने ऐसे भ्रान्ति जन्य उदाहरणों की ओर संकेत किया है।

अभिव्यक्ति के गठन की दृष्टि से बिम्ब दो प्रकार के माने गए हैं - सान्द्र और विवृत या विराट्। सान्द्र बिम्ब में चित्रण की संक्षिप्तता रहती है, तो विवृत अथवा विराट् बिम्ब में चित्रण का विस्तार अथवा औदात्य।

अलंकृत अथवा सज्जात्मक बिम्ब का एक अलग वर्ग भी निर्धारित किया जाता है। साम्य सौन्दर्य तो बिम्ब मात्र की एक अनिवार्य विशेषता है। कोई भी बिम्ब चाहे वह दृश्यात्मक हो अथवा भाव या वस्तु के रूप में इस विशेषता से रहित नहीं होगा। यह बात महत्वपूर्ण है कि बिम्ब में अप्रस्तुत-सौन्दर्य बड़े सूक्ष्म रूप से अवस्थित रहता है। यह सौंदर्य प्रायः एक ही शब्द में निहित रहता है। यह शब्द, क्रिया, विशेषण, क्रिया-विशेषण और संज्ञा आदि कुछ भी हो सकता है। इन्हीं के माध्यम से अप्रस्तुत को बिम्ब रूप में, हमारे सामने झलका दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि अप्रस्तुत सौन्दर्य बिम्ब मात्र का एक आंतरिक गुण है। ऐसे वर्ग को मान्यता देना हमारी बिम्ब सम्बन्धी मूल दृष्टि के विपरीत होगा, क्योंकि हम तो प्रत्येक प्रकार के बिम्ब के मूल में सूक्ष्म अप्रस्तुत सौन्दर्य निहित मानते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम बिम्ब को इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं -

(क) दृश्य बिम्ब

(अ) चाक्षुष बिम्ब

(आ) श्रव्य बिम्ब

(इ) स्वाद्य बिम्ब

(ई) घ्राण बिम्ब

(उ) स्पर्श्य बिम्ब

(ऊ) शीत-ताप सम्बन्धी बिम्ब

(ए) भाव बिम्ब

(ऐ) वस्तु बिम्ब

(ओ) सान्द्र बिम्ब

(औ) विवृत्त अथवा विराट बिम्ब

बिम्ब का यह वर्गीकरण कोरा सैद्धांतिक नहीं है। आधुनिक हिन्दी कविता में इसके सभी प्रकारों का सौंदर्यात्मक विधान परिलक्षित किया जा सकता है। आधुनिक हिन्दी कविता के अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत बिम्ब विधान का हमारा विवेचन मूलतः इन्हीं वर्गो पर आधृत है। उदाहरण के लिये छायावादी कविता का बिम्ब विधान लें। इस कविता में विविध प्रकार के बिम्ब एक साथ गूँथे हुए हैं। ऐसे उदाहरण अनेक हैं, जिनमें चाक्षुष के साथ-साथ अन्य इन्द्रियां भी सम्बद्ध हैं। ऐसे उदाहरण को यदि हम 'चाक्षुष बिम्ब' के अन्तर्गत विवेचित करें, तो उनकी अन्य बिम्बगत विशेषताओं की अवहेलना हो जाने का डर रहता है। इस प्रकार के विवेचनों से विवेच्य कविता के साथ न्याय नहीं किया जा सकता और उसके बिम्ब-सौन्दर्य को पूरी तरह से उद्घाटित नहीं किया जा सकता। एक उदाहरण से हमारी बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी, देखिये -

आंसुओं से कोमल झर झर
स्वच्छ निर्झर जलकण से प्राण
सिमट सट सट अन्तर भर-भर
जिसे देते थे जीवन दान,
वही चुम्बन की प्रथम हिलोर,
स्वप्न, स्मृति दूर अतीत, अछोर।[1]

इस उदाहरण मं ऐन्द्रिय संवेदना को स्पर्श करने वाले अनेक बिम्ब हैं। 'झर-झर' से श्रवण इन्द्रिय से सम्बन्धित बिम्ब उभरता है, और 'समट सट-सट, अन्तर भर-भर से हमारी स्पर्श-चेतना प्रवाहित होती है। इसके अतिरिक्त यह बिम्ब मानस-प्रत्यक्ष भी है। इस उदाहरण को न तो श्रृव्य बिम्ब की काटि में रखकर विवेचित

---

१. अपरा : निराला, 'स्मृति' - पृष्ठ १०६

किया जा सकता है। बिम्ब सम्बन्धी समग्र दृष्टि से ही इनका भली-भाँति विवेचन किया जा सकता है। इसका अर्थ कदापि नहीं है कि आधुनिक हिन्दी कविता के व्यावहारिक विवेचन में बिम्ब के वर्गीकरण या उसके प्रकारों की कोई उपयोगिता नहीं है। उपयोगिता है और बहुत है। बिम्ब सम्बन्धी जिस समग्र दृष्टि से विवेचन किया जायेगा, उसका आधार तो निश्चय ही बिम्ब के वर्ग अथवा प्रकार ही होंगे। बिना 'वर्गों' के आधार के इस प्रकार का विवेचन हो ही नहीं सकता। आधुनिक हिन्दी कविता के बिम्ब विधान का व्यावहारिक विवेचन मूलतः इसी वर्गीकरण के आधार पर किया है।

डॉ० कैलाश बाजपेयी ने बिम्बों को मुख्यतः ६ वर्गों में बाँटा है -

(क) दृश्य बिम्ब (अन्य संवेद्य बिम्ब नाद, स्वाद्य, घ्राण्य एवं स्पर्श बिम्ब)

(ख) वस्तु बिम्ब-यथातथ्य एवं व्यापार व्यंजक (ग) भाव बिम्ब

(घ) अलंकृत बिम्ब (ङ.) सांद्र बिम्ब

(च) विवृत बिम्ब [१]

डॉ० उमा अष्टवंश ने काव्य बिम्बों को तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया है -

१. **रूपात्मक अथवा लक्षित** - इसके अन्तर्गत ऐन्द्रिय बिम्ब आएँगे।

२. **भावात्मक बिम्ब** - इसके अन्तर्गत लक्षणा के चमत्कार से युक्त वे बिम्ब आएँगे जो किसी ठोस आधार के द्वारा भाव को चित्रात्मकता प्रदान करते हैं।

३. **क्रियात्मक बिम्ब** - जो न केवल बाह्य गति का चित्रण करता है, वरन् अंतस के द्वन्द्व को भी मूर्त करता है। [२]

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश बाजपेयी, पृ० ८१

२. छायावादोत्तर हिन्दी कविता में बिम्ब विधान - डॉ० उमा अष्टवंश, पृ० १६

डॉ० रणजीत ने विभिन्न आधरों पर काव्य बिम्बों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है -

(क) प्रस्तुति-अप्रस्तुति के आधार पर :-

१. प्रस्तुत रूप में लाए हुए बिम्ब (डायरेक्ट-इमेज)

२. अप्रस्तुत रूप में लाए हुए बिम्ब (फिगरेटिव इमेज)

(ख) संवेदित इन्द्रियों के आधार पर :-

१. दृष्टि बिम्ब २. ध्वनि बिम्ब

३. स्वाद बिम्ब ४. गंध बिम्ब

५. स्पर्श बिम्ब

६. मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब अर्थात् एकाधिक इन्द्रियों को संवेदित करने वाले बिम्ब।

(ग) क्षेत्र के आधार पर :-

१. प्राकृतिक बिम्ब

२. पौराणिक बिम्ब

३. ऐतिहासिक बिम्ब

४. सामाजिक - लोक सांस्कृतिक बिम्ब

५. औद्योगिक वैज्ञानिक बिम्ब।

(घ) संक्षिप्ति-विस्तृति के आधार पर :-

१. सांद्र बिम्ब

२. विवृत बिम्ब

(ङ.) स्थिति-गति के आधार पर :-

१. स्थिर बिम्ब

२. गतिशील बिम्ब

(च) कवि की मानसिक अवस्था के आधार पर :-

१. स्वस्थ बिम्ब

२. रुग्ण बिम्ब। [1]

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के द्वारा वर्णित बिंब बर्गीकरण को आधार मानकर नागार्जुन के काव्य में बिंब विधान को मैनें इन रूपों में प्रस्तुत किया है -

१. इन्द्रिय संवेद बिम्ब

२. वस्तु बिम्ब एवं भाव बिम्ब

(ब) नागार्जुन के काव्य में बिम्ब विधान :-

प्रत्येक कवि की अभिव्यक्ति उसके अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन है। उसके बिंब, उसकी उपमाएं, उसके आचार-विचार, संस्कार, सिद्धान्त आदि को ही प्रतिबिम्बित नहीं करते वरन् उसका मनोविश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं। जिन परिस्थितियों में कवि जन्मा, जिन संस्कारों में वह पला व जिस समाज में वह बड़ा हुआ, उस सबका प्रकटीकरण उसके बिम्बों में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसकी रुचियों, रुझानों, संवेदनाओं, उसके आकर्षण के केन्द्र स्थल, उसके हृदय पर पड़े गहरे प्रभावों, उसके हृदय में उत्पन्न मनोभूतियों, भावों आदि को केवल उसके बिंबों के द्वारा ही जाना जा सकता है।

नागार्जुन के बिंबों का सर्वप्रथम विवेचन उनके बिंबों में गृहीत विषयों के आधार पर किया जा सकता है, अर्थात् वे जीवन और जगत के किन-किन क्षेत्रों से कितने बिम्ब प्रस्तुत करते हैं और किसमें उनकी रुचि अधिक है।

---

१. छायावादोत्तर काव्य : डॉ० सिद्देश्वर प्रसाद, पृष्ठ १८६

कवि नागार्जुन को हिन्दी में जनकवि माना जाता है। उनके काव्य-बिंब शत-प्रतिशत जन-जीवन से जुड़े हैं। उनके काव्य में एक तरफ तो शोषित वर्ग, भूमिहीन किसान, पिछड़ी बस्ती, गरीब अध्यापक, अकाल, मल्लाहों के बच्चे, नारी जीवन तथा जमींदारों के अत्याचारों से प्रताड़ित किसान आदि के परिवेश से सम्बन्धित अनेक बिंब हैं और दूसरी ओर पूँजीपतियों, महाजनों, राजाओं, बड़े-बड़े नेताओं, चापलूस कवियों और लाल-फीताशाहों के काले कारनामों, धर्माधिकारियों तथा उच्च वर्गीय भोग-विलास सम्बन्धित अनेक बिंब हैं, जो शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के जीवन को मार्मिक ढ़ंग से उपस्थित करते हैं। मार्क्सवादी दृष्टिकोण होने के कारण उन्होंने साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी तथा युद्धकामी शक्तियों के जघन्य कुकृत्यों को प्रतीकात्मक बिम्बों के रूप में प्रस्तुत किया है। भारत में यूनान और मिश्र की तुलना में मिथकों का अजस्त्र स्त्रोता हैं और इन पौराणिक मिथकों को नागार्जुन ने मिथकीय बिम्बों के रूप में संयोजित किया है। छायावादी और प्रयोगवादी काव्य में जहाँ व्यक्तिवादी श्रृंगारिक तथा प्राकृतिक बिंबों की भरमार है वहाँ नागार्जुन के काव्य-बिम्ब यथार्थ के ठोस धरातल पर अधिष्ठित हैं।

नागार्जुन के काव्य में अनेक बिम्बों के स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं और उनके आयाम मूर्त है। ऐसे बिम्बों के संयोजन में चाक्षुष-इन्द्रियों का सीधा सन्निकर्ष होता है –

बेखबर सोई हुई है छापने की यह विराट मशीन
उधर मुँह बाए पड़े हैं टाइपों के मलिन-धूसर केस
पर, इधर तो झांकती है दो सलोनी टहनियाँ
सींखचों के पार। [1]

---

१. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृष्ठ ३५

नागार्जुन ने नीम की टहनियों को उनके परिवेश के साथ एक चाक्षुष बिम्ब यहाँ पर अंकित कर दिया है।

१. इन्द्रिय संवेद्य बिंब :-

नागार्जुन अत्यधिक भावुक कवि थे। इन्द्रिय सुखों की सार्थकता में उनका घना विश्वास था इसलिये संवेद्य बिम्बों के सृजन में उन्होंने पर्याप्त रुचि ली। दृश्य, नाद, गंध, स्पर्श और स्वाद बिम्ब कवि की इन पंक्तियों में साफ-साफ उभरे हैं-

बहुत दिनों के बाद
अबकी मैने जी भर देखा
पकी सुनहली फसलों की मुस्कान
अबकी मैं जी भर सुन पाया।
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
अबकी मैनें जी भर सूँघे
मौलसिरी के ढ़ेर-ढ़ेर से ताजे-टटके फूल
अबकी मैं जी भर छू पाया
अपनी गंवई पगडंडी की चन्दनवर्णी धूल
अबकी मैंने जी भर ताल मखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
अबकी मैनें जी भर भीगे
गंध-रूप-शब्द-स्पर्श-सब साथ-साथ इस भू पर
बहुत दिनों के बाद। [१]

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृष्ठ १०६-१०७

इसी प्रकार 'तन गई रीढ़' कविता में कवि ने स्पर्श, स्वाद, दृश्य, नाद और गन्ध की बड़ी ही मनोहारी सृष्टि की है :-

झुकी पीठ को मिला

किसी हथेली का स्पर्श

तन गई रीढ़

महसूस हुई कंधों को

पीछे से,

किसी नाक की सहज उष्ण निराकुल साँसें,

तन गई रीढ़

कौंधी कहीं चितवन

रंग गए कहीं किसी के होंठ

निगाहों के जरिए जादू घुसा अंदर

तन गई रीढ़

गूँजी कहीं खिलखिलाहट

टूक-टूक होकर छितराया सन्नाटा

भर गए कर्णकुहर

तन गई रीढ़

आगे से आया

अलकों के तौलक्त परिमल का झोंका

रग, रग में दौड़ गई बिजली

तन गई रीढ़। [1]

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ६६

कवि की इन्द्रिय संवेदना या तो प्रकृति के राग रंग में डूबती है या फिर रमणी के, जिसके रूप की झांकी कवि उतारता है, और जिसकी हथेली का स्पर्श, नाक की सहज उष्ण निराकुल सांस, अलकों के तौलक्त परिमल का झोंका तथा खिलखिलाहट से अभिभूत होकर कवि की रग-रग में बिजली दौड़ जाती है और उसकी रीढ़ तन जाती है।

२. दृश्य बिम्ब :-

कवि ने अमल - धवलगिरी के शिखरों पर बादलों का घिरना एवं वहॉ कें अन्य प्राकृतिक सौन्दर्य को पाठकों की आँखों के समक्ष उपस्थित कर दिया है। "दृश्य या चाक्षुष बिम्ब आकारवान होते हैं, इनका स्वरूप सबसे अधिक स्पष्ट होता है, क्योंकि उसके आयाम अधिक मूर्त होते हैं।" [1]

अमल-धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है
छोटे-छोटे मोती जैसे अतिशय शीतल वारिकणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है। [2]

प्रस्तुत कविता में कवि के बिम्ब-निर्माण की सशक्तता का पता चलता है। पहले क्रमशः वह चित्र उपस्थित करता है और उसके बाद कभी शैवालों की हरी दरी पर प्रणय कलहरत चकवा-चकई को या अन्य किसी रम्य दृश्य में किन्नर किन्नरियों को वंशी वादन करते या कहीं निज के ही उन्मादक परिमल को खोजते, चिढ़ते मृगों को हमें दिखाता है। उक्त कविता में एक चित्र सजीव है। चित्र खींचने में नागार्जुन का

---

१. डॉ० नगेन्द्र : काव्य बिंब , पृष्ठ ६

२. बादल को घिरते देखा है : युगधारा, पृष्ठ ७५

कौशल सर्वत्र है। यही कारण है कि नागार्जुन की कविताओं में उच्च्य कोटि के बिम्ब आये हैं।

ग्रामवासिनी-

नगर वासिनी

माताओं-बहनों -बहुओं की

रूकी निगाहें,

झुकी निगाहें,

क्रुद्ध निगाहें,

क्षुब्ध निगाहें,

अरुण निगाहें,

करुण निगाहें,

डरी निगाहें,

भरी निगाहें,

तरल निगाहें,

सजल निगाहें,

व्यथित निगाहें,

मथित निगाहें,

स्तब्ध निगाहें,

शून्य निगाहें,

देख रही बी०एन० कालेज के बरामदे पर सखा शोणित पंक।[1]

नागार्जुन ने इसी प्रकार के दृश्य बिंबों को काफी प्रस्तुत किया है। 'खुरदुरे पैर' कविता में रिक्शा - चालक के गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश कठोर पैरों को दिखाकर कवि ने लिखा है -

देर तक टकराए
उस दिन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाउँगा फटी बिवाइयाँ
खूब गई दुधिया निगाहों में
धँस गई कुसुम कोमल मन में।[2]

दृश्य बिम्ब का एक उदाहरण और देखिये पानी की बूँदों को कुछ इस प्रकार दिखलाया है -

देखिये तो इनकी लीला
बुँद-बूँद बरसते हैं
टुकड़ों में बँटे-बँटे
नीचे धरती की ओर बढ़ते हैं
फ्रिज के अन्दर जम जाते हैं
देखिये तो इनकी लीला।[3]

इसी प्रकार 'बहुत दिनों के बाद', 'देखना ओ गंगा मैय्या', 'ओ जन-मन के सजग चितेरे', 'बसन्त की अगवानी', आदि कविताएँ भी कवि की देखी हुई वस्तुओं के बिंब उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है।

---

१. खून और शोले : नागार्जुन, पृष्ठ ४

२. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृष्ठ २१

३. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैनें : नागार्जुन, पृष्ठ ३५

३. ध्वनि बिंब :-

नागार्जुन के काव्य में कुछ ऐसे बिम्बों की संयोजना हुई है जिनमें नाद तत्वों की प्रधानता है और ऐसे बिम्ब प्राकृतिक सन्दर्भ से जुड़े हुये हैं :-

छमका रही है पावस रानी

बूँद-बूँदियों की अपनी पायल

और आज

चालू हो गई है

झींगुरों की शहनाई अविराम

और आज

जोरों से कूक पड़े

नाचते - थिरकते मोर। ¹

बूँदों की पायल, झींगुरों की शहनाई, मोर की कूक आदि ध्वनि बिम्ब एक तरफ तो प्रकृति और वर्षाकालीन परिवेश को सहज ढ़ंग से पेश कर रही है और दूसरी तरफ पाठक के मन को भी झंकृत करते हैं।

इसी प्रकार 'मेघ बजे' कविता में ध्वनि बिम्ब कुछ इस प्रकार दिखाया गया है -

धिन धिन धा धमक-धमक

मेघ बजे

दामिनि यह गई दमक

मेघ बजे

दादुर का कंठ खुला

---

1 हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन , पृ०सं० ११४

मेघ बजे

धरती का हृदय धुला

मेघ बजे

पंक बना हरिचंदन

हलका है अभिनंदन

मेघ बजे

धिन-धिन धा ......

(४) स्वाद बिम्ब :-

भारत के गॉव के निवासी अर्थकृच्छता के चंगुल में इस प्रकार फंसे हुये हैं कि उन्हें केवल ताल मखान खाकर और ईख चूसकर ही गुजर करना पड़ता है। नागार्जुन का पालन-पोषण इसी प्रकार के निम्न वर्गीय परिवार में हुआ है। उन्होंने खाद्य उपकरणों को स्वाद बिंब के रूप में नियोजित किया है।

१. बहुत दिनों के बाद

अबकी मैने जी भर ताल मखान खाया।

गन्ने चूसे जी भर

बहुत दिनों के बाद।[1]

२. चला देर तक उनका वह मधुपान

वर्ण-गंध-रुचि खींच रहे थे ध्यान,

खटरस फल थे सज्जित विविध प्रकार

बीच-बीच में बदला जिनसे स्वाद।

---

१. *सतरंगे पंखों वाली, नागार्जुन, पृष्ठ २५-२६*

(५.) गंध बिम्ब :-

गंध बिम्ब को घ्राण बिम्ब भी कहा जाता है। घ्राण बिम्ब-विधान में गंध का प्राधान्य रहता है और इस प्रकार के बिम्ब हमारी घ्राण-इन्द्रिय को उद्‌बोधित करते हैं तथा आनन्द की पराकाष्ठा पर पहुँचा देते हैं -

बहुत दिनों के बाद
अबकी मैने जी भर सूंघे
मौलसिरी के ढ़ेर-से-ताजे-टटके फूल
बहुत दिनों के बाद।[१]

नागार्जुन को ग्रामीण मिट्टी से, उसके परिवेश से प्यार है, लगाव है। मौलसिरी के फूल की गंध से उनका मन आनन्द से झूम उठता है।

(६) स्पर्श बिम्ब :-

'शिशिर - विषकन्या' कविता में अमूर्त वस्तु का मानवीकरण कर स्पर्श बिंब उपस्थित किया गया है। "स्पर्श बिम्ब में स्पृश्यजन्य संवेदनाओं के समन्वय से बिंब का निर्माण होता है।"[२] प्रस्तुत कविता स्पृश्य बिम्ब का सफल उदाहरण है:

हजार बाँहों वाली शिशिर विष-कन्या
उतरी लेकर सांसों में प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होठों के प्राणशोषी चुम्बन
तन मन पर लेप गए ज्वालामुखी चन्दन
एक-एक शिरा में सौ-सौ सुइयों की चुभन

---

१. *सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृष्ठ २५*

२. *काव्य बिम्ब : डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ६*

अद्‌भुत वह भुजापाश, अद्‌भुत आलिंगन

तृण तरु झुलस गए पड़ा है ओसमय तुषार

नागार्जुन ने स्पर्श जन्य अनुभूतियों के आधार पर अपने काव्य में स्पर्श-बिम्बों का विधान किया है जो पाठक की स्पर्श-इन्द्रियों को जागृत करते हैं -

धँसना तो पड़ेगा ही

कर्दम कर तुहिनमय स्पर्श ....

कम्पन्न की पराकाष्ठा ....

जड़िमा में डूब गया स्पर्श बोध

रंगों में प्रवहमान रक्त

जम गया मानो।[1]

इसी प्रकार 'तन गई रीढ़' कविता में स्पर्श बिम्ब का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

झुकी पीठ को मिला

किसी हथेली का स्पर्श

तन गई रीढ़।

(६.) मिश्रित भावनाओं के बिंब :-

प्रस्तुत कविता में कई बिंब आये हैं जो कई भावों को प्रकट करते हैं -

पूस मास की धूप सुहावन

फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा

राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी

गर्भ-भार से अलस शिथिल है अंग-अंग

---

१. हजार-हजार बाहों वाली, पृष्ठ १०६

छप्पर पर बैठी है बिल्ली
किसके घर से जाने क्या कुछ खा आई है
चला-चला कर जीभ स्वाद लेती होठों का। [1]

नागार्जुन ने अपने मनोभावों को व्यंजित करने के लिए अनेक बिम्बों को मोतियों की माला में गुँथे मोतियों के दानों के समान अनुस्यूत कर दिया है -

मकान नहीं खाली है

X X X

खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट। [2]

(७.) वस्तु बिम्ब :-

वस्तु बिम्ब के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने भ्रम से वातावरण की 'प्रतिचित्रात्मक सी सृष्टि' को ही वस्तु-बिम्ब मान लिया है, वास्तव में वस्तु-बिम्ब भी मानसिक रूप में प्रत्यक्षीकृत होना चाहिये।

नागार्जुन ने वस्तु-प्रधान बिम्बों में स्थैर्य के साथ-साथ उनके व्यापार तथा गति का भी बोध होता है। इस प्रकार नागार्जुन ने गत्यात्मक वस्तु बिम्बों में व्यक्तियों के क्रिया-कलापों तथा उनकी इच्छाओं को भी मार्मिक ढ़ंग से अंकित किया है -

हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकता रेत की ले रहे टोह
बहुधा-अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह

---

१. हंस (शांति अंक)

२. युगधारा : नागार्जुन, पृष्ठ १०४

खोज रहे पानी में जाने को स्तुभ मणि।

बीड़ी पियेंगे ......

आम चूसेंगे ......

या की मलेंगे देह में साबुन की सुगंधि टिकिया

लगाएंगे सर में चमेली का तेल

देखना ओ गंगा मइया।[1]

(क) यथातथ्य बिम्ब :-

वस्तु बिम्बों के दोनों रूप - यथातथ्य एवं गतिशील नागार्जुन के काव्य में हमारा ध्यान खींचते हैं। शरद पूर्णिमा के सौन्दर्य की झॉकी कवि ने यथातथ्य रूप में इस प्रकार उतारी है -

कुमुद मुदित है कहीं-कहीं पर मुकुलित हैं कमलों के कानन

श्वेत घनों से प्रतिबिम्बित हैं श्याम सलिल झीलों के आनन

लाख लाख नक्षत्र टँक गये, नीली चादर बनी अनूठी

शरद जुन्हाई के आगे दुनिया की सुषमा लगती झूठी।[२]

समाज में व्याप्त बेकारी का शिकार भारत का तरुण कैसी दयनीय जिन्दगी जीने के लिए विवश होता है, इसका एक यथातथ्य बिम्ब नागार्जुन की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

मानव होकर मानव के ही चरणों में मैं रोया

दिन बागों में बिता राम को पटरी पर मैं सोया

राजकीय ये उच्च डिग्रियां, ऐसा सुन्दर मुखड़ा

---

१. सतरंगे पंखों वाली - नागार्जुन, पृष्ठ २००

२. नागार्जुन रत्नावली -नागार्जुन ,पृष्ठ २००

तो भी नहीं किसी ने सुनना चाहा मेरा दुखड़ा
कभी घुमक्कड़ या दोस्त से मिल कर, कभी अकेले
एक-एक दाने के खातिर सौ-सौ पापड़ बेले। [1]

चॉंदनी की उछल-कूद का एक गत्यात्मक बिम्ब नागार्जुन की निम्नलिखित पंक्तियों में अंकित हुआ है-

पीपल के पत्तों पर फिसल रही चॉंदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चॉंदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर
चमक रही, दमक रही, मचल रही चॉंदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चॉंदनी। [2]

(३) भाव बिम्ब :-

कवि ने विरह-मिलन, आशा-निराशा, लाज-संकोच, कसक-पीड़ा, सुख-दुःख आदि को आधार बनाकर भावात्मक बिंबों की सृष्टि भी अत्यन्त सफलता पूर्वक की है। जैसे-

(क) जमींदार हैं साहूकार हैं बनिया हैं व्यापारी हैं,
अन्दर-अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी हैं।

(ख) चाट रहे हैं कुछ प्राणी बाहर जूठन के दोने
चहक रहे हैं, अन्दर ये लक्ष्मी के पुत्र सलोने।

---

१. *दीपक -अगस्त ३७*
२. *खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृष्ठ ७८*

(ग) तुम नहीं हो पास मैं तो तरसता हूँ
प्यार के दो बोल सुनने के लिये
एक की ही दस अंगुलियाँ नहीं हैं काफी कदाचित
रेशमी परितृप्तियों का जाल बुनने के लिये।

(घ) वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन?
उनीदी घड़ियों में चुश्ती है।

महात्मा गाँधी की हत्या से कवि बहुत दुखी होता है। 'शपथ' कविता में उसने गाँधी जी के प्रति अपनी सच्ची श्रृद्धांजलि अर्पित करते हुए स्वस्थ भाव बिम्बों का सृजन किया है -

तीन-तीन गोलियाँ बाप रे
मुँह से कितना खून बहा है
महमौन यह पिता तुम्हारा
रह-रह मुझे कुरेद रहा है।
इसे न कोई कविता समझे
यह तो पितृ-वियोग-व्यथा है। [1]

---

१. *तालाब की मछलियाँ - नागार्जुन, पृष्ठ ३३ -३४*

कवि ने कहीं-कहीं वस्तुओं में अपनी भावनाओं को रूप देने का उपक्रम किया है। उदाहरण के लिये -

दे गया सहसा दिखाई

द्वादशी का चाँद

क्षीण से भी क्षीणतर

पांडुरोगाक्रांत

उदय के प्रतिकूल

अस्त होने की दशा पर वह ले गया अविलम्ब मेरा ध्यान

सुख नहीं कुछ

'दुक्ख' है सब सुक्ख

सब क्षणिक है, सभी नश्वर

बुद्ध की यह बात आई याद। [1]

(४) कल्पना या अलंकृत बिम्ब :-

नागार्जुन सपाट बयानी पर भरोसा रखते हैं, पर उनकी सपाट बयानी में भी वक्रता सर्वत्र देखी जा सकती है। अलंकारिक चमत्कारों से कवि का लगाव नहीं है, फिर भी उनके काव्य में कहीं-कहीं अलंकृत बिम्ब अपनी सौन्दर्य राशि से जगमगा उठे हैं। श्यामकाय रात्रि के सौन्दर्य को कवि ने अपनी कल्पना के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है -

सो गया, तो स्वप्न में तारे मुझे कहने लगे

जागो, नयन खोलो, अजी दिन में जगे तो क्या जगे?

---

१. तालाब की मछलियाँ - नागार्जुन, पृष्ठ २५

अकचका का उठा, देखा, गगन में नक्षत्र गण

श्रान्त श्यामल हृदय पर ज्यों ढ़लमलाते स्वेदकण

ओढ़ मणि-मुक्ता जड़ित नवनील चीनांशुक निशा

मानों विराट विधान की परिकल्पना में लीन थी। ’

‘हरिजन गाथा’ में कवि एक नवाजातक के माध्यम से भावी क्रान्ति का स्वप्न देखता है। कवि अपने विचारों के अनुरूप उस हरिजन शिशु में बड़ी-बड़ी कल्पनाऍं करता है -

‘हरिजन गाथा’ में कवि एक नवाजातक के माध्यम से भावी क्रान्ति का स्वप्न देखता है। कवि अपने विचारों के अनुरूप उस हरिजन शिशु में बड़ी-बड़ी कल्पनाएं करता है -

आड़ी तिरछी रेखाओं में

हथियारों के ही निशान हैं

खुखरी है, बाम हैं, असि भी है

गंडासा-भाला प्रधान हैं

दिल ने कहा - दलित माओं के

सब बच्चे अब बागी होंगे

अग्नि पुत्र होंगे वे, अंतिम

विप्लव में सहभागी होंगे

दिल ने कहा, अरे यह बच्चा

सचमुच अवतरी बराह है

इसकी भावी लीलाओं का

---

१. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० २५

सारी धरती चारागाह है। [1]

प्रगतिवादी घोषणा-पत्र के अनुसार नागार्जुन में पारंपरिक सादृश्य-विधानों एवं पुराने उपमानों को छोड़कर युग के अनुसार नये उपमानों की खोज की है। इस प्रकार उन्होंनें अलंकृत बिंबों की संयोजना कर उन्हें सहज संवेध और हृदयग्राही बना दिया है -

अरुणोदय से डरने वाले जो गति होती है उलूक की
वही हाल है आज हमारे नेताओं की
खीझ-खीझ कर
नुक्ता चीनी से घबड़ाकर
बाल नोचते हैं वे सिर के [2]

(५) सान्द्र बिंब :-

नागार्जुन ने ऐसी कविताओं की रचना न के बराबर की है, जिन्हें स्वतंत्र रूप से सान्द्र बिम्बों की कोटि में रखा जा सके। उनकी लम्बी कविताओं में ही कहीं-कहीं कोई बात ऐसे चमत्कारिक ढ़ंग से कह दी गयी है, जो अपनी सम्पूर्णता के कारण सान्द्र बिम्ब की संज्ञा से अभिहित की जा सकती है।

कर गई चाक
तिमिर का सीना
जोत की फॉक
यह तुम थी। [3]

---

१. खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, पृ०सं० १२५
२. हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन : पृ०सं० ११४
३. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृष्ठ १०१

(६) विवृत बिंब :-

नागार्जुन के काव्य में बिंबों की भरमार है। कवि के पास इतना कुछ कहने के लिये है, जिसे संक्षेप में कहा नहीं जा सकता। अपने आक्रोश और अन्तर्द्वन्द्व को कवि विराट कल्पनाओं के योग से शब्द-बद्ध करता है। आज शीत युद्ध के बादल समस्त संसार में मँडरा रहे हैं- इसका कारण विश्व के दो-तीन महत्वाकांक्षी राष्ट्रों का पारस्परिक मतभेद है। विदेशियों की इस कुत्सित नीति का विस्फोट नागार्जुन ने 'जयति जय सर्व मंगला' कविता में एक विस्तृत बिंब के माध्यम से किया है -

ये पहले दिल्ली आते हैं

और वहाँ से कलकत्ता-रंगून की तरफ ....

रामराज का निर्मल नील गगन जो ठहरा

इसमें होकर आते-जाते रावण के विध्वंसक पुष्पक

निकट पूर्व क्या, दूर क्या, सकल एशिया

मृगयोचित रमणीय क्षेत्र हैं इनके खातिर

नील नदी कातर अंचल हो या दमिश्क के खुश्क इलाके

रत्नगर्भ भारत हो चाहे, पाक भूमि हो स्वर्ग प्रसविनी-

काश्मीर का नन्दन वन हो

या कि सुभग नेपाल देश हो

हरी भरी बर्मी धरती हो

दिन की खान, रबर का जंगल

उर्वर भूमि मलाया चाहे स्वर्ण द्वीप या यवद्वीप

फारमोसा हो जापान हो

वियतनाम हो या कि कोरिया

यह समग्र एशिय इन्ही का चारागाह है।[1]

(७) मिथकीय बिंब :-

नागार्जुन के काव्य में मिथकीय बिंबों की भरमार दिखलाई पड़ती है और इस दृष्टि से वे संसार के आधुनिक महान कवियों के निकट है। मिथक आदिम युगीन सामूहिक चेतना के प्रतिबिम्ब हैं, पर उनका स्वरूप सार्वभौम तथा सार्वकालिक है। मिथक का संसार चित्रमय होता है। मार्क शोरर के अनुसार, "मिथक एक वृहद नियंत्रक बिंब है जो सामान्य जीवन के तथ्यों को दार्शनिक अर्थ प्रदान करता है।[2] मिथकीय बिंब सत्य का उद्घाटन करता है। इसलिये आज का यथार्थवादी कवि युगीन समस्याओं को मिथकीय बिंबों के माध्यम से प्रक्षेपित करता है। नागार्जुन एक समष्टिवादी कवि है। उन्होंने अपने काव्य में प्राकृतिक, धार्मिक तथा लोक कथात्मक मिथकों का प्रयोग किया है -

कालकूट भी यहीं पड़ा है

अमृत कलरा भी यही रखा है

नीली ग्रीव वाले उस मृत्युन्जय का भी बाप यही है

अमृत-प्राप्ति के हेतु देवगण

नहीं दुबारा

अब ठग सकते

दानव-कुल को

राहु केतु का शिर-कबन्ध वह जुड़ा देख लो

---

१. तालाब की मछलियाँ - नागार्जुन, पृष्ठ १०१

२. मिथक और साहित्य - डॉ० नगेन्द्र द्वारा उधृत, पृष्ठ ६

सुधा स्निग्ध इन अंगुलियों के स्पर्श मात्र से

नहीं तुम्हारे ही युग का यह चमत्कार है।'

समुद्र मंथन के बाद प्राप्त अमृत के लिये देव-दानव संघर्ष के समय विषपान से शिव का नीलकंठी रूप राहु-केतु की कथा पौराणिक मिथक है। नागार्जुन ने इस मिथकीय बिम्ब की संयोजना तो अवश्य की है पर इस मिथक को उस रूप में नहीं स्वीकारा है जिस रूप में इसे प्राचीन युग में स्वीकारा गया था। नागार्जुन ने इस मिथकीय बिम्ब के माध्यम से आज के युग को रूपायित किया है। आज का युग मानव-पुरुषार्थ का युग है।

मनुष्य प्राकृतिक तत्वों पर अपने विस्मय ,क्रोध, प्रणति, भय, राग, द्वेष आदि भावों को प्रत्यारोपित करता आ रहा है। इतना ही नहीं, वह अपनें जीवन की प्रमुख घटनाओं को मानवीय करण की प्रक्रिया के माध्यम से प्रकृति पर आरोपित करता है। इस प्रकार प्रकृति की उत्पत्ति, विकास, विनाश, ऋतु परिवर्तन आदि अवस्थाएं मानव जीवन में घटित व्यापारों को निरुपित करती हैं। वास्तव में मनुष्य का जन्म, यौवन, प्रणय-व्यापार, उत्पत्ति, उद्यम, मौत आदि घटनाएं प्रकृति-परिवर्तन के समानान्तर चलती हैं। महाकवि कालिदास ने यक्ष और यक्षिणी के प्रणय की जो परिकल्पना की है, वह वास्तव में प्रकृति का मानवीकरण है और प्राकृतिक मिथक है। नागार्जुन ने कालिदास के इस प्राकृतिक मिथक को व्यंगात्मक रूप में बिंबित किया है-

वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका

प्रथम दिवस आषाढ़ मास का

देख गगन में श्याम घन घटा

विधुर यक्ष का मन जब उचटा

---

१. *युगधारा : पृष्ठ ७७-७८*

खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर

चित्रकूट के सुभग शिखर

उस बेचारे ने भेजा था

जिनके ही द्वारा संदेशा

उन पुष्करावर्त मेघों का

साथी बन कर उड़ने वाले

कालिदास, सच-सच बतलाना।[1]

गंगदत्त-भेक गड़नायक और नागदत्त एक लोक कथात्मक मिथक है। नागार्जुन ने इसे मिथकीय बिम्ब में संयोजित कर आज के लोक नायकों को चेतावनी दी है कि अपने परिजनों को छोड़कर अपने जन्मजात दुश्मनों को उन्हें खाने के लिए कभी भी आमंत्रित नहीं करना चाहिए -

"देव हो दानव हो

पशु हो मानव हो

अमृत या विषधर हो

अपना हो पर हो

किसी को जो ले आऊँ

सबल-प्रतिपक्षी को

नीचा जो दिखाऊँ

तभी मैं सर्दार

नहीं तो सौ बार

---

१. सतरंगे पंखों वाली : पृ०सं० ४४-४५

मुझको धिक्कार।[1]

(८) आध्यात्मिक बिम्ब :-

कवि नागार्जुन ने कतिपय आध्यात्मिक बिम्बों का भी निर्माण किया है, जिनमें जीवन, जगत, परमात्मा, जीवात्मा, माया, मन, बुद्धि, आत्मा आदि को आधार बनाकर बिम्बों की सुन्दर सृष्टि हुई है। जैसे -

(क) बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेंगे
जन जीवन का यान तभी आगे निकलेगा,[२]

(ख) श्रृद्धा का तिकड़म से नाता
जय हे भिक्षुक, जय हे दाता
पियो संत हुगली का पानी
पैसा सच है, दुनिया फानी।[३]

(ग) भगवान अमिताभ तब
पूजा के समय पर कितने उत्साह से
घंटा मैं बजाती,
तन्मय हो कितनी आरती उतारती।[४]

(घ) सिंह वाहिनी तो दनुजों का रक्त पियेगी
धरती की प्यासी फसलों को पानी देगा कौन [५]

---

१. इस गुब्बारे की छाया में : पृ०सं० ५२
२. नागार्जुन रचनावली - १, शोभाकान्त -(बसंत की अगवानी कविता) पृष्ठ ३०३
३. नागार्जुन रचनावली - १, शोभाकान्त -(चौराहे के उस नुक्कण पर कविता) पृष्ठ ३३३
४. नागार्जुन रचनावली - १, शोभाकान्त -(भिक्षुणी कविता) पृष्ठ ८१
५ नागार्जुन रचनावली -१, शोभाकान्त-(भीग रही तरुणाई वो हथियार कविता) पृ० ४०५

(ङ.) नहीं श्मशानी शान्ति चाहिए

नहीं वैष्णवी शान्ति चाहिए

नहीं भैरवी शान्ति चाहिए

नहीं निर्गुणी शान्ति चाहिए

हम इच्छुक हैं सगुण शान्ति के।'

(६) प्रतीकात्मक बिम्ब :-

बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार, "शब्दों के समान, सचमुच बिम्ब भी प्रतीक की भाँति काम करते हैं।" नागार्जुन ने प्रतीकात्मक बिम्बों की भी संयोजना की है। वे पूँजीवादी सभ्यता को साँप के समान शोषित वर्ग का दुश्मन समझते हैं। 'वाणिक्य पुत्र' में उन्होंने महाजनों को उनके सम्पूर्ण क्रिया-कलापों के साथ बिम्बित किया है। 'गेहुअन साँप' महाजनों का प्रतीक है :

इस पार कि उस पार

कार में बैठकर

निकला हवा खाने

गेहुँअन का पोआ....

कगार पर पहुँच रहा है बचपन

टानना सीख लिया है अभी से (५५५)

बड़ी ही नफासत से निकालता

मुँह का धुँआ

गंगा के किनारे खोद रहा

मन-ही-मन उमंग का कुआँ

---

१. नागार्जुन रचनावली - १, शोभाकान्त -(जयति-जयति जय सर्वमंगला) पृष्ठ २२२

क्यूटिकुरा का धोआ

गेहुँअन का पोआ [1]

१०. स्मृत बिंब :-

नागार्जुन घुमक्कड़ स्वभाव के थे, अधिकतर प्रवास पर रहने के कारण उन्हें अपनी प्रिय मिथिला भूमि याद आती रही है। "जब कल्पना प्रायः निष्क्रिय रहती है और स्मृति के द्वारा ही बिम्ब की उद्बुद्धि होती है, तब स्मृत बिम्ब की सृष्टि होती है। अतीत के अनुभव के आधार पर यथार्थपरक बिम्ब कहलाते हैं।" इसी स्मृति बिम्ब को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल।

याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।

....

याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम

याद आती लीचियाँ, वे आम

याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग

याद आते धान

याद आते कमल, कुमुदिनि और ताल मखान।[2]

११. कम्पन्न बिम्ब :-

(थरमल इमेजेज) भस्मांकुर काव्य में नागार्जुन ने कम्पन्न बिम्ब तक का प्रयोग किया है। जब कवि लिखता है कि -

---

१. *हजार-हजार बाहों वाली, पृष्ठ ४५*

२. *सिन्दूर तिलकित भाल (सतरंगे पंखों वाली, पृ०सं० ४७)*

"काँप रहा था रति का मृदुल शरीर,

स्वेद सिक्त रोमांचित कांतिविहीन"[1]

तो ऐसे बिम्ब की आभा मूर्तित हो जाती है।

१२. वर्ण या रंग बिम्ब -

१. 'लाल लाल गोला सूरज का

दीख जाए पूरब में

शायद सुबह -सुबह

कोहरे में शायद न भी दीखें

फिलहाल तो वो

डूबता-डूबता दीख गया'[२]

२. "प्रकृति-परी ने सजा हरित श्रृंगार।"[३]

३. "रति के रतनोर नयनों की छाप"[४]

१३. सरल बिम्ब :-

जहाँ कवि सरल अनुभूतियों से भर उठा है, वहाँ उसने सरल बिंब भी उपस्थित किये हैं। 'बापू के प्रति' कविता में कवि ने लिखा है -

शिशु सुलभ सरल मुस्कान लिये

---

१. नागार्जुन रचनावली -भाग २ : शोभाकान्त (भस्मांकुर), पृ०सं० ४८२

२. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंनें : नागार्जुन, पृ०सं० २६

३. नागार्जुन रचनावली भाग-२ : शोभाकांत (भस्मांकुर), पृ०सं० ४८०

४. नागार्जुन रचनावली भाग-२ : शोभाकांत (भस्मांकुर), पृ०सं० ४८३

शायद तुम इस पर हँसते हो

छोड़ो इस दिल में क्या है

नाहक ही अन्दर धँसते हो।[1]

उक्त कविता में गाँधी जी के साथ एक भोले बालक का चित्र भी उभरता है।

निष्कर्ष :

नागार्जुन अपनी कविताओं में साशय बिंबों का निर्माण नहीं करते फिर भी प्रायः सभी प्रकार के बिंब इनकी कविताओं में देखे जा सकते हैं। नागार्जुन अपनी कविताओं में भाषा के माध्यम से पाठक के मन में उसी प्रकार का चित्र बना देते हैं, जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने मन में सोचा है। ये काव्य में अपने आप निर्मित हुए हैं। 'अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है' काव्य पंक्तियाँ दृश्य बिंब का निर्माण करती हैं। इन पंक्तियों को सुनते ही मन में उमड़ते हुए बादलों का दृश्य घूम जाता है। इसी प्रकार 'खुरदुरे पैर' कविता में गुट्ठल वाले पैर जब दूधिया निगाहों में खुभते हैं तब दृश्य बिंब बनता है। सिंध में प्रवास के दौरान कवि को जब पत्नी की 'याद आता है तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल' दृश्य दिखाई पड़ता है तो पूर्व घटना के आधार से जुड़ने के कारण स्मृति बिंब निर्मित होता है। 'तन गई रीढ़' कविता में कवि का श्राव्य बिंब कितना मनमोहक है –

गूँजी कहीं खिलखिलाहट

टूक-टूक होकर छितराया सन्नाटा

भर गये कर्ण कुहर

तन गयी रीढ़।[2]

---

१. *पाण्डुलिपि से*

२. *नागार्जुन रचनावली भाग १ : शोभाकांत (सतरंगे पंखों वाली) पृ०सं० ३००*

यहाँ पर खिलखिलाहट की गूँज से कर्ण कुहरों का भर जाना एवं मन का रोमांचक दशा में पहुँचना एक सुखद स्थिति है इसी मन के आवेगों को विस्तार देने में काव्य की अगली पंक्तियाँ घ्राण बिंब का निर्माण कर देती हैं, जबकि 'आगे से आया अलकों के तैलाक्त परिमल का झोंका रग-रग में दौड़ गयी बिजली' से मन सुभाषित होकर खिल उठता है। 'हजार-हजार बाहों वाली' कविता में शिशिर विषकन्या जब हिमदग्ध होठों से प्राण शोषी चुम्बन' लेती हुई बतायी जाती है तब स्पृश्य बिंब की निर्मिति अपने प्रभावशाली ढंग से हो उठी है। 'तालाब की मछलियाँ' कविता में संश्लिष्ट बिंब का एक नमूना देखते ही बनता है -

तो क्या यह उद्वेल परिप्लावन इनका यों

सत्यानाश करेगा?

तो क्या बँधी भीड़ वाली पोखर ही

थी इनके उपयुक्त।[1]

यहाँ पर संश्लिष्ट बिंब के माध्यम से बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से मुक्ति की पूरी जटिल प्रक्रिया, इन पंक्तियों में कवि ने दिखाने में सफलता अर्जित की है।

अतः नागार्जुन की कविता वास्तव में एक बिंब योजना और बिंब परिवर्तन द्वारा घटित होती चलने वाली कविता है। 'एक कवि जब जीवन के विस्तृत क्षेत्र में किसी बिंब को चुनता है तो वह केवल अपने मानसिक प्रभावों और ऐन्द्रिय बोधों को ही उसके माध्यम से व्यक्त नहीं करता, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से अपनी सामाजिक स्थिति और उस यथार्थ दृष्टि को भी प्रतिबिंबित करता है, जिससे जीवन और जगत को देखने का अभ्यास होता है।'[2] नागार्जुन की बिंब योजना का स्वरूप

---

१. नागार्जुन रचनावली भाग १ : शोभाकांत (इस गुब्बारे की छाया में) पृ०सं० १११

२. डॉ० केदार नाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान पृ०सं० २८२

यही है।

नागार्जुन बिंबों की एक लम्बी और मौलिक परम्परा को जन्म देते हैं। उनकी कविता में प्रायः प्रयुक्त होने वाले समस्त बिंबों के उदाहरण आसानी से प्राप्त होते हैं। बाबा की कविताओ में अनेक प्रकार के बिंब उभरे हैं। उन्हें सर्वाधिक सफलता वस्तु परक या चाक्षुष बिंबों और ऐन्द्रिय सम्वेदना पर आधारित बिंबों में मिली है।
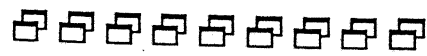
पंचम अध्याय

नागार्जुन के काव्य में प्रतीक विधान

(अ) प्रतीक का अर्थ एवं स्वरूप :-

व्यापक अर्थ में प्रतीक के अनन्त रूप हैं और इसके क्षेत्र-विस्तार की कोई सीमा नहीं। 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग काव्य के अतिरिक्त मानव ज्ञान विज्ञान के अन्यानेक क्षेत्रों में भी होता है। भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और गणित-शास्त्र में यह विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होता है। 'प्रतीक' के ये सभी अर्थ अपनी-अपनी ज्ञान-शाखाओं को भले ही समृद्ध करते हों, और वहाँ इनकी सार्थकता भी हो, पर वे काव्य-शास्त्र की मूल परिधि से बाहर ही पड़ते हैं। काव्य-शास्त्र में प्रतीक का जो अर्थ निर्धारित है, वह इन ज्ञान-शाखाओं में व्यवहृत प्रतीकार्थों से मूलतः भिन्न हैं। इसे 'चिन्ह', 'निर्देशक', और 'संदर्भ' नहीं कहा जा सकता। यह अधिक गहन, सूक्ष्म और व्यंजक, अभिव्यक्ति प्रकार है। जिसमें सूक्ष्म अर्थ-स्तरों को उद्घाटित करने की क्षमता है।

हिन्दी का 'प्रतीक' अंग्रेजी के 'सिंबल' का ही पर्याय है। यों, वेद में 'प्रतीक में विचक्षणम्' और काव्य-शास्त्र में 'उपलक्षण' शब्द का व्यवहार अवश्य है, किन्तु इनसे यह सिद्ध करना दुराग्रह ही होगा कि वेदकालीन समय में और भारतीय काव्य-शास्त्र में प्रतीक की प्रतिष्ठा थी। हां, यह अवश्य है; कि भारतीय काव्य-शास्त्र में ऐसे कई विभावन हैं; जिन्हें प्रतीक के बहुत निकट कहा जा सकता है। 'रूपकातिश्योक्ति' और 'लक्षणा' ऐसे ही विभावन कहे जा सकते हैं। जो 'प्रतीक' के बहुत निकट हैं। इन्हीं को लक्षित करके, संभवतः आचार्य शुक्ल ने कहा था कि प्रतीकों का व्यवहार हमारे यहां के काव्य में बहुत कुछ अलंकार-प्रणाली के भीतर ही हुआ है।[1] अलंकार-प्रणाली के रूपकातिश्योक्ति और लक्षणा की स्थिति प्रतीक के निकटम कही जा सकती है। पर, इन दोनों विभावनों और प्रतीक को एक नहीं कहा जा सकता। इनमें सूक्ष्म अन्तर है। लक्षणा वह शक्ति है जिसके द्वारा मुख्यार्थ की बाधा होने पर भी, मुख्यार्थ से संबद्ध

---

१. *चिन्तामणि, दूसरा भाग, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ ११०*

अन्य अर्थ लक्षित रहता है। इसे 'प्रतीक' नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रतीक की पहली शर्त ही तादात्म है। 'रूपकातिश्योक्ति' इस शर्त को तो पूरा कर देती है किन्तु अन्तर केवल यह है कि 'रूपकातिश्योक्ति' में विशुद्ध रूप से अप्रस्तुत के विधान द्वारा प्रस्तुत-अप्रस्तुत का आशय और सम्बन्ध ही बदल जाता है। इस विवेचन का तात्पर्य केवल यह है कि 'प्रतीक' अंग्रेजी के सिंबल का ही पर्याय है। उसकी जोड़ का अन्य कोई विभावन भारतीय काव्य-शास्त्र में नहीं है, यह और बात है कि भारतीय काव्य-शास्त्र में ऐसे कई विभावन हो जो प्रतीक के निकट हों।

'प्रतीक' का शाब्दिक अर्थ होता है चिन्ह, स्थानापन्न वस्तु या प्रतिमा। किन्तु काव्य में प्रतीक को अधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण किया जाता है। वहाँ वह भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता है। उसके पीछे एक दीर्घ परम्परा रहती है और वह तत्काल ही भावना को उद्बोधित करने की क्षमता रखता है। जब कवि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहना चाहता है। तब वह प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करता है।

प्रतीक के संदर्भ में एक बात साफ है कि यह भी सम्प्रेष्य के संप्रेषण के तमाम सारे माध्यमों में से एक माध्यम है यदि खुली आंख से देखा जाये तो संप्रेषण व्यवस्था की प्रत्येक इकाई किसी न किसी रूप में प्रतीक होती है क्योंकि संरचना की कोई भी इकाई स्वयं में अर्थ को समेटे नहीं रहती अर्थात् अर्थ/संप्रेष्य उस संप्रेषक/संरचक में नहीं रहता, वस्तुतः उस संप्रेषक/संरचक के माध्यम से उससे पृथक रहने वाले अर्थ का संकेतन होता है, चूँकि पृथक अर्थ का संकेतन होता है प्रतीति होती हैं अतः वह प्रतीक है।

अर्थ की प्रकृति सूक्ष्म होती है और इस सूक्ष्म अर्थ को/संप्रेष्य को संप्रेषित करने के लिये प्रयोक्ता वस्तु आदि माध्यमों को ग्रहण करता है। सामान्य संप्रेषण में सामान्य वस्तु के माध्यम से अपनी बात पहुँचाई जाती है। परन्तु प्रतीक में वह इस

सामान्य वस्तु को ग्रहण नहीं करता। इसके स्थान पर किसी एक विशेष वस्तु जो बाद में प्रतीक हो जाती है, का ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रतीक में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी के माध्यम से अपनी बात कहलाई जाती है। पर प्रतीक में इस एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का ग्रहण नहीं होता।

प्रतीक का प्रयोग ऐसे ही अनायास नहीं किया जाता है। भाव यह है कि प्रतीक के प्रयोग के मूल में रचनाकार का एक उद्देश्य निरन्तर रहता है, भावों की वह सघनता, वह विचार जो कि सामान्य भाषा के माध्यम से नहीं कहे जा सकते को व्यक्त करने के लिये रचनाकार को काई न कोई माध्यम चाहिये। ऐसी स्थिति में जब सारे माध्यम फीके पड़ गये हों तब उभरता है प्रतीक। इसलिये प्रतीक के प्रयोग के पीछे सोद्देश्यता निरन्तर छिपी रहती है। उदाहरण के रूप में हम एक "सजल नयन" मुद्रा को लेते हैं यह "सजल नयन" मुद्रा एक विशेष प्रतीकार्थ के लिये है वह यह है कि रचनाकार इस प्रतीक के माध्यम से एक ऐसी स्थिति को व्यक्त करना चाहता है जो कि 'दर्द' नामक सामान्य शब्द के प्रयोग से व्यक्त नहीं हो सकती साथ ही दर्द की सघनता इतनी गहरी है कि वह उसे निरन्तर अकुला रही है, वह निरन्तर छटपटा रहा है इसलिये कि उसे सामान्य भाषा में माध्यम मिल नहीं रहा है। अपने इसी भाव को व्यक्त करने की लाचारी की स्थिति में उसकी छटपटाहट को व्यक्त करने का जो सहारा सामने आता है वही सहारा प्रतीक होता है।

हिन्दी का प्रतीक शब्द अंग्रेजी सिम्बल का पर्यायवाची है। व्यवहार में प्रतीक शब्द अपनी विशेष लाक्षणिकता के कारण प्रकृष्ट अर्थ की व्यंजना करता है यह भाव व्यंजना का एक अपूर्व माध्यम माना जाता है। प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिये किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर पर विषय का

प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। डॉ० सुधांशु ने प्रतीक की प्रासंगिकता और पृष्ठभूमि की ओर संकेत करते हुये लिखा है –

"प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनसे केवल अर्थ की अभिव्यक्ति ही नहीं होती वरन् भावनाओं का उद्‌बोधन भी होता है जिन वस्तुओं में तनिक भी निजी विशेषता पूर्ण आकर्षण है तथा जिन पर दीर्घ सांस्कृतिक वासना का प्रभाव पड़ा है वे शब्द हमारे काव्य में प्रतीक का काम करते हैं प्रतीक के स्वरूप में कुछ न कुछ ऐसी व्यंजना रहती है जिससे भावनाओं को विकास के संकेत मिल जाते हैं।"

भाषा को अधिक सारगर्भित बनाने के लिये प्रतीक अधिक सहायक होते तथा अभिव्यक्ति में अधिक प्रभावशीलता की सृष्टि करते हैं। समर्थ कवि ही इनका शुद्ध प्रयोग कर सकता है। प्रतीकों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के अपूर्व संयोग के कारण कथ्य में रोचकता आती है साथ ही प्रतीकों में अभिव्यक्ति का गुण भी होता है जिसमें यह व्यंजना का गुण अधिक मात्रा में होगा वह कवि उतना ही सफल और समर्थ माना जायेगा।

"कवि प्रतीकों के द्वारा भावनाओं की सशक्त व्यंजना करने में सफल होता है। जब शब्द कवि के भावों को वहन करने में असमर्थ हो जाते हैं उस समय रचनाकार प्रतीकों के माध्यम से ऐसे चित्र निर्मित करता है, जो उसकी भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होते हैं इनके द्वारा मस्तिष्क किसी अनुभव का भावन करता है।"[1]

प्रतीक कम से कम शब्दों द्वारा अधिक अर्थ व्यंजित कर शिल्प को प्रभावोत्पादकता प्रदान करते हैं। प्रतीक शब्द अत्यन्त व्यापक है जो सदैव किसी न किसी सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। सामाजिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से प्रतीक का महत्व है। सामाजिक दृष्टि से ये हमारी भाव-परम्परा के स्मृति चिन्ह हैं जिन्हें हम समय के

---

१. निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व – धनंजय वर्मा, पृ० २०४

साथ-साथ नये अर्थों से संयुक्त करते रहते हैं। साहित्यिक प्रतीक कुछ ऐसे प्रभाव से समन्वित होते हैं। जो मन की गहराइयों से उद्‌भूत होते हैं। चूँकि प्रतीक मानव की पूरी प्रक्रिया का द्योतन करता है, इसीलिये उसका प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार एक प्रतीक संक्षेप में गंभीर और विस्तृत अर्थ की व्यंजना करता है। डॉ० रणजीत के अनुसार, "किसी शब्द में प्रतीकात्मकता तब आती है जब वह अपने साधारण अर्थ के अतिरिक्त कोई बड़ा अर्थ वहन करता है।'[1] सामान्यतया प्रतीकों का प्रयोग काव्य की सरल और सहज अभिव्यक्ति में बाधक होता है और यह बाधा तब और जटिल हो जाती है जब कवि मनमाने प्रतीक गढ़ने लगता है। डॉ० रणजीत की दृष्टि में "साहित्य में प्रतीकात्मकता तब सार्थक होती है जब या तो उस पर सामाजिक राजनीतिक नियंत्रण तगड़ा हो और या साहित्यकारों को किसी ऐसे अलौकिक अनुभव को व्यक्त करना हो, जिसे सीधे ढ़ंग से कहा ही न जा सकता है।[2]

प्रतीक की परिभाषा :-

किसी विशिष्ट अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को प्रतीक कहते हैं। कविता में कम शब्दों के प्रयोग और अधिक अर्थ प्रदान करने के मोह ने प्रतीकों को जन्म दिया। यह एक सशक्त अभिव्यंजना शैली है, जिसमें गहन, सूक्ष्म, व्यापक तथा सम्मोहक अर्थ-बोधक क्षमता निहित है। 'प्रतीक' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'सिम्बल' शब्द का पर्यायवाची है। "वैदिक एवं संस्कृत साहित्य में यद्यपि 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग हमें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथापि आधुनिक हिन्दी साहित्य, विशेषतया काव्य, में प्रतीक शब्द को जिस रूप में ग्रहण किया गया है, उसका सम्बन्ध अंग्रेजी के 'Symbal' शब्द से है।[3] 'प्रतीक' अथवा 'सिम्बल' शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा

---

१. *निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - धनंजय वर्मा, पृ० २०४*

२. *हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत ,पृ० ३२७*

३. *हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, दसवां संस्करण, पृ० ६६६*

अनेक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी। 'सिम्बल' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा से है, जिसमें यह ऐसे चिन्हों की ओर संकेत करता है जैसे किसी खण्डित सिक्के के दो आधे टुकड़े, जिनका अनुबंध करने वाले दलों के बीच विनिमय होता था अथवा कोई ऐसी निशानी जो किसी व्यक्ति की पहचान प्रमाणित करती थी, जैसे किसी सैनिक का बिल्ला या संकेत शब्द।[१]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में कहा गया है - "प्रतीक (एक चिन्ह) किसी दृश्य वस्तु के सादृश्य का बोध करता है, जो दिखाई नहीं जाती, किन्तु उसके साहचर्य से अनुभूति की जाती है। इसका संप्रेषण, प्रतीक के साथ प्रायः सम्बन्ध रखने वाले विचारों के द्वारा होता है। इस प्रकार खजूर-शाख की छाप विजय का प्रतीक है और लंगर आशा का।" [२]

"प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है। प्रतीक अप्रस्तुत रूप में अवतार ही है।" [३]

डॉ० रस्तोगी क निम्नांकित परिभाषा इतनी व्यापक नहीं है जितनी डॉ० सुधीन्द्र की है-

"प्रतीक का अर्थ भी होता है प्रतिरूप या प्रतिभा अथवा वह वस्तु या भाव जो अंश होकर भी समग्र के लिए व्यवहृत हो।"[४]

"प्रतीक किसी विचार, संवेग या अनुभव का दृश्य अथवा श्रव्य चिन्ह अथवा लक्षण है, जो उसकी व्याख्या करता है, जो पर्यवेक्षण के क्षेत्र में आने वाली किसी वस्तु के माध्यम से केवल मस्तिष्क और कल्पना द्वारा वस्तुतः ग्राह्य हो सकता है।"[५]

---

१. *The Symbolic language of Religion - The Omas Fewatt - page २६-२७*

२. *Encyclopaedia Britanica Vol XXVI-I - page २८४*

३. *डॉ० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ० ३६४*

४. *डॉ० राजाराम रस्तोगी : हिन्दी काव्य की अतंश्चेतता - पृ० २०५*

५. *Encyclopaedia of Religion & Ethics (Vol XII) - page १३६*

प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि मलार्मे की परिभाषा उपर्युक्त व्याख्याओं से भिन्न प्रकार की है-

"प्रतीक जीवन के अनेकत्व को संगोपित करने एवं एकत्व को अभिव्यक्त करने वाला एक सूत्र है।"[१]

विश्व कवि रवीन्द्र प्रतीक की आवश्यकता को इन शब्दों में समझाते हैं -

"दार्शनिक अपनी प्रणाली का निर्माण इस ढ़ंग से करता है जैसे वह सहजानुभूति एवं संचेतना के भारी अतः प्रवाह को झेलने के लिये सेतुबन्ध का निर्माण कर रहा हो इसी प्रकार कवि अपने अनुभव के भीतर ही - किन्तु अनुभव से स्वतंत्र एक शक्ति का अन्वेषण कर लेता है। वह प्रतीक का विधान करता है, जैसे अन्य व्यक्ति खतरे से सुरक्षा करने अथवा दो भूमियों को जोड़ने के लिये किसी बांध या पुल का निर्माण करते हैं।"[२]

भारतीय मनीषियों ने 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग प्रभूत मात्रा में किया है, पर वैदिक और संस्कृत साहित्य में जिस हद तक इसे स्वीकार किया गया है उससे आगे इसकी अर्थ-व्याप्ति है। अमरकोश में (मनुष्य वर्ग, श्लोक ७०) 'प्रतीक' का प्रयोग इस प्रकार है -

अंग प्रतीकोऽक्ययवोऽपवनोऽन्य कलेवरम ।।

क्षेम के अनुसार, "प्रतीक का अर्थ हुआ - वह वस्तु जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके, अथवा वह मुख्य चिन्ह जो मूल का परिचायक हो।"

ऑगडेन तथा रिचर्डस के अनुसार "उचित रूप से प्रयुक्त प्रतीक इस प्रकार के विषयों में, अत्याधिक सरलतापूर्वक पहचानी जाने वाली संवेदनशील सह वस्तुओं के

---

१. Mallarme - W. Fawlie - page ३०

२. Peronality - Rebindranath Tagore - Page- ९६

लिये अपरिहार्य स्थानापन्न होते हैं।"[1]

प्रतीक की भारतीय एवं पश्चिमी अनेक परिभाषाओं के विवेचनोपरान्त डॉ० नित्यानन्द शर्मा ने प्रतीक की निम्नांकित परिभाषा प्रस्तुत की है -

"अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तुविधान को प्रतीक कहते हैं, जो देशकाल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावना को जागृत करता है।"[2]

डॉ० प्रतिभा कृष्णबल के शब्दों में "प्रतीक अभिव्यंजना की एक अभिनव वैचित्रपूर्ण प्रणाली है।[3]

डॉ० भागीरथ मिश्र ने भी प्रतीक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुये लिखा है, "अपने रूप गुण कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु भाव विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।[4]

डॉ० कुमार विमल के अनुसार "प्रतीक विधान के सहारे कलाकार दृश्य जगत के अप्रस्तुतों के द्वारा अदृश्य सत की, जो अभिव्यक्ति के प्रचलित माध्यमों की सीमा के कारण अनिवर्चनीय है, संकेत व्यंजना करता है। प्रतीक विधान में 'फोनामेना' के द्वारा 'न्यूमेना' का संकेत किया जाता है, वस्तुतः यह व्याख्यात्मक परिभाषा भी 'दृश्य द्वारा अदृश्य के संकेत' की अवधारणा पर टिकी हुयी है।"

---

१. C.K. Ogden and I.A. Richards - The meaning of meaning, Page २०३
२. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान : डॉ० नित्यानन्द शर्मा, पृ० २१
३. छायावाद का काव्य-शिल्प-प्रतिभा कृष्ण बल - पृ० १६७
४. महेश भटनागर - संतरण पृ० ३४०

वेबस्टर का मत है कि "प्रतीक वह है जो संबंध सूत्रता, साहचर्य, परम्परागत रीति सचेतन रूप में नहीं वरन् संयोगवज्ञात उत्पन्न समरूपता के आधार पर किसी दूसरे का प्रतिनिधित्व या संकेतन करता है वह किसी अदृश्य वस्तु का जैसे कि किसी विचार का किसी गण का अथवा चर्च या राज्य जैसी किसी समष्टिगत सत्ताा का दृश्य चिन्ह होता है।"

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'प्रतीक' बिम्ब का रूढ़िगत स्वरूप है। इस संदर्भ में डॉ० शिवकरण सिंह का विचार उल्लेखनीय है बिंब निर्माण की प्रक्रिया प्रतिभा या विधायक कल्पना की मुखापेक्षी होती है। जब विधायक कल्पना मूर्त रूप में कुछ अभिव्यक्त करती है तो बिंब की रचना होती है। जब ये बिंब किसी निश्चित अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं, तो उन्हें प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार प्रतीक और बिंब अन्योन्याश्रित सिद्ध होते हैं।"[1]

सामान्य रूप से देखने पर प्रतीक अलंकार का ही रूप ज्ञात होता है परन्तु पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों ने इसे शिल्प के रूप में स्वीकार किया है। सामान्यतया देखने पर तो प्रतीक का क्षेत्र बड़ा व्यापक दिखाई पड़ता है। विज्ञान, तर्कशास्त्र, गणित, मनोविज्ञान सभी जगह प्रतीकों का प्रयोग देखने को मिलेगा। परन्तु एक रचनाकार के लिये जो प्रतीक का अर्थ है वह इन सबसे भिन्न तथा विशिष्ट है। एक रचनाकार का सम्बंध ऐसे प्रतीकों से होता है जिनका निर्माण अनुभव अथवा अनुभूति की विशिष्टावस्था को द्योतित करना होता है। प्रतीकों के माध्यम से काव्य में कवि की भाषा चमत्कृत हो उठती है। शब्द अपने अभिधेयार्थ से मुक्त होकर व्यंजनात्मक तथा लक्षणात्मक हो जाते हैं। अभिव्यक्ति मनोहरता की चादर ओढ़ कर रहस्यमय बन जाती है। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही रचनाकार के लिये प्रतीक एक बहुत बड़े काम की वस्तु रही है। इन उद्देश्यों के साथ ही काव्य में अभिव्यक्ति को संचित करने तथा अर्थ की सघनता

---

१. महेश भटनागर - संतरण पृ० ३४१

को सम्प्रेषित करने के लिये प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त अनेक तर्कयुक्त अभिमतों का अनुशीलन करने के पश्चात् हमारी यह मान्यता है कि 'प्रतीक' नवीन काव्य रचना के संदर्भ में पाश्चात्य 'सिम्बल' के पर्याय के रूप में एक ऐसी सशक्त अभिव्यंजना शैली है जिसमें अद्भुत भावबोधक क्षमता और सूक्ष्म तलस्पर्शी संवाहक शक्ति है और जिसमें देश काल और संस्कृति के रंग और सुंगन्ध हैं।

२. प्रतीक के प्रकार :-

प्रतीकों का विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण करने के प्रयास किये गये हैं - कहीं रूप के आधार पर, कहीं अर्थ के आधार पर तो कहीं स्त्रोत के आधार पर। ऐसे भी वर्गीकरण देखने में आए हैं, जिनमें इन तीनों आधारों को एक साथ अथवा दो आधारों को एक साथ ग्रहण करने की प्रवृत्ति है। इस दृष्टि से केदारनाथ सिंह के प्रतीकों के वर्गीकरण को देखा जा सकता है। उन्होने प्रतीकों के ये वर्ग मानें हैं -

१. परम्परागत प्रतीक
२. साम्प्रदायिक प्रतीक
३. आध्यात्मिक प्रतीक
४. रहस्यात्मक प्रतीक
५. वैयक्तिक प्रतीक
६. स्वप्नपरक प्रतीक [१]

कई विद्वानों ने प्रतीकों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है -

१. वैयक्तिक प्रतीक
२. परम्परागत प्रतीक
३. प्रकृत प्रतीक [२]

---

१. *कल्पना और छायावाद : केदारनाथ सिंह, पृ० १०४*

२. *Theory of Literature : Wallek and Warrum, P. १६४*

इस प्रकार के वर्गीकरण उपयुक्त नहीं कहे जा सकते। वर्गीकरण किसी एक निश्चित आधार पर होना चाहिए और उसकी एक निश्चित वैज्ञानिक पद्धति होनी चाहिए। अरबान महोदय ने प्रतीकों के वर्गीकरण के रूप को आधार रखा है।[1] और उनका वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है, पर 'रूप' पर आधृत वर्गीकरण समीचीन नहीं कहा जा सकता। प्रतीक के रूप में तो निरन्तर परिवर्तन घटित होते रहते हैं। इसीलिये, रूप के आधार पर वर्गीकरण करते हुये भी कवियों ने 'स्त्रोत' के आधार को छोड़ा नहीं है। वस्तुतः स्त्रोत के आधार को ग्रहण करने से ही प्रतीकों का सौन्दर्यात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से, भली-भाँति विवेचन किया जा सकता है और उनकी अनेकरूपा समृद्धि को आकलित किया जा सकता है। आधुनिक हिन्दी कविता के प्रतीक-विधान को विकास-क्रम की दृष्टि से समझने के लिये इस आधार को ग्रहण करना अत्यावश्यक है। प्रतीकों के मुख्य रूप से तीन 'स्त्रोत' कहे जा सकते हैं। ये हैं-

१. प्रकृति
२. संस्कृति
३. और सिद्धांत

इनके आधार पर प्रतीकों के तीन वर्ग निर्धारित किये जा सकते हैं :-

(क) प्राकृतिक प्रतीक
(ख) सांस्कृतिक प्रतीक
(ग) सैद्धांतिक प्रतीक

प्रकृति के जड़-चेतन क्षेत्रों से संबद्ध प्रतीकों को प्राकृतिक प्रतीक अथवा प्रकृति के क्षेत्र से गृहीत प्रतीक कहा जा सकता है। सांस्कृतिक प्रतीक के अन्तर्गत पुराण, इतिहास एवं धर्म से गृहीत प्रतीक कहा जा सकता है। सैद्धांतिक प्रतीकों के अन्तर्गत

---

१. *Language and Reality : W. M. Urban, P. ४१४*

प्रविधि के अन्य क्षेत्रों से गृहीत प्रतीकों को भी लिया जा सकता है। मानवकृत वस्तु-जगत और व्यावहारिक जीवन ऐसे अन्य स्त्रोत भी हैं, जिनसे कवि अपनी प्रतीकगत सामग्री ग्रहण करते हैं। अतः प्राकृतिक सांस्कृतिक और सैद्धांतिक प्रतीकों के अतिरिक्त मानवकृत वस्तु-जगत और व्यावहारिक जीवन से संबद्ध प्रतीकों के दो अन्य वर्ग भी माने जा सकते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के प्रतीकों का एक सुनिश्चित विकास-क्रम है। प्रतीकों के इस ऐतिहासिक विकास क्रम का विवेचन उपर्युक्त वर्गीकरण द्वारा भली-भाँति हो सकता है।

नरेन्द्र मोहन ने भी स्त्रोत के आधार पर प्रतीकों का लगभग वही वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जो बाजपेयी जी का है। नरेन्द्र मोहन के अनुसार प्रतीकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

(क) प्राकृतिक प्रतीक

(ख) सांस्कृतिक प्रतीक

(ग) सैद्धांतिक प्रतीक

इन वर्गों का विश्लेषण करते हुये उन्होंने लिखा है कि प्रकृति के जड़-चेतन क्षेत्रों से सम्बद्ध प्रतीकों को प्राकृतिक प्रतीक अथवा प्रकृति के क्षेत्र से गृहीत प्रतीक कहा जा सकता है। सांस्कृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत पुराण, इतिहास एवं धर्म से सम्बद्ध प्रतीकों को लिया जा सकता है। सैद्धांतिक प्रतीकों के अन्तर्गत ऐसे प्रतीक आते हैं, जो वैज्ञानिक, दार्शनिक और राजनैतिक सन्दर्भों से स्फूर्त हों अथवा जिनमें विज्ञान, दर्शन एवं सिद्धांतों का प्रतीकात्मक विधान किया गया हो। सैद्धांतिक प्रतीकों के अन्तर्गत प्रविधि के अन्य क्षेत्रों से गृहीत प्रतीकों को भी लिया जा सकता है।[1]

डॉ० रणजीत के अनुसार स्त्रोत के आधार पर काव्य प्रतीकों को निम्नलिखत

---

1. *आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान : नरेन्द्र मोहन, पृ० ५७*

वर्गों में रखा जा सकता है -

१. प्रकृति सम्बन्धी प्रतीक

२. पौराणिक, धार्मिक प्रतीक

३. ऐतिहासिक प्रतीक

४. वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रतीक

५. जीवन से सम्बन्धित प्रतीक

६. सामाजिक-राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित प्रतीक।[1]

जहाँ तक आधुनिक कविता में प्रतीक विधान के सन्धान का प्रश्न है उसे कुछ निश्चित वर्गों तक सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। आज की कविता जीवन के विविध क्षेत्रों से अपनी विषय-वस्तु का चयन करने के लिये स्वतंत्र है। इसलिये प्रतीक चयन में भी कवि किसी भी क्षेत्र से अपना सम्बन्ध जोड़ सकता है ,और चूँकि मानव जीवन का क्षेत्र असीम है, इसलिये प्रतीकों का भी स्रोत के आधार पर कोई अन्तिम वर्गीकरण प्रस्तुत कर पाना सम्भव नहीं है।

---

१. *हिन्दी की प्रगतिशील कविता : डॉ० रणजीत, पृ० ३२५*

(ब) नागार्जुन के काव्य में प्रतीक-विधान :-

रूप, गुण और भाव की अवगति कराने वाली वह कल्पना प्रतीक कहलाती है, जिसमें उपमेय का निगरण हो जाता है। प्रतीक या तो हमारे सामने किसी रूप को प्रस्तुत करता है या किसी गुण को या किसी भाव को। यह आवश्यक नहीं है कि प्रतीक प्रतीयमान से एकदम मिलते-जुलते हों। वे मिल भी सकते हैं - रूप और आकृति में और भिन्न भी हो सकते हैं, किन्तु गुण और स्वभाव में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होनी चाहिए। काव्य में प्रतीक के प्रयोग से भाषा में एक नयी अर्थवत्ता और नवीन शक्ति आ जाती है। नागार्जुन का काव्य जन का काव्य है। उसमें सीधी सरल भाषा शैली को अपनाया गया है, किन्तु ये सीधी सरल और व्यावहारिक शब्द ही अनेक बार प्रतीक बनकर आये हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि एक सफल व्यंगकार होने के नाते नागार्जुन के काव्य में प्रतीक अपनी अनिवार्यता लेकर आये हैं। प्रतीकों के सहारे ही यह कवि अपने अभीष्ट भाव की व्यंजना कर सकने में सफल हुआ है। 'भुस का पुतला' कविता में कांग्रेसियों को भुस का पुतला कहा गया है। देश की विविध समस्याओं को सुलझाने में उनकी अक्षमता को कवि नागार्जुन ने खेत में खड़े मौन पुतले के समान माना है। इस प्रतीक का उद्घाटन निम्न पंक्तियों में होता है -

सरग था ऊपर नीचे था पाताल
अपच के मारे बुरा था हाल
दिल दिमाग भुस का, खद्दर की थी खाल।[1]

नागार्जुन की इधर की कविताओं में भी अत्योक्ति पद्धति पर प्रतीक-योजना का सफल प्रयोग किया गया है। 'एक बंदरिया' को उपस्थित कर उसके माध्यम से किसी और ओर संकेत करना कवि का अभिप्रेत है -

---

1. *युगधारा (भुस का पुतला) पृ० १७०*

छतरी वाला जाल छोड़कर

अरे, हवाई डाल छोड़कर

एक बन्दरिया कूदी, धम से

बोली तुमसे बोली हमसे

बचपन में ही बापू जी का प्यार मिला था

सात समन्दर पार पिता के धनी दोस्त थे

देखो, मुझको यहीं नौलखा हार मिला था

पिता मरे तो हमदर्दी का तार मिला था

आज बनी मैं किष्किन्धा की रानी

सारे बन्दर सारे भालू भरा करें अब पानी

मुझे नहीं कुछ और चाहिए, तरुणों से मनुहार

जंगल में मंगल रचने का मुझ पर दारमदार

जी, चन्दन का चर्खा लाओ कातूँगी मैं सूत

बोलो तो किस-किस के सिर से मैं उतार दूँ भूत।[1]

स्पष्ट है कि बन्दरिया के द्वारा गाँधी जी की लाड़ली, पिता की मृत्यु पर देश-विदेश से शोक-संदेशों को प्राप्त करने वाली, अपने प्रतिद्वन्द्वियों से पानी भरवा लेने वाली जिस महिला नेत्री की ओर कवि संकेत करता है वह अपरिचित नहीं। कवि का यह प्रतीक बेजोड़ तथा व्यंग्यीय तिक्तता से भरा हुआ है।

'रानी मक्खी' भी इसी प्रकार की प्रतीक शैली में लिखी कविता है। देश की राजनीति को कवि ने मधुमक्खी का छत्ता माना है और उसमें ऐश-आराम फरमाती हुई रानी मक्खी को देखकर कहा है -

इधर झींगुरों की जमात है

---

१. *पाण्डुलिपि से।*

उधर सजी भौरों की महफिल

गीध पा गए दुआ तुम्हारी

धड़क रहा है अपना तो दिल

तुम्हें मुबारक शाही नखरे

तुम्हें मुबारक छत्ते की गद्दी नौ लक्खी।[1]

सन् १६६६ में राष्ट्रपति चुनाव के समय लिखी कविता 'आओ आओ' में भी मध्य में प्रतीक उपस्थित किये गये हैं :

मानव लौटा वहाँ चाँद का जिस्म खुरच कर

यहाँ छछून्दर बना बिलौटा सगी बहिन की नाक कुतर कर

पाँचों खूनी पाँचों हाथी जाने किधर छिपे जंगल में

उनका पट्ठा काँप रहा थर-थर दंगल में।[2]

'अच्छा हुआ कि जनता को मिल गयी तुम्हारी थाह' कविता भी कवि ने नेपाल की राजनीति पर प्रतीक के रूप में लिखी है।[3] युगधारा की 'कवि' कविता को भी इसी श्रेणी में रखना उचित होगा।[4]

कोटरगत नेत्र, धँसे हुए गाल

उदशंकर-कट के कुंतलीन बाल

गमन मराल का, चितवन चकोर की

कुहासा-सी भाषा, साँझ की न भोर की।

अपने विचारों को प्रभविष्णु एवं बोधगम्य बनाने के लिये नागार्जुन ने अपने

---

१. पाण्डुलिपि से

२. पाण्डुलिपि से

३. जनशक्ति, ०१ फरवरी, १६६१, पटना।

४. युगधारा, (कवि) पृ० ६०-६१

काव्य में अनेक प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है और इस प्रकार उनके काव्य में सांस्कृतिक, प्राकृतिक, सैद्धांतिक तथा वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है उनके प्रतीक मूलतः शोषित और शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से अपने मनोभावों को अभिव्यंजित कर अधिक मूर्त बना दिया है। राजनैतिक वर्ग के उनके प्रतीक साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी शक्तियों की युद्धकामी प्रवृत्तियों को उजागर करते हैं। लाल क्रान्ति से सम्बन्धित उनके प्रतीक एक नये समाज तथा नवयुग की प्रतिष्ठा का संकेत देते हैं।

नागार्जुन ने प्रतीकों में सम सामयिक समस्याओं, नेताओं और अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तियों आदि पर करारे व्यंग किये हैं और इन सभी के लिये उन्होंनें प्रतीकों का प्रयोग किया है। इनमें अर्थ-भार वहन करने की अद्भुत क्षमता है, प्रेषणीयता का विलक्षण गुण है।

समसामयिक समस्याओं पर 'घर के बाहर निकलेगी कैसे लाजवंती' कविता की कुछ पंक्तिया दृष्टव्य हैं -

फटे वस्त्र हैं, घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवंती
शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयंती
काम नहीं है, दाम नहीं है
चैन नहीं, आराम नहीं है
धुआँ भरा है दिल-दिमाग में

X X

पालक की पत्तियाँ गल गई
माखनचोर बने भू-स्वामी
कृषकों पर गोलियाँ चल गईं

X X

भूसी मिला-मिलाकर चीनी

बेच रहा बनिया का बेटा

कंकालों पर बिछा दी गई

खद्दर की सतरंगी चादर

X X

बूँद-बूँद पानी की खातिर

फसलों के शिशु तरस रहे हैं

लेकिन अनुदानी करुणा-धन

झीलों पर ही बरस रहे हैं

महल खड़े, चिमनियाँ खड़ी हैं

लाशें नीचे दबी पड़ी हैं।[1]

इसी प्रकार 'तालाब की मछलियाँ' कविता में तालाब प्रतीक है - प्रतिबद्ध जीवन का, जहाँ जीवन दमित है, कुण्ठित है, क्षुब्ध है, बाधित है, और जहाँ की मछलियाँ केवल अपने मालिक के स्वार्थ की सिद्धि के लिये हैं कवि ने तालाब की तुलना में नदी को अप्रतिबद्ध, स्वच्छन्द और स्वतन्त्र जीवन के प्रतीक के रूप में उपस्थिति किया है।

कोलतार से लगा चुका है पोची

किन्तु आज तो कोशी की धारा ने आकर

तोड़ दिया है बाँध

आज आ गई सखि, हम बाहर

एक-एक कर

उथल पुथल है जन-जीवन में

---

१. नागार्जुन रचनावली - २ : शोभाकान्त (तुमने कहा था कविता) पृ०सं० ५६-६०

सभी ओर उत्क्रांति हो रही

टूट रहे हैं अंत:पुर के ढ़ाँचे

आज या कि कल

तुम भी तो निकलोगी बाहर

हवेलियों से डेवढ़ियों से

X X X

अन्य हमारा मरण, आज सखि

धन्य हमारी हत्या

मिला मुक्ति का स्वाद [1]

और ये प्रतीक ही हैं जो कवि के अभिप्रेत को मनोरंजक और प्रभावी शैली में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। 'परसों था जंगल का राजा; कल था घायल शेर' में यदि पुराने कांग्रेस कर्मियों पर प्रतीक शैली में व्यंग्य किया गया है तो शासन में रहकर अत्याचार करने वाले प्रशंसको की स्थिति की अभिव्यंजना भी प्रतीकों के सहारे इन पंक्तियों में हुआ है, "जगती अशोक सिंहों पर बेशर्म उल्लुओं की जमात।" इसी प्रकार अपने स्वार्थ में लिप्त अवसरवादियों के लिये अपनाये गये ये प्रतीक देखिये -

"देखा हमने चिड़ियाखाना, सुना चीखना और चिल्लाना।

धवल टोपियाँ फेंक रहे थे, मगर गधों से रेंक रहे थे

धोती कुर्ते में थे हाथी, सूकर ऊँट थे जिनके साथी

बैलों के पीछे अनबोले, मचल रहे थे साँप-सपोले।।"

इन प्रतीकों के माध्यम से खादी वर्दी धारी नेताओं पर भरपूर व्यंग्य किया गया है।

---

१. नागार्जुन रचनावली - १ : शोभाकान्त (तालाब की मछलियाँ) पृ०सं० ११४

(ब) नागार्जुन के काव्य में प्रतीक विधान :-

नागार्जुन के काव्य में विभिन्न प्रकार के प्रतीक प्राप्त होते हैं।

१. प्रकृति संबंधी प्रतीक :-

नागार्जुन को प्रकृति से बड़ा प्रेम था, इसलिये इन्होंने प्राकृतिक क्षेत्र से अनेक प्रतीकों का चयन किया है। अपनी 'अरुणोदय' रचना में कवि ने प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

जय अरुणोदय
जय सिंदूरी किरण सुहानी
उछल रही है तुझे देखकर नई जवानी
दुरें ग्रहों का अन्त निकट है
सदाबहार बसन्त निकट है
शांतिपूर्ण सुखमय जीवन की खातिर यह संघर्ष हमारा
कैसे भला रुकोगी युग की गंगा की धारा। [१]

यहाँ 'अरुणोदय' और 'सिंदूरी किरण' – लाल क्रान्ति के लिये 'दुरेग्रह' शोषकों के लिये, 'सदाबहार बसंत' साम्यवादी व्यवस्था के लिये 'युग की धारा' का प्रयोग इतिहास की गति के लिये प्रतीकात्मक रूप में किया गया है।

प्रकृति अपने त्याग द्वारा मनुष्य को मानवता का संदेश देती है। वह विनाश, असमानता तथा शोषण का संदेश न देकर मनुष्य को परकल्याण, निर्माण और समानता का संदेश देती है। नागार्जुन ने प्रकृति को मानवता का प्रतीक माना है :-

मृत्यु नहीं जीवन का देते आए हैं संदेश
झूमते लहराते धान के पौधे

---

१. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ८३*

नाश नहीं निर्माण के प्रतीक हैं साक्षात्
दिग्दिगन्त फैले हरित-शाल्दल क्षेत्र
जिन्हें देख-देख अघाते नहीं नेत्र। [1]

'दूब' शोषित तथा निर्धन व्यक्ति का प्रतीक है। शोषक वर्ग 'दूब' की भाँति शोषित वर्ग की इच्छाओं तथा सम्मान को कुचलता रहता है, अपने पैरों से रौंदता रहता है। नागार्जुन ने 'दूब' को निर्धन वर्ग की हीनता तथा सहन शीलता का प्रतीक माना है :-

कवि हूँ! रुपंक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते!![2]

प्रकृति से लिये गये प्रतीकों में प्रकृति अपने वास्तविक रूप में यानी कि जीवन के रूप में सामने आती है जो कि बढ़ती व्यावसायिकता, युद्धों की विभीषिका से पूर्णतः नष्ट होने की कगार पर है -

"नाम नहीं होगा हरियाली का
पेड़-पौधे सूखेंगे,
न होगी घास, दूब नहीं दिखेगी
परिणत होंगे सारे ही खेत
चटियल मैदानों में।"[3]

प्रकृति से लिया गया एक उद्धरण और दृष्टव्य है -

---

१. *हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं ९८*
२. *सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० ३८*
३. *इस गुब्बारे की छाया में : नागार्जुन, पृ०सं० ३०*

हम भी मछली, तुम भी मछली

दोनों ही उपभोग की वस्तु हैं

ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को

अनुपम बतलाते हैं।"[1]

तालाब की एक मछली का ही प्रतीक दिया गया है यहाँ स्त्री को। इस माध्यम से नागार्जुन ने भोज्या और भोग्या को साथ-साथ रखकर देखा है और स्त्री की स्थिति की विडम्बना को रेखांकित किया है। लेकिन जब यही स्त्री प्रेमिका के रूप में जीवनदायिनी हो उठती है तो उसे 'जोत की फॉक' या किरण के रूप में भी देखा गया है। यह प्रतीक के दो भिन्न किनारे हैं -

"कर गयी चाक

तिमिर का सीना

जोत की फॉक

यह तुम थी

सिकुड़ गयी रग-रग

झुलस गया अंग-अंग

बनाकर ठूंठ छोड़ गया पतझार

उलंग असगुन - सा खड़ा रहा कचनार

अचानक उमगी डालियों की संधि में

छरहरी टहनी

पोर-पोर में गसे थे टेसू

यह तुम थी।"[2]

---

१. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ४४*

२. *सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० २०*

२. पौराणिक प्रतीक :-

दूसरी श्रेणी पौराणिक प्रतीकों की हैं, जिनका प्रयोग भी नागार्जुन की कविता में बहुतायत से हुआ है। उनका लोक से जुड़ाव इसका बड़ा कारण माना जा सकता है।

"कर रहे थे मात त्रिविकम के पुरान पैरों को
नाप रहे थे धरती का अनहद फासला।"[1]

ये त्रिविकम वामन के पुराने पैर रिक्शा चलाने वाले आम मेहनतकश के हैं जो कि इतनी ही गति से अपनी गाड़ी खींच रहा है।

दूसरा प्रतीक चतुर्भुज नारायण का है जो कौस्तुभ मणि निकालकर लाने के प्रयास में रत है -

दो-दो पैर
हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौन कौस्तुभ मणि।"[2]

ये चतुर्भुन नारायण नहीं किनारे पानी में कार्य की अपरिहार्यता और 'चतुर्भुज' उनकी क्षमता में विश्वास का प्रतीक है। पौराणिक चरित्रों में महाभारत के धृतराष्ट्र और भीम को आधुनिक संदर्भ में रखा गया है। एक और कविता 'वाणी ने पाए प्राणदान' में। इसमें लेखक हरिशंकर परसाई के सृजन की शक्ति से प्रभावित होने वाले आधुनिक युग के धृतराष्ट्रों एवं नकली भीमों का व्यौरा है :-

---

१. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० २३
२. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० २१

धृतराष्ट्र दुखी होंगे, नकली
भीमों का होगा अ-कल्याण
सदियों तक कुन्द नहीं होंगे
गुरु परसाई के वचन-बाण[1]

आधुनिक भारतीय समाज की विडम्बनाओं और तेजी से बदलते जीवन मूल्यों पर चोट करते हुये एवं अन्य पौराणिक प्रतीक –

"हजार फन फैलाए
बैठा है मारकर गुंजलक
अहं का शेषनाग
लेटा है मोह का नारायण [2]

शम्बूक एक पौराणिक प्रतीक है। वह शूद्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नागार्जुन ने शम्बूक के माध्यम से आजादी के बाद भारत के शूद्रों की दीन-हीन अवस्था का चित्रण किया है :-

लहू की फेंके थूक
मरे शूद्र-शंबूक
खेले क्रिकेट राम योजना बिहारी।[3]

हिडिम्बा और सुरसा पौराणिक प्रतीक हैं। नागार्जुन ने भारत के विकास के लिये बनी पंचवर्षीय योजनाओं को हिडिम्बा और सुरसा के माध्यम से संकेतित किया है :-

---

१. *सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० ७०*
२. *इस गुब्बारे की छाया में : नागार्जुन, पृ०सं० ३७*
३. *हजार-हजार बाँहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० ६२*

बताऊँ बताऊँ

कैसे लगती है -

पंचवर्षीय योजना?

हिडिम्बा की हिचकी, सुरसा की जँभाई!! [१]

गौतक ऋषि और अहिल्या पौराणिक प्रतीक है। गौतम ऋषि शोषक पुरुष के प्रतीक हैं। इन्द्र काम-लोलुप लंपट पुरुष का प्रतीक है और अहिल्या सदियों से शोषित नारी का प्रतीक है। नागार्जुन ने इन्हीं अर्थों में तीनों पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है :-

सह न सकी मैं मुनि का यह आक्षेप,

लगा टूटने रह-रह कोढ़-करेज

फिर भी किया नहीं मैने प्रतिवाद

शेष गरल की भाँति हो गया व्याप्त,

प्रबल ताप से लहू बन गया बर्फ,

ऐंठी जिह्वा, वाक्य हो गये बन्द -

चेष्टाएँ भी रह न सकीं अनिरुद्ध

धराशायिनी बनी, वत्स मैं, हंत। [२]

नागार्जुन ने नाथूराम गोडसे को हिरण्यकशिपु, अहिरावण दशकंधर का प्रतिनिधि माना है। ये तीनों पौराणिक प्रतीक मानवता के शत्रु माने जाते हैं। महात्मा गांधी का हत्यारा नाथूराम गोडसे भी मानव-विनाशक है।

वह जागरुक वह सावधान

वह मानवता का महाशत्रु

---

२. हजार-हजार बाँहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० ५४

३. रत्नगर्भ, पृ. सं. ५८-५६

वह हिरण्यकशिपु

वह अहिरावण

वह दशकन्धर

वह सहस्त्रबाहु

वह मनुष्यत्व के पूर्ण चन्द्र का सर्वग्रासी महाराहु।[1]

३. सांस्कृतिक प्रतीक :-

भारतीय संस्कृति में दधीचि ऋषि त्याग के प्रतीक हैं। उन्होंने मानव-कल्याण के लिये अपना शरीर ही त्याग दिया। अगर दधीचि के कर्तव्य और निष्ठा को आज के राजनेता आत्मसात् कर लें तो भारत का काया-कल्प हो जाये। नागार्जुन ने दधीचि का प्रयोग त्याग के प्रतीक के रूप में किया है और इन्द्र को आज के पदासीन नेता का प्रतीक माना है :

हे दधीचि, तुमसे घबराते हैं मान्धाता

नहीं पूछते तुमको भारत-भाग्य विधाता

देव हुये कृत-कृत्य, तुम्हारा तप जारी है

जन-जीवन आलोड़ित, अद्भुत लाचारी है

वह चाटुकार-दल से घिरा इन्द्र आज मुसका रहा। [2]

इस अवतरण में इन्द्र सत्ताधीश नेता का प्रतीक है।

---

१. युगधारा : नागार्जुन, पृ०सं० ४४

२. हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० २७

४. पशु जीवन से सम्बन्धित प्रतीक :-

नागार्जुन ने इन्दिरा गाँधी को प्रतीक मान कर उनकी कुटिलताओं एवं क्रूर व्यवस्थाओं को उजागर करने हेतु बहुत सारी रचनाएं की हैं। 'पा गये हैं' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

जहरीले सांपों में, हिंस जन्तुओं में
दूर एक टेकरी पर विराजमान है मांदा भेड़िया
अभी-अभी सलाम बजा के निकल गये है,
सिंह, बाघ, रीछ, भालू, गीदड़
गर्वीली चितवन में इधर उधर देख रही है
मांदा भेड़िया।

यहाँ मादा भेड़िया (इन्दिरा) भारत की टेकरी (प्रधानमंत्री की कुर्सी) पर विराजमान है और मंत्री, संसद-सदस्य, विधायक एवं तहसील एवं जिले स्तर के छोटे-बड़े नेता सभी उसकी सलामी बजा रहे हैं। वह गर्वीली चितवन में दरबार लगाये बैठी है। इस भेड़िया के चरणों में संसद सदस्य रूपी हाथियों का झुण्ड मस्ती में सहस्त्रों कमलों की भेंट चढ़ाने आ पहुँचा है।

एक अन्य कविता 'शान्ति का मोर्चा' में कवि ने गीधों का प्रतीकात्मक प्रयोग साम्राज्यवादी पूँजी पतियों के लिये किया है -

दानव है वह चाह रहा एकांगी जो सोना बटोरना
गीधों को ही आता है लाशें अगोरना।[1]

---

१. *हंस अंक १, अक्टूबर १९५०*

५. ऐतिहासिक प्रतीक :-

नागार्जुन ने कई स्थलों पर प्रतीकों का चयन इतिहास के क्षेत्र से किया है। 'शपथ' कविता में कवि ने लिखा है -

हृदय नहीं परिवर्तित होगा
क्रूर कुटिलामति चाणक्यों का। [१]

यहां 'चाणक्यों' का प्रयोग उन राजनेताओं के लिये किया गया है जो अपनी राजनीतिक चालों से केवल कुर्सी पर आसन जमाए रखना ही अपना परम धर्म मानते हैं। इसी कविता में आगे चलकर कवि इन राजनेताओं की क्रूरता और निर्दयता को व्यक्त करने के लिए उन्हें 'हिटलर का वंशज' कहता है -

हाँ बापू, निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे। [२]

'जय प्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की' कविता में भी नागार्जुन ने कांग्रेसी शासकों के लिये हिटलर-मुसोलिनी' जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है -

लगे बैठने गद्दों पर हिटलर-मुसोलिनी
हुई मूर्छिता भारत- माता ग्रामवासिनी। [३]

भगत सिंह का ऐतिहासिक प्रतीक लेकर नागार्जुन कह उठते हैं -

"भगत सिंह, अच्छा हुआ तुम न रहे।
अच्छा हुआ, फांसी के फन्दे पर झूल गये तुम।

---

१. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ३३*
२. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ३७*
३. *खिचड़ी विप्लव देखी हमने : नागार्जुन, पृ०सं० ९५*

ठीक वक्त पर शहीद हो गए

अच्छा किया तुमने

बहोत अच्छा । बहोतSSत अच्छा।"[१]

६. आर्थिक जीवन से सम्बन्धित प्रतीक :-

नागार्जुन ने कई प्रतीकों का चयन आर्थिक तथा औद्योगिक जीवन से किया। उदाहरण के लिये -

खादी ने मलमल से अपनी साठ-गांठ कर डाली है।

बिडला टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली है। [२]

यहाँ 'खादी' कांग्रेसी शासक तथा 'मलमल' 'पूँजीपतियों' का प्रतीक है।

७. मार्क्सवादी दर्शन से सम्बन्धित प्रतीक :-

जोंक संसार के शोषक वर्ग का प्रतीक हैं। जोंक पारंपरिक प्रतीक है। नागार्जुन ने इसका प्रयोग पूँजीवादी समाज के लिये किया है। जोंक के समान संसार के पूँजीपति गरीबों का खून चूसते हैं :-

गंगा-यमुना के कछार में

आ-आकर अंडा देंगी अब

दुनिया भर की जोंक

रामराज्य की सरल प्रजा का तरल रक्त

कितना सस्ता है !! [३]

---

१. *पुरानी जूतियों का कोरस : नागर्जुन, पृ०सं० १६*

२. *हंस मई, १९४९*

३. *युगधारा, पृ० १००*

अमेरिका पूँजीवादी, उपनिवेशवादी तथा साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक है और कोरिया तथा वियतनाम साम्यवादी अदम्य शक्ति के प्रतीक हैं। नागार्जुन ने संसार की दो विरोधी शक्तियों को प्रतीकात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है -

गली गली में आग लगी है घर-घर बना मसान
लील रहा कोरिया मुलुक को अमरीका शैतान
जूझ रहे किस बहादुरी से धरती के वे लाल
मुझे रातभर नींद न आती सुन-सिऊल का हाल
आज कोरिया, वियतनाम कल, परसों फिर कश्मीर
ट्रूमैनी खंजर बढ़ आया सबकी छाती चीर
गाँव-गाँव पर बम बरसेंगे, घर-घर होगा खाक
टुरूमैन को प्रिय है झुलसी लोथों की खुराक" [1]

नागार्जुन ने पीपल के पीले पत्तों को हासोन्मुखी रीति-रिवाजों तथा प्राचीन अर्थ व्यवस्था का प्रतीक माना है। लाल पत्तों को उन्होंने परिवर्तन कामी नयी सामाजिक व्यवस्था का सांकेतिक चिन्ह माना है :-

खड़-खड़-खड़ करने वाला
ओ पीपल के पीले पत्ते !
अब न तुम्हारा रहा जमाना
शकल पुरानी रंग पुराना
सीख पुरानी ढ़ंग पुराना
अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों

---

१. *युगधारा, पृ० १००*

तुमको तो अब गिरना ही है
बदल गयी ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनियाँ
हरे-हरे कुछ भूरे-भूरे टूसों से लद रही टहनियाँ। [1]

उन्होंने स्टालिन को साम्यवादी क्रान्ति का प्रतीक माना है, उसी के द्वारा रूस में साम्यवादी शासन-व्यवस्था प्रतिष्ठित हुई थी। वामन धूर्त सामन्तवादी और अंधविश्वासी व्यवस्था का प्रतीक है।महाराज बलि त्याग और भोलेपन के प्रतीक है। अमृत को नागार्जुन ने धन का प्रतीक माना है। स्टालिन के संदेश को आत्मसात् कर आज विश्व जन मानस जाग उठा है। अब उसे ठगा नहीं जा सकता है। पूँजी पर अब व्यक्ति विशेष का अधिकार न होकर जनता का अधिकार होगा। इन प्रतीकों के माध्यम से नागार्जुन ने आज की वैश्विक समस्याओं का चित्रण किया है :-

वामन बलि को अब न ठगेगा
अमृत सबके हाथ लगेगा
जय हो तेरी सूझ-बूझ की
अब सारा संसार जगेगा। [2]

दानव-दल पूँजीवादी शक्तियों-अमेरिका और ब्रिटेन का प्रतीक है और रूस तथा चीन साम्यवादी शक्तियों के प्रतीक हैं। नागार्जुन ने संसार की दो विरोधी व्यवस्थाओं को प्रतीकात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है :-

सारी मानवता निर्भय हो
दानव-दल की बिल्कुल क्षय हो
रूस-चीन पूर्वी योरूप के
जाग्रत जन-समाज की जय हो। [3]

---

१. हजार-हजार बाहों वाली, पृ०सं० १०३
२. हजार-हजार बाँहों वाली : पृ०सं० ३६
३. हजार-हजार बाँहों वाली : पृ०सं० ३८

हिटलर व्यक्तिवादी महत्वाकांक्षा बनाम साम्राज्यवादी युद्धकामी पैशाचिक प्रवृत्तियों का प्रतीक है। आइजनहावर उसी का वंशज है। नागार्जुन ने दोनों के काले कारनामों का चित्रण किया है :-

मौकार्थी पौधा जिनका, आइजनहावर सरदार
हिटलर की उन औलादों को लाख-लाख धिक्कार
झूठ-झूठ आरोप लगाए, जान गया संसार
देखो, शैतांनों ने ली अब स्वयं नकाब उतार। [1]

निष्कर्ष :-

नागार्जुन की बहुत सी काव्य रचनाएं प्रतीकात्मक रूप में भी लिखी गयी हैं। प्रमुख रूप से राजनीतिक एवं राजनीतिज्ञों की कुटिलता को व्यक्त करने में ऐसी कवितायें पूर्णरूपेण सफल रही हैं, क्योंकि प्रतीक अपने अर्थ से अलग अर्थ की ओर संकेत करता है। 'भुस का पुतला' नेहरू का प्रतीक है तो 'जाने तुम कैसी डायन हो' इन्दिरा को प्रतीक मानकर लिखी गयी कविता है। 'देखा सबने चिड़ियाखाना' कविता में चिड़ियाखाना भारतीय संसद का प्रतीक है, जहाँ संसद सदस्य एवं मंत्री रूपी पशु-पक्षी विचरण करते हैं। इनकी 'बाघिन' शीर्षक कविता में इन्दिरा गाँधी को प्रतीक माना गया है। इस बाघिन के जबड़ों से लहू की बूँदें टपक रही हैं; जो उन्मत्त होकर घूम रही है। 'बाघिन' शब्द द्वारा कवि तत्कालीन प्रधानमंत्री की भयावहता एवं क्रूरतम शासन व्यवस्था की पहचान कराता है। 'यह बदरंग पहाड़ी गुफा सरीखा' में इन्दिरा गाँधी का मुँह गुफा का प्रतीक बना है जिसके अन्दर सारे कानूनी ढ़ाँचे, संविधान की प्रतिया भी ग्रसित हैं। 'सत्य' को आपातकाल की स्थितियों का प्रतीक मानकर रचा गया है, जहाँ सच को लकवा मार गया है। उसे 'इमरजेंसी' का 'शाक' लगा है। यहाँ नागरिकों के मूल अधिकारों के समाप्त हो जाने की ओर स्पष्ट संकेत हैं।

---

१. हजार-हजार बाँहों वाली : पृ०सं० ३६

नागार्जुन ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रयोग एक नये संदर्भ में किया है और सन्दर्भ के साथ-साथ उनका अर्थ भी बदल गया है। पारंपरिक प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने समसामयिक वैश्विक समस्याओं का सम्प्रेषण किया है। 'वामन' और 'चाणक्य' को उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से देखा है। इसलिये इन दोनों प्रतीकों के सन्दर्भ में उनकी तथा भारतीय जनता की दृष्टि में वैषम्य दिखलाई देता है। सामाजवादी नेता लोहिया और जयप्रकाश को उन्होंने मार्क्सवाद के प्रसार-प्रचार में बाधक माना है। राजनीतिक एवं सामाजिक अंधविश्वासों पर व्यंग्य करते वे खुद मार्क्सवादी दर्शन से प्रतिबद्ध होकर मार्क्सीय अंधविश्वास में गिरफ्त हो गये हैं। आजादी के बाद के शोषित वर्ग की जो सच्ची तस्वीर उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से पेश की है, वह एक मशाल है। उसके माध्यम से हम आज के भारत के विभिन्न परिदृश्यों को देख सकते हैं।

नागार्जुन का प्रतीक -विधान सधा हुआ और परम्परा सापेक्ष है। इसलिये उसमें अर्थ-गाम्भीर्य भी अधिक है और सहज सम्प्रेषणीयता भी। 'तालाब की मछलियाँ' नारियों की पराधीनता और पीड़ा को बिम्बित करने में पूरी तरह सक्षम हैं। नागार्जुन ने इन प्रतीकों का प्रयोग परम्परा-सापेक्ष ढ़ंग से ही किया है। नग्न-बुभुक्षित द्रुपद-सुताओं का सुरक्षा के लिये त्राहि-त्राहि करना, पाँचों पाण्डवों का एक चित्त न हो पाना और विदुरों का मुद्रित-मुख नत-नयन कुर्सियों पर बैठे रहना - परम्परागत संस्कारों से भिन्न भाव नहीं जगाता है। शायद यही सब देखकर केदार नाथ सिंह ने लिखा था कि "केदार नागार्जुन की अपेक्षा अधिक आधुनिक हैं, उनकी ताजगी आधुनिक जीवन की ताजगी है। इसके विपरीत नागार्जुन की नवीनता परम्परा के परिष्कार और परिमार्जन से प्राप्त है।"[1]

---

1. *कवि : फरवरी, १९५७, पृ०सं० २०*

षष्ठम अध्याय

नागार्जुन का अलंकार एवं छंद विधान (गीत एवं शैली)

नागार्जुन का अलंकार एवं छंद विधान

(गीत एवं शैली)

(अ) नागार्जुन का अलंकार विधान :

१. काव्य में अलंकारों का महत्व

२. नागार्जुन के काव्य में अलंकार विधान

३. उपमा –

अमूर्त के लिये अमूर्त उपमान

मूर्त के लिये मूर्त उपमान

अमूर्त के लिये मूर्त उपमान

मूर्त के लिये अमूर्त उपमान

रूपक, अन्योक्ति, मानवीकरण, उदाहरण, विभावना, अपन्हुत, विरोधाभास

(ब) छन्द का अर्थ एवं उसका महत्व :

१. नागार्जुन के काव्य में छंद विधान

२. दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय, अष्टपदी, अतुकांत छंद

(स) गीत :

लोकगीत, समूहगीत, प्रचारगीत, छायावादी गीत

(द) शैली :

वर्णात्मक या इतिवृतात्मक, उद्‌बोधनात्मक, संबोधनात्मक, काव्यात्मक, संवाद शैली, आत्मकथन शैली, भावात्मक शैली, नाटकीय शैली, व्यंग्यात्मक शैली।

१. अलंकार का अर्थ व परिभाषा :-

'अलंकार' शब्द का वाच्यार्थ है - 'आभूषण', और 'आभूषण' का अर्थ है - भूषित करने वाला या शोभा बढ़ाने वाले। सामान्य बोलचाल की भाषा में आभूषण को गहने भी कहा जाता है। आभूषण या गहने पहनने से तन (शरीर) की शोभा में वृद्धि होती है, अतः 'अलंकार' या 'आभूषण' शोभाकारक उपादान ही कहलायेंगे। कह सकते हैं, जिस प्रकार आभूषण धारण करने से तन की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार काव्य में अलंकारों के प्रयोग से उसमें शोभा की वृद्धि होती है।

'अलंकार' की विद्वानों ने अनेकशः परिभाषायें दी हैं। यथा - अलंकरोति इति अलंकारः। अर्थात् आभूषित करने वाले (शोभा बढ़ाने वाले) उपादान ही अलंकार कहलाते हैं।

वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृतिः । - भामह

अर्थात् शब्द और अर्थ की विचित्रता (वैशिष्ट्य) ही अलंकार है।

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते । -दण्डी

अर्थात् काव्य को शोभा प्रदान करने वाले धर्म (तत्व) ही अलंकार हैं।

अभिद्यान प्रकार विशेषा एवं चालंकाराः। -रूद्रट

अर्थात् कथन (अभिव्यक्ति) के विशिष्ट प्रकार ही अलंकार हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी है :-

"अलंकार है क्या? वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियाँ।"

आगे अपनी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल का कहना है - "वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप रंग

या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रंग-रूप मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्म वाली अन्य वस्तुओं को रखना पड़ता है। कभी-कभी बात को घुमा-फिराकर कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं। "स्पष्ट है, अलंकार कथन या अभिव्यक्ति की विशिष्ट विधि या प्रणाली हैं। मोटे तौर पर हम इसे यूँ भी समझ सकते हैं कि किसी भी कथन को चारुता प्रदान करने वाले या उसे आकर्षक अथवा विशिष्ट बनाने वाले उपादान ही अलंकार कहलाते हैं।

प्रो० विश्वम्भर 'अरुण' के शब्दों में अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है -

"अलंकार कथन की वह विशिष्ट प्रणाली है जो कथन को अन्य सामान्य कथन से पृथक कर ऐसी चारुता और आकर्षण प्रदान करता है कि वह काव्य की संज्ञा से अभिहित हो जाता है।"

काव्य में अलंकार का महत्व :-

अलंकार काव्य के लिये अत्यन्त उपादेय हैं। अलंकारों की सहायता से ही सामान्य कथन भी काव्य की संज्ञा प्राप्त कर पाने में समर्थ हो पाता है। अलंकार काव्य रूपी तन के वस्त्राभूषण हैं, अर्थात् जिस प्रकार मानव-शरीर की शोभा और सार्थकता उसके द्वारा वस्त्राभूषण धारण करने से ही होती है, उसी प्रकार अलंकारो के प्रयोग के बाद ही कोई कथन काव्यत्व के महत्व को पाने में समर्थ हो पाता है।

अलंकारों के प्रयोग से काव्य में आकर्षण और चारुता आती है।

अलंकारों से काव्य अधिक प्रभाव पूर्ण होता है।

अलंकारों के प्रयोग से अभिव्यक्ति में अधिक स्पष्टता और सुबोधता आती है।

अलंकार जहाँ एक ओर शब्द की शक्ति को सामर्थ्य प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर उसकी अर्थवत्ता को अधिक ऊर्जावान बनाकर काव्य के प्रभाव में वृद्धि करते हैं।

अलंकारों के प्रयोग से भाषा के शाब्दिक-प्रयोग में चमत्कार और चारुत्व का समावेश होता है।

अलंकार भी कविता के शिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। भारतीय काव्य शास्त्र में तो इन्हें इतना महत्व दिया गया कि विचारकों के एक पूरे समुदाय में इन्हें काव्य की आत्मा तक घोषित किया। यूरोपीय और एशियाई भाषाओं में भी काव्य शिल्प के एक अंग के रूप में अलंकारों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। यह थोड़े आश्चर्य की बात है कि यूनानी, अरबी, संस्कृत और आधुनिक भाषाओं में प्रधान अलंकार लगभग एक सरीखे हैं।[१] इसका कारण यह है कि अलंकारों के मूल में मानव मन की कुछ समान वृत्तियाँ हैं।

डॉ० नगेन्द्र ने अलंकारों के मनोवैज्ञानिक आधार पर विचार करते हुये सभी अलंकारों के कुछ मूल आधार निर्धारित किये हैं। ये हैं : साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार। लगभग सभी अलंकार इनमें से किसी न किसी प्रक्रिया का सहारा लेते हैं और हमारे मन में क्रमशः स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, अन्विति, जिज्ञासा और उत्पन्न करते हैं। [२]

आधुनिक हिन्दी कविता में संस्कृत साहित्य-शास्त्र में वर्णित कई प्रमुख अलंकारों के प्रयोग के अतिरिक्त कुछ ऐसे अलंकारों का भी प्रयोग मिलता है। जिन्हें अंग्रेजी काव्यशास्त्र में तो अलग स्वतंत्र महत्व दिया गया है, पर संस्कृत काव्य-शास्त्र में जिन्हें शब्द-शक्ति के ही रूप मान लिया गया है। ऐसे अलंकारों में मानवीकरण, विशेषण, विपर्यय और नादार्थ-व्यंजना प्रमुख हैं।

अलंकारों के प्रगतिशील कविता का दृष्टिकोण मोटे तौर पर वही रहा है, जिसे

---

१. *वेलेक एड वारेन : थ्यौरी ऑफ लिटरेचर, पृ १६४*

२. *नगेन्द्र : रीति काव्य की भूमिका, दिल्ली पॉचवा संस्करण पृ० ६५*

पन्त जी की ये बहु उद्धत पंक्तियां व्यक्त करती हैं :

तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी क्या तुम्हें चाहिए अलंकार?

- वाणी गाम्या

वह साधारणतः अलंकारों को 'भार' और 'मोह के बंधन' ही समझते रहे हैं। पर यह बात यत्नज कृत्रिम अलंकार विधान के लिये ठीक है, सहज भाव से कविता के साथ आने वाले अलंकारों के प्रति विद्वेष भाव प्रगतिशील कवियों में कभी नहीं रहा और बाद के प्रयोगशील रूझान के प्रगतिशील कवियों में तो, खासतौर से नरेश मेहता में हमें यत्नज पर साथ ही उपयुक्त और सुन्दर-अलंकृति भी मिलती है।

नागार्जुन के काव्य में अलंकार विधान :-

काव्य के सौंदर्य विधान में अलंकारों का विशेष महत्व है। जिस प्रकार किसी सुन्दर रमणी को आभूषणों से सुसज्जित कर देने पर उसके सौंदर्य में चार चॉद लग जाते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ कविता अलंकारों का पुट पाकर अधिक प्रभाविष्णु बन जाती है। इसका अर्थ यही नहीं है कि बिना अलंकारों के कविता की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। कई बार अलंकार शून्य कविता अलंकारों से बोझिल कविता की तुलना में अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है। अलंकारों की स्वीकृति काव्य के सन्दर्भ में वहीं तक मानी जा सकती है, जहाँ तक वह काव्य की सहजता और स्वाभाविकता में बाधक न हो। नागार्जुन काव्य की सहजता के पोषक हैं। इन्होंने प्रयोग के लिये अलंकारों का वरण नहीं किया, पर जो अलंकार काव्य के प्रवाह में स्वभावतः आ गये हैं, उनकी उपेक्षा भी नहीं की। शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों के प्रति इन्होंने अपनी रुचि अधिक दिखाई है। अर्थालंकारों में भी उपमा, रूपक, अन्योक्ति, मानवीकरण, विरोधाभास आदि का प्रयोग इनके काव्य में अधिक हुआ है।

उपमा :-

जहाँ किसी प्रसिद्ध वस्तु के साथ तुलना की जाये ,वहाँ उपमा अलंकार होता है। नागार्जुन ने उपमा अलंकार की दृष्टि से हर प्रकार की उपमान योजना का सफलता पूर्वक निर्वाह किया है। उदाहरणार्थ -

अमूर्त के लिये अमूर्त उपमान :-

सबके सुखाकी कलित कल्पना
मादकता सी छा आई है दिल-दिमाग पर [1]

यह अमूर्त के लिये अमूर्त उपमान है क्योंकि सुख भी अमूर्त है और मादकता भी अमूर्त का संकेत है।

मूर्त के लिये मूर्त उपमान :-

छाटे-छोटे मोती जैसे दाँतों की किरणें बिखेर कर
नील कमल की कलियों जैसी आँखों में भर अनुनय सादर।[2]

यह मूर्त के लिये मूर्त उपमान है क्योंकि 'मोती जैसे दाँत' एक मूर्त उपमान है और नीलकमल की कलियों जैसी आँखें भी मूर्त का संकेत हैं।

अमूर्त के लिए मूर्त उपमान :-

नरम-नरम ऊनी लिबास सी
पूस मास की धूप सुहावन [3]

यह अमूर्त के लिए मूर्त उपमान है, क्योंकि ऊनी लिबास सी एक अमूर्त संकेत है और पूस मास की धूप सुहावन एक मूर्त संकेत है।

---

१. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १६७*
२. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ११*
३. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १५८*

मूर्त के लिए अमूर्त उपमान :-

उलंग असगुन-सा खड़ा रहा कचनार।[1]

यह मूर्त के लिए अमूर्त उपमान है क्योंकि 'कचनार' एक मूर्त उपमान है और असगुन अमूर्त का संकेत है।

परम्परागत उपमानों का प्रयोग करते समय तो नागार्जुन उपमेय और उपमान में गुण, आकार अथवा प्रभाव साम्य के प्रति सतर्क रहे ही हैं, पर जहाँ उन्होनें नये अप्रस्तुतों का चयन किया है, वहाँ भी वे इस सम्बंध में पर्याप्त जागरुक दिखाई पड़ते हैं।

उदाहरण के लिये :-

बिल्लौरी काँच सी काँति वाली यह गर्दन

बरगद-छी थतनार ऐसी पीठ

नन्हें मसूर - से ऐसे ये नेत्र[2]

यहाँ कवि ने कछुआ की गर्दन, पीठ और नेत्रों के लिये जो उपमान जुटाए हैं, उनमें गुण, प्रभाव और आकार का साम्य स्पष्ट है।

उत्प्रेक्षा :-

जब उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है, तब उत्प्रेक्षा अलंकार की सृष्टि होती है। कवि ने अपनी कल्पना के सहारे ऐसे अलंकारों की सुन्दर सृष्टि की है-

उड़ी जा रही नील गगन में

पवन पंख पर विमल वलाका

मानों विस्तृत कालिंदी के

---

१. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० १८

२. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १२४

श्याम सलिल में अविरल गति से

बहती चली जा रही कोई

श्वेत सहस्त्र पत्र पद्मों की

बनी-बनायी लम्बी माला।'

'भस्मांकुर' का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

"तभी कपोलों पर संकोच विलास

छिटके मानो मिला सुखद आभास"

'तुमने कहा था' काव्य संकलन से 'आए दिन बहार के' कविता की कुछ पंक्तियाँ :-

खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के

आए दिन बहार के।

'नवादा' शीर्षक कविता में उत्प्रेक्षा की एक झलक हम देख सकते हैं -

पीच रोड पर

घूसर दाग लहू के देखे

बेदम बूढ़े हाथी की खुरदरी पीठ पर

मसल गया हो कोई ज्यों

सूखा-सूखा सिन्दूर।

इन पंक्तियों में तरुणों के लहू, जो पुलिस की गोली से पीच रोड पर गिरे हैं, उसे देखकर कवि बूढ़े, खुरदरे पीठ वाले हाथी के मस्तक पर सिन्दूर रगड़ने की कल्पना करता है। उसे 'उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग' जैसी सोच निरर्थक लगती है।

---

१. हजार-हजार बाँहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० ६८

रूपक :-

१. बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेंगे

जन-जीवन का यान तभी आगे निकलेगा[1]

२. लहरा रहा है चारो ओर

अब घुटन डाह बेचैनी का समंदर

राग द्वेष-लोभ-मोह वासना का पारावार

तृप्ति और सुख की वैयक्तिक डोंगियों में बैठे

इत्मीनान का आनन्द भोग रहे हैं मुट्ठी भर लोग।[2]

सामाजिक जीवन के यथार्थ को अंकित करने के लिये कवि ने रूपक का सहारा लेकर सुन्दर बिम्ब खड़े किये हैं।

३. एक-एक शब्द हैं दुधारु गाय

उसका दुरुपयोग करना न हाय

रूपक अलंकार का प्रयोग नागार्जुन ने 'भस्मांकुर' में अधिक और अन्य कविताओं में कम किया है।

"हजारों बाहों वाली शिशिर विष कन्या

उतरी लेकर सॉसों में प्रलय की वन्या।।"

इसी क्रम में 'भस्मांकुर' में आए रूपक प्रयोगों की भी बानगी लीजिए। लगता है प्रगतिशील चेतना का सूत्रधार इन रूपकों में छायावादी हो गया है :-

'प्रकृति परी ने सजा हरित श्रृंगार', 'असमय हरियाली का पारावार', 'दो-दो दृगमणि चारों की धुति एक', 'दमक उठा गिरितनया का मुख पद्य', 'कहाँ दब गया जाने संशय-कीट' और 'स्वच्छ बर्फ की धवन मुलायम शाल' जैसे प्रयोग कवि की भावुकता के प्रमाण हैं।

---

१. तालाब की मछलियॉं : नागार्जुन, पृ०सं० ११६

२. तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ०सं० २३

'चना जोर गरम' कविता में देखिये :-

प्लान की नैया, स्पीच पतवार

देश का करिएगा उद्धार

यहाँ पर रूपक के माध्यम से प्लान रूपी नैया और 'स्पीच' रूपी पतवार से देश के उद्धार की बात कही गयी है।

अपहनुति :-

जब उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा जाय तब अपहनुति अलंकार होता है।

१. बाँदा नहीं, अरे यह तो गंधर्व नगर है

यहाँ बाँदा को देखकर कहा कि यह बाँदा नहीं, गंधर्व नगर है। इस प्रकार उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा गया।

२. यह मुर्ग नहीं, अलार्म घड़ी है जेल की

३. बिस्तर क्या था, जंगल था, मैं भागा सारी रात।

यहाँ मुर्गे की बांग को सुनकर कहा कि यह मुर्ग नहीं; अलार्म घड़ी है। इस प्रकार उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा गया है।

मानवीकरण :-

जहाँ अमानव पदार्थों (निर्जीव वस्तुओं) पर मानव सुलभ गुणों और क्रियाओं का आरोप किया जाता है, वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ :-

१. रंग-बिरंगी खिली-अधखिली

किसिम-किसिम की गंधों-स्वादोंवाली ये मंजरियाँ

तरुण आम की डाल-डाल टहनी-टहनी पर

झूम रही हैं .....

चूम रही हैं -

कुसुमाकर को ! ऋतुओं के राजाधिराज को !!

इनकी इठलाहट अर्पित है छुई-मुई की लोच-लाज को !!

तरुण आम की ये मंजरियाँ ...

उद्भित जग की ये किन्नरियाँ[1]

नागार्जुन इन मंजरियों का मानवीकरण करते हैं। प्रकृति उनके लिये आलम्बन रूप में ही उपस्थित होती है। इसलिये कवि को लगता है कि ये मंजरियाँ ऋतुओं के राजा बसन्त का चुम्बन कर रही हैं। कवि उन्हें 'उद्भिज जग की किन्नरियाँ' के रूप में देखता है।

२. मैनें तो भीषण जाड़ों में

नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर

महामेघ को झंझानिल से

गरज-गरज भिड़ते देखा है,

बादल को घिरते देखा है।[2]

कैलाश की चोटी पर छाये घिरे बादलों को देखकर कवि को प्रतीत होता है कि ये 'महामेघ' झंझानिल के साथ गरज-गरज कर भिड़ रहे हैं। यहाँ कवि मेघ का मानवीकरण कर देता है तथा उसे वीर भाव से अभिषिक्त रूप में उपस्थित करता है।

३. पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी

नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही

जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी

---

१. *खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, पृ०सं० ७८*

२. *युगधारा : नागार्जुन, पृ०सं० ६७*

पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर -

चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी

दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी

आँगन में, दूबों पर गिर पड़ी -

अब मगर किस कदर सँभल रही चाँदनी [१]

'फिसल रही चाँदनी' नागार्जुन की ऐसी प्रकृतिपरक कविता है, जिसमें चतुर्दिक व्याप्त हो रही, फैल रही चाँदनी का मनोरम मानवीकृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह ऐसी चाँदनी है, जो पीपल के पत्तों से लेकर आँगन के पिछवाड़े में, नालियों और बोतलों के टुकड़ों पर तथा दूर उधर बुर्जी तक फैल रही है।

४. पवन ने बहका लिया था,

मेघ-कुल की पुत्रियाँ हैं।

-बदलियाँ हैं

बरस पड़ना कहीं पर भी/भिगो देना किसी को भी

-दुआ इनसे माँग लो।

ओफ, इनसे क्यों डरे हो?

-कहाँ इनमें बिजलियाँ हैं।

अरे, ये तो SS

-बड़ी भोली बदलियाँ हैं।

-बड़ी सादी बदलियाँ हैं।[२]

'बदलियाँ हैं, नागार्जुन की प्रकृति-विषयक और उसमें भी बादल विषयक एक अत्यन्त

---

१. *खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, पृ०सं० ७८*

२. *हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० १७६*

मनोरम कविता है। इसमें बदलियों का मानवीकरण किया गया है तथा उन्हें मेघ-कुल की पुत्रियों के रूप में वर्णित किया गया है।

१. हजार बाहों वाली शिशिर विषकन्या
उतरी लेकर साँसों में प्रलय की वन्या [१]

२. मैं दरिद्र हूँ
पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी खुरदरी जीभ से
मेरा लहू चाटती आई।[२]

अन्योक्ति :-

१. होते रहेंगे बहरे ये कान जाने कब तक
ताम-झाम वाले नकली मेघों की दहाड़ में
कभी तो करुणामय हमदर्द बादल
दूर, बहुत दूर, छिपे हैं, ऊपर आड़ में
यों ही गुजरेंगे हमेशा नहीं दिन
बेहोशी में, खीझ में, घुटन में, ऊबों में
आएगी वापस जरूर हरियालियाँ
घिसी-पिटी झुलसी हुई दूबों में।[३]

यहाँ नकली मेघों की दहाड़ और झुलसी हुई दूबों में हरियाली की भावी कल्पनाओं के चित्रण द्वारा कवि ने वर्तमान खोखली राजनीति का संकेत देकर भावी

---

१. हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० १११
२. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० १५७
३. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृ० ७६

सुख और सम्पन्नता के प्रति अपना अटूट विश्वास व्यक्त किया है। एक दूसरी अन्योक्ति में कवि ने पीपल के पत्तों का वर्णन करते हुये रूढ़िगत मान्यताओं का तिरस्कार तथा नवीन साम्यवादी मान्यताओं के प्रति अपनी गहरी आस्था व्यक्त की है -

खड़ खड़ खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते,
अब न तुम्हारा, रहा जमाना
शकल पुरानी, रंग पुराना
सीख पुरानी, ढंग पुराना
अब न तुम्हारा, रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों।
तुमको तो अब गिरना ही है।
बदल गई ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनिया
हरे-हरे कुछ भूरे-भूरे टूसों से लद रही टहनियाँ।[1]

सन्देह :-

रजनी गंधा बनकर भू पर उतरी हो
अभिशापित देवसुता या कि परी हो।[2]

यहाँ पर कवि रजनीगंधा पुष्प को देवसुता एवं परी के माध्यम से संदेह व्यक्त कर रहा है।

---

१. *हजार-हजार बाँहों वाली - नागार्जुन, पृ० १०३*

२. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ० सं० ८*

विरोधाभास :-

(१)

वह बोल नहीं सकती

लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है।[१]

(२)

बाहर छलनानय, भीतर-भीतर थे निश्छल

तुम तो थे अद्भुत व्यक्ति, चौधरी राजकमल [२]

(३)

बूँद-बूँद पानी की खातिर

फसलों के शिशु तरस रहे हैं

लेकिन अनुदानी करुणा-धन

झीलों पर ही बरस रहे हैं। [३]

(४)

घाव-घाव हैं, दवा नहीं है

घुटन-घुटन है, हवा नहीं है

चूल्हा है, पर हवा नहीं है [४]

(५)

माननीय खाद्य मंत्री महोदय को

अकाल ग्रस्त क्षेत्र के सेठों ने दी है थैली

एक लाख ग्यारह हजार एक सौ एक की। [५]

(६)

हिमदग्ध होठों के प्राणशोषी चुम्बन

तन मन पर लेप गये ज्वालामुखी चन्दन

---

१. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ० सं० १२*

२. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृष्ठ सं० १४२*

३. *तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ०सं० ५७*

४. *तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ०सं० ७१*

५. *हजार-हजार बाहों वाली : नागार्जुन, पृ०सं० ५५*

नागार्जुन ने केवल विरोधी शब्दों द्वारा ही विरोधाभास अलंकार का श्रृंगार नहीं किया, वरन् अपने चित्रण द्वारा उन्होनें विरोधी स्थितियों को आमने-सामने नंगा करके खड़ा कर दिया है। तीसरे चौथे और पाँचवें उदाहरण में देश की राजनीतिक दुर्दशा का परस्परिक अन्तर्विरोधी चित्र खींचा गया है। अन्तिम उदाहरण में माननीय खाद्यमंत्री महोदय को अकाल ग्रस्त क्षेत्र के सेठों द्वारा एक लाख ग्यारह हजार एक सौ एक की थैली भेंट करना विरोधाभास के साथ-साथ नेताओं की मानसिकता पर एक तीखा व्यंग भी है।

उदाहरण :-

(१) काँटों पर सोया है कैसे
नागफनी पर गिरगिट जैसे[1]

(२) गिरिजा गिरी विसुध ज्यों कदली-स्तम्भ [2]

असंगति :-

वोट मिलना लगता आसान
कहीं पर भोज कहीं गुनगान
कहीं पर थोक नगद नगदान।

इसी प्रकार कवि ने नवीन अलंकारों का प्रयोग करके अपनी अभिव्यक्ति को अत्यधिक रोचक, मार्मिक एवं मनोरंजक बनाया है। जैसे -

विशेषण विपर्यय :-

(१) कला गुलाम हुई इनके आगे, कविता पानी भरती है,
सौ-सौ की मेहनत इनकी मुस्कानों पर मरती है।

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, नागार्जुन पृ०सं० ५५

२. भस्मांकुर : नागार्जुन, पृ०सं० ७०

इसी प्रकार कवि ने भस्मांकुर में -

मदिर उदासी पर चढ़ता ध्वनि भार
तरल लुनाई का निरुपम अनुपात
लेकिन फैला थिरकन भरा हुलास
निखर उठे हैं बहुरंगीन परिवेश
उपालम्भ के शोक-विलोकित बोल

आदि पंक्तियों में विशेषण-विपर्यय अलंकार ने अद्भुत भाव-सौष्ठव की सृष्टि की है।

ध्वन्यर्थ व्यंजना :-

पीले बिलौटे ने मार दिया पंजाऽऽ
सर हुआ घायल लेनिन का गंजाऽऽ
हँसता रहा लिउ शाओ - ची फि - फि - फि

उक्त पंक्तियों में पंजाऽऽ, गंजाऽऽ, --ची फि - फि-फि आदि में ध्वन्यर्थ व्यंजना है।

अनुप्रास :-

'योगी राज अरविन्द' कविता में कवि जब अरविन्द पर व्यंग्य करते हुये लिखता है -

चारु चिरन्तन चटुल चमत्कृत चरम चेतना चूर्ण
धनपति, विद्यापति, वाचस्पति
सब की इच्छा होती तुमसे पूर्ण।

यहाँ अनुप्रास प्रथम और द्वितीय दोनों पंक्तियों में व्यंग्य की धार को प्रखर बनाने का काम करता है।

(अ) छन्द का अर्थ और उसका महत्व :-

कविता के जन्मकाल से लेकर आज तक छन्द उसका प्रधान रूप रहा है। कविता ही नहीं, संसार के सभी देशों में प्राचीन युग का लगभग सारा साहित्य छन्द-लय रचना की स्मरणीयता । छन्द बद्ध रचना हीन रचना की अपेक्षा अधिक सरलता से याद रखी जा सकती है और क्योंकि प्राचीन युगां में मुद्रण की सुविधा नहीं थी, तथा और भी पहले तो लिपि का भी अविष्कार नहीं हुआ था, इसलिये उन युगों के मनुष्यों में अपने सभी रक्षणीय अनुभवों को पद्यबद्ध करने की एक प्रबल प्रवृत्ति मिलती है।

छन्दोमयी रचना को पद्य कहते हैं और छन्दोविहीन रचना का गद्य। पद्य या छन्दोमयी रचना अनेक चरणों में विभक्त होती है और प्रत्येक चरण में वर्णों या मात्राओं की एक निश्चित संख्या होती है। गद्य या छन्दोविहीन रचना अनेक वाक्यों में विभक्त होती है पर इन वाक्यों में वर्णों या मात्राओं की संख्या निश्चित नहीं होती।

शब्द, अक्षरों की संख्या एवं कम मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है।[1]

छन्द कविता की स्मरणीयता बढ़ाने के साथ-साथ उसकी व्यंजना शक्ति को भी बढ़ाता है। छन्दोबद्ध भाव छन्द हीन भाव की तुलना में अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है। छन्द के आवर्तन में एक ऐसा आहलाद होता है, जो तुरन्त मर्म को छू लेता है।[2]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "छन्द की सृष्टि अर्थमयी भाषा और संगीत के मिलन से होती है। अर्थ-हीन छन्द-प्रवाह संगीत है पर उसमें सार्थकता आ जाती है, तब वह छन्द हो जाता है।[3]

---

१. हिन्दी साहित्य कोश भाग - १ सं० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान), पृ० ३२१
२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना : डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल, पृ० ३५
३. साहित्य का मर्म : पृ० ४१

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार, छन्द वह मानवोच्चारित ध्वनि है जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंग-भंगिमा से आहलाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके अर्थात् छन्द एक नियमित मुख-ध्वनि रचना है।[1]

उदाहरणार्थ :-

प्रभु ने तुम को कर दान किये।
सब वांछित वस्तु-विधान किये।।
तुम प्राप्त करो उनको न अहो।
फिर है किसका यह दोष कहो।।
समझो न अलभ्य किसी धन को।
नर हो न निराश करो मन को।।

इस रचना में तोटक छन्द के छह चरण हैं। प्रत्येक में १२-१२ वर्ण हैं।

अन्य उदाहरण :-

धन्य जनम जगती-तल तासू।
पितहि प्रमोद चरति सुनि जासू।।
चारि पदारथ कर-तल ताके।
प्रिय पितु-मात प्रान-सम जाके।।

इस रचना में चौपाई छन्द के चार चरण हैं। प्रत्येक चरण में १६-१६ मात्राएँ हैं।

पर छन्द का कार्य कविता की सिर्फ स्मरणीयता और इस प्रकार उसके स्थायित्व को बढ़ाना ही नहीं है वह उसकी व्यंजना शक्ति को भी बढ़ाता है। छन्द की सीमा में बंधकर भाव अधिक वेगवान और प्रभावशाली हो जाता है। छन्द के आवर्तन

---

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना : डॉ पुत्तू लाल शुक्ल, पृ०सं० २०-२६

में एक ऐसा आह्लाद होता है जो तुरन्त मर्म को छू लेता है।[1] वह कवि की अनुभूति को व्यक्त ही नहीं करता, व्यक्त करने के समय कवि के ह्रदय की स्थिति को भी तद्वत श्रोता के मन में उद्भुत कर देता है।[2] लेकिन यहाँ पर यह भी स्वीकार करना होगा कि कई बार छंदों के रूढ़ ढ़ाँचे कवि की सहज और उन्मुक्त अभिव्यक्ति में बाधा भी पहुँचाते हैं और तभी कवि उनको तोड़-फोड़ कर अभिव्यक्ति के नये-नये तरीकों की खोज में निकलता है।

काव्य के क्षेत्र में छन्द को प्रारम्भ से ही एक अपरिहार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया था। वैदिक काल से लेकर अब तक जितना भी उन्नत काव्य-सृजन हुआ है, वह प्रायः छन्द-वदध रूप में ही दिखाई देता है। किन्तु आधुनिक युग में, विशेष रूप से छायावादोत्तर काल में, छन्द के प्रति सहसा विद्रोह का भाव प्रकट होने लगता है। परम्परागत छन्द-विधान को त्यागकर कविता मुक्त छन्द को अपनाती है और कई बार तो उसमें छन्द मुक्ति की प्रवृत्ति साफ नजर आती है।

२. नागार्जुन के काव्य में छन्द विधान :-

प्रगतिशील कविता में छन्द योजना का विशिष्ट महत्व है। 'छन्द के प्राचीन और नूतन सभी रूपों का प्रयोग प्रगतिशील कविता में हुआ है।

छन्दबद्ध रचना की परम्परा अति प्राचीन है। प्रयोगवादी आन्दोलन ने कविता के वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर द्वंद्व किया है। फलतः उसने दोनों के अवरोधों को तोड़ा भी और नए मानदण्डों की सर्जना भी की है। छन्द-शास्त्र में छन्दों की सीमाएँ बाँध दी गयी हैं और फलतः ऐसा लगता है मानों छन्दोबद्ध कविता को इन विद्यमान छंदों में से ही किसी एक के ढ़ाँचे में अपने अंगों को सकुचा-फुलाकर फिट होने के लिए मजबूर किया जाता है। नागार्जुन ने छंद शास्त्र के नियमों से परे हटकर मुख्य रूप से

---

१. *आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना : डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल, पृ०सं० ३५*
२. *एवर क्राम्बी : प्रिंसिपल्स ऑफ इंग्लिश प्रोजोडी, भाग १, पृ०सं० २६*

मुक्त छन्द में रचना की। किन्तु इन रचनाओं के प्रवाह में सौंदर्य का अभाव कदापि नहीं है। इन कविताओं में छंद वाक्यों का नहीं बल्कि वाक्य छंदों का प्रयोग किया है। उन्होनें औपचारिक छंदों के स्थान पर वस्तु की माँग का अधिक ध्यान रखा है और यही कारण है कि वे औपचारिक छंदों के साथ जुड़ नहीं पाये तथा आत्मीय छंदों के नये नमूने को प्रयोग की भूमि हेतु चयनित किया।

छन्द के मामले वर्मे आधुनिक युग के कवि उदासीन नजर आये हैं और मुक्त छन्द के नाम पर गद्य को ही कविता की तरह लिख रहे हैं। वहीं नागार्जुन ने परम्परागत छन्दों को ठेठ मुहावरेदार शैली में लिखकर लोकप्रिय बनाया है, मुक्त छन्दों के भावानु-रूप छोटे-बड़े चरणों को लयविहीन नहीं होने दिया है। वे मुक्त छन्दों के लिये भाव गुम्फित एवं लय गुम्फित होना अनिवार्य मानते हैं। अप्रचलित छन्द 'बरवै' नागार्जुन को प्रिय रहा है। इस मात्रिक अर्ध सम्बद्ध के विषम चरण में बारह एवं समचरण में सात मात्राएँ होती हैं। समचरणों के अन्त में यगण (।ऽ।) या तगण (।ऽ।) आने से मिठास बढ़ती है। 'भस्मांकुर' नामक खण्डकाव्य में कवि ने केवल 'बरवै' का ही प्रयोग किया है। 'भूमिजा' में कहीं-कहीं १६ मात्राओं के मात्रिक छन्द का प्रयोग किया है इसमें भी नागार्जुन ने तुक के मामले में चौपाई के नियम को तोड़कर स्वतंत्रता से काम लिया है। बाबा के छन्दों की रचना में चाहे मात्राएँ किसी भी क्रम या संख्या में प्राप्त हों उनका प्रवाह प्रायः गद्यात्मक ही नहीं होता। उनकी कविताओं के छन्दों के जन्म एवं विकास के मध्य में शास्त्रीयता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। उनकी रचनाओं का अवलोकन एवं मूल्यांकन करते समय इस बात को पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिए कि वे उस खेमें के कवि नहीं हैं, जिसमें 'कला कला के लिये है'। उनके लिये कला जीवन के इतर प्रश्नों से संश्लिष्ट है। यही कारण है कि वे छंदों की रचना प्रक्रिया को नवीन विषयों में बाँधने का प्रयास करते हैं। वास्तव में नागार्जुन ने कविता को जीवन के सवालों से सम्बद्ध कर उसे शास्त्रीय छन्दों की चमत्कारिता से मुक्ति

दिलाने की चेष्टा की है।

नागार्जुन की छन्द योजना पर प्रकाश डालते हुए डॉ० शिव कुमार मिश्र ने लिखा है – "छन्द बद्ध और मुक्त छन्द अभिव्यक्ति के इन दोनों प्रकारों में उनकी समान रूप से गति है। हिन्दी के अपने कवित्त सवैया तथा बरवै जैसे छन्दों से लेकर आधुनिक से आधुनिक छन्द प्रयोग उनके काव्य में हमें मिलते हैं।"[1]

नागार्जुन ने प्रगीत भी पर्याप्त मात्रा में लिखे हैं और मुक्त छन्द (ब्लैंक वर्स) में अतुकान्त कविताएँ भी पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं। इस प्रकार नागार्जुन ने छन्दबद्ध एवं छन्दमुक्त दोनों प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। सुगमता की दृष्टि से नागार्जुन की छन्द योजना को चार भागों में बाँट सकते हैं – छन्दबद्ध तुकान्त कविताएँ, छन्द बद्ध अतुकान्त कविताएँ, छन्दबद्ध तुकांत कविताएँ और छन्दमुक्त अतुकांत कविताएँ। छन्दबद्ध तुकान्त कविताएँ सभी गेय हैं, जिनमें लय, तान एवं स्वर का बंधन क्रमपूर्वक मिलता है। जैसे –

तुम वहीं पंक जिसकी फसलें होती शतदल,
युग की भ्रमरावलि करती है गुनगुन अविरल।
युगनद्ध मिथुन की भावभूमि तुम रस-पिच्छल,
तुम स्वेद-सुरभि, हारा जिससे मृगमद परिमल।

दूसरे कवि ने ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं, जो वैसे तो छन्दबद्ध हैं किन्तु अतुकान्त हैं। जैसे 'वरवै' छन्द में लिखित ये अतुकान्त पंक्तियाँ देखिये –

गौरी भावविभोर सतलज विनीत
चंपक-धुति-तन रक्तांशुक-परिधान

---

१. भस्मांकुर : नागार्जुन, पृ०सं० २५

फूल फूल ये अलंकार-विन्यास

हार-वलय, मेखला सभी थे फूल

उन्होने कतिपय तुकान्त कविताएँ ऐसी भी लिखी हैं, जिनमें मात्राओं की क्रमबद्धता नहीं है और इसी कारण कोई पंक्ति छोटी या बड़ी हो जाती है, परन्तु तुक बराबर मिलती रहती है। जैसे -

केन कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो

कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो

ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो

कुपित कृषक की टेढ़ी भौहें, वह भी तुम हो

खड़ी सुनहली फसलों की छवि छटा निराली, वह भी तुम हो

लाठी लेकर काल रात्रि में करता जो

उनकी रखवाली, वह भी तुम हो।

तीसरे वर्ग में नागार्जुन की वे कविताएँ आती हैं, जिनमें स्वतन्त्र एवं मुक्त छन्द का तो प्रयोग हुआ है, किन्तु बीच-बीच में तुकान्त का आग्रह कवि नहीं छोड़ सका है। अतः वे छन्दमुक्त तुकान्त कविताएँ कही जा सकती हैं। जैसे -

अपना मैं समझती

भले ही वह पीटता, भले ही मारता

किन्तु किसी क्षण में प्यार भी करता

X X X X

धन्य मैं होती

कृत्य-कृत्य होती

X X X X

घण्टा मैं बजाती

तन्मय हो कितनी आरती उतारती

इसी वर्ग में निम्नलिखित कविता आती है, जो छन्द-मुक्त होने के बावजूद तुकान्त है-

छतरी वाला जाल छोड़कर

अरे, हवाई डाल छोड़कर

एक बन्दरिया कूदी धम से

बोली तुम से, बोली हम से

X X X X

आज बनी मैं किष्किंधा की रानी

सारे बन्दर सारे भालू भरा करें अब पानी।

चतुर्थ वर्ग में नागार्जुन की वे कविताएँ आती हैं, जो पूर्णतया मुक्त-छन्द में लिखित हैं, जिनमें न तुक है और न लय, किन्तु जो गद्यात्मक होकर भी धारा प्रवाह से परिपूर्ण हैं। जैसे -

बसन्ती हवा हूँ

चढ़ी पेड़ महुआ

थपाथप मचाया

गिरी धम से

फिर चढ़ी आम ऊपर

उसे भी झकोरा

किया कान में कूँ

उतर कर भागी मैं

हरे खेत पहुँची

लहर खूब मारी

इसी वर्ग में स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द कविताएँ भी आती हैं, जिनमें मुक्त छन्द एवं तुकान्तहीन पंक्तियों के रहते हुए भी लय है, तान है और प्रवाह है। जैसे -

जिस बर्बर ने
कल किया तुम्हारा खून पिया
वह नहीं मराठा, हिन्दू है
वह नहीं मूर्ख या पागल है
वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का
वह जागरुक, वह सावधान
वह मानवता का महाशत्रु
वह हिरणकशिपु
वह अहिरावण
वह दशकंधर
वह सहस्त्रबाहु
वह मनुष्यत्व के पूर्ण चन्द्र का सर्वग्रासी महाराहु।

नागार्जुन छन्द के मामले में न केवल उदार हैं बल्कि उनका आचरण अत्यन्त मर्यादित है। इतिहास की जिस धरोहर ने उन्हें मुक्तछंद से जोड़ा है वही दृष्टि उन्हें बरवै और हरिगीतिका तक भी ले जाती है। कविता की जिस दीर्घ परंपरा से उनका संबंध है वह सिर्फ उनके अपने युग की देन नहीं है। इसलिये छंद के बारे में वे

एतिहासिक रवैया अपनाते हैं। उनकी कविता पुस्तकों से गुजरते हुए हमारी भेंट अगर तीन मुक्त-छंदों से होगी तो पॉच तुकान्त गेय छंदों से। ऐसा क्यों है यह सवाल उतना मजेदार न होगा जितनी कि यह जिज्ञासा कि छंदों के प्रति नागार्जुन की अपनी दृष्टि क्या है। कवि जब आवेग में रहता है और अपने को रोक नहीं पाता तब मुक्तछंद उसकी कविता की प्रधान प्रणाली बन जाता है। उस वक्त वह इस सुविधा का लाभ लेता हुआ दिखाई देता है। 'प्रेत का बयान', 'तो फिर क्या हुआ', 'सौन्दर्य प्रतियोगिता', या 'हरिजन गाथा' जैसी कविताएँ इसी आवेग की देन हैं। किन्तु यही कवि जब आवेगों की बाढ़ से मुक्ति पाकर जनजीवन के संगत-असंगत छोरों तक अपनी कविता के साथ निकलता है, छंद के संगीत की मनोरंम लयों और यतियों का निर्माण करता दिखाई पड़ता है -

इन्दु जी, इन्दु जी
क्या हुआ आपको?
सत्ता की मस्ती में भूल गई बाप को
क्या हुआ आपको

या फिर

वो चाँदनी, ये सींखचे
कैसे गुथें, कैसे बचें
क्यों कर रुकें, क्यों कर रचें
वो चॉदनी, ये सीखचें

अर्थ-संगीत के साथ स्वर संगीत की सम्मिलित शक्ति का जो अविष्कार वैदिक ऋषियों ने किया था उसे हमारे नये कवि सोचने तक को भी तैयार नहीं हैं। मंत्रों के पाठ क्रम में अर्थ को प्रतिध्वनन संगीत से सम्पन्न करने वाले उदात्त-अनुदात्त स्वरित

कम वायुमंडल में जिस ध्वनि संगीत की रचना करते हैं उसे सिर्फ मनुष्य ही नहीं इतर जीवधारी भी सुनते समझते हैं। कविता छंद संगीत के जरिए शेष प्रकृति से यही अपना तादात्म्य स्थापित करती है। किन्तु हमारा युग विश्लेषण-वादी और अलगाव धर्मी है। इसीलिये वह अपनी पहचान बनाये रखने के सबब से कविता को उन तमाम पंरपरागत रिश्तों से विच्छिन्न कर देना चाहता है जो उसे एक सामूहिक ताकत भर नहीं दे रहे हैं बल्कि अपनी सारी ऊर्जा देकर उसे जातीय वर्चस्वता और प्रतिभा का मानक बनाये हुये हैं। आश्चर्य तो यह है कि एक ओर तो कलाओं की अन्तरावलम्बता पर जोर दिया जा रहा है, और दूसरी ओर कविता को इस अन्तरावलम्बन से मुक्त कराये जाने की कोशिश भी चल रही है। यही अर्न्तविरोध आधुनिक हिन्दी कविता की विशेषता बनता जा रहा है। नागार्जुन जैसे कवि इस अर्न्तविरोध की बारीक दयनीयता को समझते हैं और अपने पक्ष से इसका परिमार्जन करने की निरन्तर कोशिश भी कर रहे हैं। उनकी इस कोशिश का जायजा उनके काव्य पाठ के दौरान भी लिया जा सकता है, जब वे बीच-बीच में कविता के कई टुकड़ों को गाने-बजाने पर भी उतारू हो जाते हैं। चाहे नयी कविता की पाठक मण्डली बैठी हो, चाहे कवि सम्मेलनों का श्रोता समूह, वे छन्द-अछंद की विभिन्न धाराओं में संतरण कर रहे होते हैं। छंद चाहे स्वच्छन्द हो, चाहे मुक्त, वर्णिक हो या मात्रिक, तीव्रगामी हो या मंदाक्रांता, नागार्जुन की संवेदन-विविधता के लिये सर्वप्रकारेण उपयोगी है। 'मेघदूत' का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए उन्होनें 'मुक्तवृत्त' पर जो विचार व्यक्त किया है वह उनके विश्वपिंगल-पाण्डिल्य का अद्भुत प्रमाण है। भूमिका में वे लिखते हैं - "मैं बहुत दिनों से सोचता रहा, सोचता रहा कि किस प्रकार कालिदास की मूल भावना को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचा दिया जाय। आखिर इस अनुवाद के लिये मैंने 'स्वच्छंद' छंद को ही चुन लिया। पंक्ति विच्छेद की शैली में गुम्फित गद्यकाव्य का यह ढ़ाँचा मुझे क्यों प्रिय है, बता नहीं सकता।"[1]

---

1. *नागार्जुन का रचना संसार - विजय बहादुर सिंह, पृ० १००*

किन्तु अगले वाक्यों में इस लगाव के हेतुओं का संधान करते हुये यूरोप-अमेरिका, फ्रांस और हिन्दीतर भारतीय काव्य धाराओं – विशेषकर बंगला काव्य की छंद प्रयोग संबंधी विवेचना में उतर पड़ते हैं। निराला और रवीन्द्रनाथ की तरह वैदिक ऋचाओं के स्वच्छंद संगीत की ओर वे हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं – "वैदिक ऋचाओं, उपनिषद् के वाक्य, पालि प्राकृत के सूक्त, आयुर्वेद की संहिताएँ, दर्शनों और व्याकरणों के सत्र एवं वृत्तियाँ पिछले युगों में निर्मित भाष्य – महाभाष्य – भारतीय वाड्.मय की यह लंबी परंपरा स्वर शून्य गद्यों की नीरस परम्परा नहीं रही। विषय वस्तु के साथ गेय तत्व का यह सामंजस्य हम दशकुमार चरित में भी पाते हैं और हर्ष चरित तथा कादम्बरी में भी।

मुक्त छंद वस्तुतः ओज और आवेग का छंद है – पहाड़ी नदी के प्रखर प्रवाह की तरह घर घर – हर हर करता हुआ आत्म साधना से दीप्त। वास्तव में वह आज के युग की मनुष्यता का स्वातंत्र्य-प्रतीक है। कविता जितनी ही जनतांत्रिक होगी, मुक्तछन्द के उतने ही रूप और स्वभाव हमारे द्वारा आविष्कृत होते चले जायेंगे। कहीं वह गीत हमारे द्वारा अविष्कृत होते चले जायेंगे। कहीं वह गीत – नाट्यों की शैली धारण करेगा, कहीं काव्य-नाटकों की। कहीं कत्थक-आख्यान शैली अपनाएगा तो कहीं उपदेश-प्रशिक्षण शैली। कवि सम्मेलन के मंचों पर, जनजागरण के लिये सुरेश उपाध्याय जैसे कवि इसे जनता से संवाद करने के सबसे उपयुक्त माध्यम की तरह इस्तेमाल करेंगे। हास्य-व्यंग, करुण और वीर भावों के लिये यह छन्द निहायत मौजूँ है। पर इसके साथ ही नागार्जुन यह कहने में नहीं चूकते कि "छंदों पर जिनका अच्छी तरह अधिकार होगा, मुक्तवृत्त की रचना में वही सफल होंगे।"[1] क्योंकि मुक्तछंद कोई सुविधा नहीं बल्कि अविष्कार है। अविष्कार को जनोपयोगी और काव्यधर्मी बनाने की जिम्मेदारी हमारी समकालीन कवि पीढ़ी के लिए एक मजेदार चुनौती है। नागार्जुन ने

---

१. नागार्जुन का रचना संसार – विजय बहादुर सिंह, पृ० १०१

इस चुनौती का उत्तर देने की कोशिश अपने ढ़ंग से की है। उनके मुक्त छंदों के कुछ नमूने इस प्रकार हैं -

१.

जिस बर्बर ने
कल किया तुम्हारा खून पिता
वह नहीं मराठा हिन्दू है
वह नहीं मूर्ख या पागल है
वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का
वह जारुक, वह सावधान
वह मानवता का महाशत्रु
वह सहस्त्रबाहु
वह मनुष्यत्व के पूर्ण चन्द्र का सर्वग्रासी महाराहु।
हम समझ गए
चट से निकाल पिस्तौल
तुम्हारे ऊपर कल
वह दाग गया गोलियाँ कौन?
हे परमपिता, हे महामौन!
हे महाप्राण, किसने तेरी अन्तिम साँसें
बरबस छीनीं भारत-माँ से
हम समझ गए।

यहँ कवि आवेग सम्पन्न भाषण शैली में मुक्तवृत्त को निखार रहा है। आवेग के बीच-बीच में सहस्त्र बाहु/महाराहु कौन/ महामौन जैसे तुकों की बानगी भी अनायास स्वाभाविकता के साथ उपस्थित है। निराला की "जागो फिर एक बार" जैसी कविताओं मे जो धीर गंभीर मार्दवता है वह यहाँ भले ही न हो किन्तु संगीत की हल्की

बारीक छाया दोनों छंदों मे विद्यमान है। इसके विपरीत 'धाकचो खोकोन आइ जे गाँधी महात्ता" कविता में नाटकीयता और वर्णन-कौशल की कारीगरी से मुक्त छंद का ढ़ांचा तैयार किया गया है। नाटकीय एकालाप का यह शिल्प प्रसाद की 'प्रलय की छाया' कविता में मिलता है। नागार्जुन इस मोनोलॉग टेकनीक को बीच-बीच में भंग कर उसके दायरे को अधिक बहिर्मुख और बृहत्तर करने की कोशिश करते हैं -

निकालो फौरन पैसे, संभालो मूंगफलियाँ
जाने कब से खोंचा वाला तराजू लिए खड़ा है

....

मान ली मैनें अन्दर वाले मनसाराम की बात
मूँगफली लेकर बढ़ गया आगे
मैदान की ओर
रेस कोर्स की ओर
कानों में लेकिन गूँज रहा था अब भी
घाकचो खोकोन आइ जे गाँधी महात्ता

मुक्तछंद की यह नाटकीय सामर्थ्य मनोविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीति और दर्शन सभी क्षेत्रों में कारगर साबित हो सकती है। गहन गम्भीर अनुभवों के नानाविधि ऊहापोह के लिए तो यह शैली अद्वितीय उपलब्धि है ही - 'पसन्द आयेगा?' जैसी कविताओं में नागार्जुन तर्क और विचार की सम्मिलित आभा इसमें प्रदर्शित करते हैं -

लिंग लौल्य
रसना-रास
वासनाओं का चैतसिक चुम्बन
लालसाओं का ललित - लास्य

बाहर-बाहर प्रतिष्ठा का आरोप आडम्बर

पसन्द आयेगा तुम्हें ऐसा सुदीर्घ जीवन?

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम -

चाटुकारिता के सहारे

अभिनव प्रभुओं को अनुरंजित करता

पदे-पदे स्वार्थ साधन-परायण

अनुकूल-कला-प्रवीण पदे-पदे

वंशधरों को वंचना का प्रशिक्षण देना पसंद आएगा तुम्हें?

ऐसा सुदीर्घ जीवन?'

यहाँ अनुप्रासों के बलबूते पर मुक्तछंद को खड़ा करने की कोशिश की गई है। शब्दसंगति की नयी योजनाओं के आर-पार, तुकों की लुप्ति, वृत्त को अधिक आत्म निर्भर और स्वाधीन बना रही है। यह वह मोड़ है जहाँ मुक्तछंद विचार गाम्भीर्य की आदर्श अभिव्यंजना बन जाता है। नागार्जुन इस जमीन पर गद्य और पद्य दोनों ही शैलियों से अपनी खुराक खींचते हैं। पर उसे खाद मिट्टी की तरह इस्तेमाल करते हुए कविता को एक सामाजिक बातचीत की प्रत्यक्ष शैली बना देने की जुगाड़ में हैं। मुक्तछंद की जमीन पर कवि इस शैली को कितने - कितने कोणों से सजाता-सँवारता है। उसका मूल मकसद विचारों की उस फैली हुई दुनिया को समेटना रहता है जिसके आधार पर यथार्थ वस्तु जगत और उसके प्रति हमारे अपने फैसलो का निर्धारण होना रहाता है। इसलिए मुक्तछंद की जमीन पर स्वाभाविक द्रुति-माधुर्य और श्रवण धर्मिता का न तो कोई विरोध है न ही अनावश्यक आग्रह ही । छंद चाहे जैसा हो, वह एक विज्ञान है और उसके पीछे अर्थ सम्प्रेषण के अपने तर्क निरन्तर काम कर रहे होते हैं। यही कारण है कि मुक्तछंद की रचना छांदसिक निर्मितियों से कहीं अधिक खरनाक

---

१. नागार्जुन रचनावली - २ (पसंद आयेगा तुम्हें सुधीर्य जीवन, कविता) : शोभाकान्त, पृ०सं० १०३

और साहसपूर्ण है। इसमें हल्का संगीत स्पर्श भी रह सकता है। जिसे नागार्जुन व्यवस्थित मुक्त छंद कहते हैं और आवेग-परकता और वक्रोक्ति-संपुटता भी जहाँ संगीत की कोई जरूरत ही महसूस न हो भाषागत वक्रता ही जिसे अभिनव पद प्रयोग से सम्पन्न करके कविता के खाते में डाल आती हैं। नागार्जुन की शब्दावली में यह निर्वन्ध मुक्त छंद है जिसका प्रयोग उन्होंने मेघदूत के अनुवाद में किया है -

प्रिय भाई
मेरा यह काम पूरा करोगे न?
आखिर, तुमने इस बारे में क्या तय किया?[1]

मुक्त छंद को सहज और अनिवार्य काव्य पद्धति के रूप में स्वीकार करते हुये भी नागार्जुन तुक-लय समन्वित छंद शैली को आधुनिक काव्य के लिये मूल्यवान मानते हैं। उनकी अभिव्यक्ति का एक बहुत बड़ा हिस्सा इसी शैली में है। दोहा, कुण्डलियाँ, रोला, हरिगीतिका, मंदाकान्ता, कवित्त, सवैया और बरवै तक का इस्तेमाल वे करते हैं।

दोहा :-

यह दो पंक्तियों का छन्द है। इसमें चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्रायें तथा दूसरे और चौथे चरण में ११-११ मात्रायें होती हैं।

नागार्जुन ने 'शासन की बंदूक'[2] कविता में 'दोहा' छन्द का सुन्दर प्रयोग किया है। उनकी 'अन्न पच्चीसी' - के दोहा भी बहुत मार्मिक हैं -

छीन सके तो छीन ले, लूट सके तो लूट।
मिल सकती कैसे भला, अन्न चोर को छूट।।

---

१. *नागार्जुन रचनावली - १ (मेघदूत - ११७) : शोभाकान्त, पृ०सं० ५३१*

२. *तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ०सं० ४६*

आज गहन है भूख का धुँधँला है आकाश।

कल अपनी सरकार का होगा पर्दाफाश।।'

डॉ० राम विलास शर्मा ने नागार्जुन के राजनीतिक दोहों में मूर्तिविधान की विशदता और चित्रण कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है "चित्रण सौन्दर्य का यह कौशल अन्य कवियों के राजनीतिक दोहों में नहीं है -

खड़ी हो गई चाँपकर, कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट-सी शासन की बन्दूक।
जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक,
बाल न बाँका कर सकी, शासन की बंदूक।

अन्न-पचीसी के दोहा का उदारण देखिये -

१.

कंकालों को नाच सिखाती अन्नबह्म की माया
लघु रूप को विराट दिखाती अन्नब्रह्म की माया
दाढ़ी-चोटी को मिलवाती अन्नब्रह्म की माया
चिंतन को ठोकर खिलवाती अन्नब्रह्म की माया
कंकालों को नाच नचाती अन्नब्रह्म की माया

२.

सीधे-सादे शब्द हैं, भाव बड़े ही गूढ़
अन्न पचीसी धोख ले, अर्थ जान ले मूढ़

३.

अन्न ब्रह्म की बह्म है बाकी बह्म पिशाच
औघड़ मैथिल नागजी अर्जुन यही उवाच।[२]

---

१. जनशक्ति (पटना) : २८ फरवरी १६३५

१. जनशक्ति : पटना, २८ फरवरी १६६५

पुराने छन्दों की नयी आभा और अर्थ से सम्पन्न करना विशिष्ट प्रतिभा की माँग करता है। कमजोर सामर्थ्य वाला रचनाकार परम्परा से इसलिये भी कतराता है कि वह लोगों की निगाह और पंडितों की पकड़ में आ जायेगा। नागार्जुन चाहते हैं कि पण्डित उन्हें पकड़े और उनके शिल्प की बारीकियाँ बताएँ। या फिर उनके साहसिक और संगत प्रयोगों की दाद दे।

बरवै :-

नागार्जुन ने ८५४ पंक्तियों में 'भस्मांकुर' खण्डकाव्य बरवै छंद में रचा है। इसके कुछ ही अंश को देखकर कवि के सौन्दर्य बोध को समझा जा सकता है। बरवै बिछोह या श्रृंगार का बड़ा प्यारा छंद है। साकेत के एकाध स्थलों पर इसका प्रयोग किया गया है। नागार्जुन ने इसकी व्यवस्था में कुछ हेर-फेर किया है। वे इस तुकान्त छंद को अमित्राक्षर की भूमि पर ले आए हैं। प्राचीन छंदों की सुदृढ़ और शास्त्र सम्मत व्यवस्था में यह रचनात्मक घुसपैठ उनकी अपनी शैली है। भस्मांकुर में जहाँ अंश वर्णात्मक है, वहाँ शैली संस्कृत-निष्ठ है और बातचीत वाले स्थल एकदम ठेठ चलती भाषा में। तुक मुक्त बरवै का नमूना देखिये -

वर्ण-गंध थे जिनके अमित-असीम
जान न पायी उन फूलों के लाभ
आगे पीछे शैलश्रंग हिमशुभ्र
पल-पल पुलकन भरते शिशिर समीर'

१. विषम चरण में १२ मात्रा।

२. सम चरण में ७ मात्रा।

'भस्मांकुर' नागार्जुन ने तुलसी, रहीम के सुप्रसिद्ध 'बरवै छंद' में लिखा है।

---

१. *नागार्जुन रचनावली-२ : शोभाकान्त (भस्मांकुर खण्ड काव्य) पृ०सं० ४७७*

भस्मांकुर से एक उदाहरण और प्रस्तुत है -

असमय अंकुर, असमय लता विहान -
वृद्ध वनस्पतियों का, नव परिधान
असमय मुकुलोदगम, मधुमद चहूँ ओर
असमय कुसुम विलास, हास-हिलकोर[1]

१६ मात्राएं

कुंडलिया :-

१. दोहा और रोला छन्दों के मेल से कुंडलिया छन्द बनता है।

२. दोहा के अन्त में शब्द रोला के आरम्भ में और रोला के अन्त में कुछ शब्द दोहा के आरम्भ में आते हैं।

इस छन्द का सफल प्रयोग नागार्जुन की प्रजातंत्र का होम-रचना में देखा जा सकता है -

सागर कन्या रेत पर सोयी सारी रात
जाने कैसे जुड़ गयी पर्णकुटी की बात
पर्णकुटी की बात जुड़ गयी जाने कैसे
मथा गया सागर निकले पैसे ही पैसे
संस्कृत में गालियाँ सुनेगी फिर भी धन्या
सोयी सारी रात रेत पर सागर कन्या।[2]

कुंडलिया छन्द का एक उदाहरण और देखिये -

कण-कण से उठती रही सहमी जै-जै कार

---

१. भस्मांकुर : नागार्जुन, पृ० ३५

२. तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ० ५५

माई के उर पर हँसा शिशु-मुडों का हार

शिशु-मुंडों का हार हँसा माई के उर पर

शंख निछावर हुए पगों के नुपुर-सुर पर

गूँजा नभ बौने तानाशाहों की प्रण से

सहमी जै-जैकार रही उठती कण-कण से

(ब) गीत :-

लोकगीत :-

कुछ विद्वानों द्वारा लोक गीत को 'ग्राम-गीत' भी कहा गया है, किन्तु इसको ग्राम की संकुचित सीमा में बांधने से इसकी व्यापकता कम हो जायेगी। इन गीतों की रचना में ग्राम और नगरों का इतना हाथ नहीं है, जितना कि साधारण जनता का।[1]

(क) लोक शब्द की व्युत्पत्ति :-

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'धज' प्रत्यय करने से बना है।[2] इस धातु का तात्पर्य देखना होता है जिसका लट् लकार में अन्य पुरुष वचन का रूप "लोकते" बनता है। अतः लोक शब्द का अर्थ देखने वाला माना जा सकता है। इस आधार पर वे सभी जो देखने का कार्य करते हैं, लोक कहे जायेंगे।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार - "आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं जिनका आचार, विचार एवं जीवन परस्पर मुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।[3]

---

१. श्री सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० १

२. सिद्धांत कौमुदी : पृ० ४१७

३. डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त-लोकगीत, एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ०सं० १, २

लोक गीत का आशय :-

लोक गीत के सम्बन्ध में विद्वानो ने अलग-अलग दृष्टि से विचार किया है। डॉ० सत्येन्द्र लोकगीत को लोक मानस का आभास मानते हैं।[१] उनके अनुसार जिस गीत में लोक मानस का आभाव हो वह लोकगीत की कोटि में आयेगा। अतः लोकगीत के स्वरूप को समझने से पहले 'लोक-मानस' पर विचार करना अपेक्षित है।

'हिन्दी साहित्य कोश' में लोकगीत शब्द के निम्नलिखित अर्थ दिये गये हैं -[२]

१. लोक में प्रचलित गीत

२. लोक निर्मित गीत

३. लोक विषयक गीत

लोक में प्रचलित गीत ही 'लोकगीत' होता है। देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"

निष्कर्ष यह है कि लोक गीत लोक मानस की वह सहज भावावेगमयी अनायास अभिव्यक्ति है, जिसमें उसके हर्ष-विषाद, उत्थान-पतन, रीति-रिवाज, रहस्य-रोमांच, परम्पराओं, अंध-विश्वासों, संस्कारों आदि की झांकी मिलती है जो लय-स्वर से युक्त, एक पीढ़ी से स्वरों पर गरजता हुआ मौखिक रूप से अपना अस्तित्व एवं प्रभाव बनाये रखती हैं तथा जिसमें रचनाकार का व्यक्तित्व में लय हो जाता है तथा ग्रामीण संरचना के विभिन्न उपादानों का अध्ययन कर रचना कार लेख भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करता है।

नागार्जुन ने अपने छंदों की विविधता और वैभिन्य देने के ख्याल से वे

---

१. डॉ० सत्येन्द्र - लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ३६०

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोष, पृ०सं० ६८६

नौटंकी, रामलीला, भजन मंडलियों और लोक गायकों की महफिलों पर भी निगाह रखते थे। रेडियो से आने वाले विदेशी संगीत के स्वरों को भी पकड़ते थे। किन्तु जब तक वे स्वर हमारी चेतना में घुल-पच नहीं जाते, उन्हें रचनात्मक धरातल पर अंगीकार नहीं करते। उनकी कविताओं में लोक छंदों का सौन्दर्य मैथिली में भी है और हिन्दी में भी। 'वरुण के बेटे' में ऐसे दो लोकगीतों का प्रयोग मिलता है - दूसरा करुण श्रृंगार से ओत प्रोत है तो पहले में नौटंकियों की कथन शैली की बहार हमारा ध्यान खींचती है - भोला गाता है -

"भँगुरी को मात करती है मेरी प्यारी
वो रंगत और वे चिकनापन
कहाँ से लाएगी भंगुरी बेचारी
मात करती है भंगुरी को मेरी प्यारी
मेरी जान। मेरी जान। मेरी जान।
निछावर है तुझ पै भोला के परान । "

नागार्जुन के उपन्यासों में हमें लोकगीतों का सुन्दर परिज्ञान मिलता है। बलचनमा में लोकगीत आनन्द और उल्लास को व्यक्त करते हैं :-

"सखि है गजरल आमक बाग
कहूं-कहूं चिकरए कोइलिया
झींगुर गावै फाग।
कत हमार परदेस बसइ छवि
बिसरि राग-अनुराग।
विधि भेल बाम, सील भेल बैरी
फूटि गेला ई भाग।"[1]

---

1. *बलचनमा : नागार्जुन, पृ०सं० १४७*

इसमें अन्य गीत भी दृष्टव्य हैं :-

"दुर्दिनमा केरल हरान
रे फिकिरिया मारलक जान।"[1]

निम्नलिखित लोकगीत में अर्थ गाम्भीर्य दर्शनीय है -

"जिनकी भेल पहाड़, उभिर भेल का।।।।ल
नई फेंकऽनई फेंकऽ आहे मोर दिल चन,
नेहिया पिरीतिया के जा।।।ल।
आवऽ आवऽ देखि जा हा।।।ल।"

इनके अतिरिक्त अन्य लोग गीत भी हैं जिनके प्रयोग से उपन्यासों का माधुर्य द्विगुणित हो गया है। 'वरुण के बेटे' से एक उद्धरण दृष्टव्य है -

"कब हूँ पकड़ में न आवे मछरिया।
जुलमी मछरिया चलबल मछरिया।
कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया।
ताल में खेले, तलइया में खेले
कुंइयाँ में डुबकी लगावे मछरिया
कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया
जुल्मी मछरिया।।
रात की बेरिया बिल्कुल लपत्ता।
दिन में नज़र मटकावे मछरिया।
कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया।
जुल्मी मछरिया।।............."

---

1. बलचनमा : नागार्जुन, पृ०सं० 10

समूह गीत :-

नागार्जुन ने समूह गीत भी लिखे। पुरानी जूतियों का कोरस' काव्य संकलन से एक उद्धरण दृष्टव्य है। -

१. अनमोल हमारी धूल है अनमोल हमारी धूल!

धूल हमारी, धूल हमारी, धूल!

टँगे रहेंगे हम बाँसों पर खिले सृष्टि के फूल

हम दुरस्त करने निकले हैं, मानवता की भूल

गमलों में जो कैद पड़े है, उन फूलों पर डालेंगे हम

अपनी प्यारी धूल। धूल हमारी, धूल हमारी, धूल!

है अनमोल है अनमोह, है अनमोल हमारी धूल!

२. महल गिराएँ प्रवंचना के

फूल खिलाएँ नव रचना के

अपना दुख हम तो जाएँगे भूल

गमलों में जो कैद पड़े हैं

उन फूलों पर डालेंगे हम

अपनी प्यारी धूल

धूल हमारी, धूल हमारी, धूल!

छायावादी गीत :-

नागार्जुन के काव्य में छायावादी गीत की भी सृष्टि हुयी है। 'धूप में खिले पात' कविता से उद्धरण दृष्टव्य है –

वर्षा में अनावृत धुले पात

फीके थे कल, आज खुले पात

धूप के जादू में खिले पात

मस्तानी हवा में हिले पात

जादुई साँचे में ढ़ले पात

वर्षा में अनावृत्त धुले पात

फीके थे कल, आज खुले पात'

---

1. *नागार्जुन रचनावली : शोभाकान्त (तुमने कहा था) पृ०सं० ३६०*

(स) शैली :-

कविता में शैली का जितना महत्व भाव को चमत्कारी और प्रेषणीय बनाने के लिये होता है, उतना ही कवि की पहचान के लिये भी।

शैली का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व गहराई के साथ जुड़ा हुआ है, इसलिये दुनिया में जितने तरह के लोग हैं, उतने ही तरह की शैलियाँ भी माननी पड़ेंगी। किन्तु जिस प्रकार दुनिया भर के लोगों को संख्यांकित करना लोहे के चने चबाना है, उसी प्रकार विभिन्न शैलियों को नामांकित कर पाना भी सम्भव नहीं है। अस्तु काव्य के क्षेत्र में जिन शैलियों का प्रयोग प्राचीन काल से होता चला आ रहा है और आधुनिक काल में भी शैली सम्बन्धी जो नवीन प्रयोग किये जा रहे हैं, उन्हीं के आधार पर नागार्जुन की शैलीगत उपलब्धियों का आकलन अधिक सुविधा जनक होगा।

शैली रचनाकार का वैयक्तिक कौशल है जो उसकी निजता का परिचायक होती है। हिन्दी कविताओं में नागार्जुन की शैली बिल्कुल अपनी है। नागार्जुन के काव्य में उनका सारा व्यक्तित्व झांकता हुआ दिखाई देता है। मजदूर-किसानों के प्रति उनकी सहानुभूति पूँजीपतियों, जमींदारों या अवसरवादी नेताओं के प्रति उनके द्वारा व्यक्त फटकार और जीवन के प्रति आस्था के स्वर नागार्जुन की विशेषता है, जो उनकी शैली के प्रमुख आकर्षण बन काव्य में अपना सौरभ बिखेर रहे हैं।

नागार्जुन के काव्य में शैली के दो रूप अत्यन्त स्पष्ट हैं - अभिजात और जनवादी। अभिजात शैली का स्त्रोत वंश परम्परा है तो जनवादी शैली कवि की निजी प्रकृति की सहज अभिव्यक्ति है। मैथिल ब्राह्मणों के पंडित घराने में जन्में कवि की प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला में हुई। काशी के संस्कृत विद्यालय से व्याकरण माध्यमा की। सिंहल जाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और वहीं पालि का गहन अध्ययन

भी किया। इसी तरह कभी गुरू की छाया में तो कभी स्वाध्याय के बल पर नागार्जुन प्राचीन भाषाओं-संस्कृत, पालि, अर्धमागधी, अप्रभ्रंश, सिंहली और उनके साहित्य का नित्य अध्ययन करते रहे हैं। संस्कृत में काव्य रचना भी की जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव आपकी हिन्दी काव्य रचना पर भी पड़ा, विशेष रूप से ऐसी रचनाओं पर जिनके विषय या तो किसी पौराणिक आख्यान से लिये गये हैं या जो एक सीमा तक परम्परागत हैं। इस संदर्भ में हम 'भस्मांकुर' खण्डकाव्य की चर्चा करना चाहेंगे। कामदेव का अनंग रूप में पुनः जीवित हो उठना मनुष्यता की शाश्वत परम्परा की ओर संकेत करता है। एक तो पौराणिक आख्यान, दूसरे गहन विचार का पुट फलस्वरूप -

कौन, मदन, तुमको कर सकता नष्ट!

जयति जयति भस्मांकुर, जयति अनंग!

जयति जयति रतिनाथ, कामनाकंद!

जिजीविषा के उत्स, सृष्टि के मूल!

जयति जयति कंदर्प, अजेय-अमेय!

कौन, मदन तुमको कर सकता नष्ट!

जैसी भाषा का प्रयोग करना ही आपको उचित प्रतीत हुआ। ऐसी भाषा 'भस्मांकुर' के अनेक प्रसंगों में प्रयुक्त हुई है। इसे हम अभिजात शैली कहेंगे। डॉ० शिवकुमार मिश्र ने इस काव्य को 'क्लासिक सौन्दर्य से वेष्टित रचना' कहकर इसी ओर संकेत किया है। स्फुट कविताओं में भी कहीं-कहीं ऐसी भाषा मिलती है, जैसे 'शपथ' के इस अंश में -

पृथ्वी उन्मन

विकल है गगन

नील जलधि शतशः उद्वेलित

स्तब्ध हिमालय के शिखरों पर धनीभूत हो रहे तुहिन-कण

'भारती सिर पीटती है', 'लाल बहादुर' आदि कविताओं में भी इस शैली के दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं चुटीले व्यंग्य के लिये भी यह शैली अपनायी गयी है, जैसे 'जयति नखरंजनी' कविता में। किन्तु नागार्जुन का निजी व्यक्तित्व जनवादी शैली में ही निखरा है। डॉ० शिवकुमार मिश्र के शब्दों में "नागार्जुन की कविता की केन्द्रीय विशेषता है मानवीय जीवन से उसकी गहन संपृक्ति ..... नागार्जुन की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रखर सामाजिकता है.... प्रखर सामाजिकता का यह सन्दर्भ, जिसका स्त्रोत नागार्जुन के प्रगतिशील वैज्ञानिक विचार दर्शन में निहित है, नागार्जुन की कविता को मात्र जीवन की स्वीकृति देने वाली कविता के रूप में ही नहीं, जीवन को बदलने वाली कविता के रूप में प्रतिष्ठा देता है .... नागार्जुन की कविता इसी अर्थ में समाज केन्द्रित, लोक केन्द्रित, मनुष्य केन्द्रित, जनता के कवि की, जनता के लिये कविता है।" ('भस्मांकुर' का कवि : एक परिचय)

इस दृष्टि से नागार्जुन कबीर की परम्परा के कवि हैं जिसमें 'आंखिन देखी' बात कही जाती है 'कागद की लेखी' नहीं। 'खिचड़ी विप्लव देखा हमनें', 'चन्दू मैंने सपना देखा', ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा?', 'बाढ़', '६७ पटना', 'देख लो', 'इनके कई-कई माथ हैं', 'तीन दिन तीन रात', 'बहुत दिनों के बाद', आदि कविताओं के शीर्षक ही कवि की व्यक्तिगत अनुभूति की ओर संकेत करते हैं। युवावस्था से ही समाज के त्रस्त वर्ग के लिये करुणा का अनुभव करने वाले और अत्याचारी वर्ग के प्रति क्रोध से उन्मत्त हो उठने वाले कवि के लिये लोक शैली से जुड़ जाना स्वाभाविक ही है। हम यहाँ शैली विज्ञान की दृष्टि से नागार्जुन की प्रमुख शैली-जनवादी शैली पर संक्षेप में विचार करेंगे।

कवि भाषा का प्रयोग दो दृष्टियों से करता है -

(१.) विचार सम्प्रेषण और (२) भावाभिव्यक्ति के लिए। दोनों ही उद्देश्यों की सिद्धि के लिए कहीं शब्दार्थ के शैलीय उपकरण तो कहीं वाक्यात्मक शैलीय उपकरण उपयोग में लाये जाते हैं। हमारा उद्देश्य चूँकि नागार्जुन के काव्य के माध्यम से शैली विज्ञान का विश्लेषण करना नहीं है वरन् शैली-विज्ञान की दृष्टि से आपकी जनवादी शैली को रेखांकित करना हैं इसीलिये हम केवल विशिष्ट उपकरणों तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

लोक जीवन की अभिव्यक्ति के लिये ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द व्यापार बोधकता सर्वाधिक सहायक होते हैं। ऐसे शब्द पाठक या श्रोता का गोचर जगत् से सीधा सम्बन्ध जोड़ देते हैं। जनवादी कवि एक प्रकार से लोक गायक होता है। उसकी रचनाओं में जीवन के ऐसे व्यापार आग्रहपूर्वक समाविष्ट किये जाते हैं जिन्हें अभिजात वर्ग भले ही भदेस कहें किन्तु जो जीवन से अनिवार्यतः जुड़े होते हैं। भोजन व्यापार इसका विशिष्ट उदाहरण है।

कड़-कड़ कड़ाक कड़ कुस्स

धु-स सु स् - सु स - सु स् - सू स् .....

x x x x

धूसर भाकुर की वह मांसल कनपट्टी

भड़-भड़-भड़-भड़ फट-फट फट-फट फट

किस रहस्य की खोल रही थी गाँठ?

(तालाब की मछलियाँ)

ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द अन्य इन्द्रियों के व्यापारों का भी किस तरह बोध कराते

हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है –

सर-सर-सर-सर, खर-खर-खर-खर

दूर का फैसला चट कर गयी पार

x x x x

भुस का पुतला

दप-दप उजला

(भुस का पुतला)

अर्थमूलक शैलीय उपकरणों में लाक्षणिक पर्यायवाचिता का बहुधा प्रयोग होता है। जब से सामाजिक जीवन में कथनी और करनी में अन्तर बढ़ गया है, व्यंग्य का प्रयोग भी साहित्य की हर विधा में बढ़ गया है। सम्भवतः इसी आधार पर कुछ लोग व्यंग्य को एक स्वतन्त्र विद्या ही मानने लग गए हैं। शब्द की लक्षणा शक्ति व्यंग्य का मूल उपकरण है। नागार्जुन की कविताओं में व्यंग्य का बाहुल्य है। 'घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती' कविता में रजत जयन्ती की व्यंग्यात्मक व्याख्या लाक्षणिक पर्यायवाचिता का सुन्दर उदाहरण है –

अस्सी प्रतिशत दीन जनों की कष्ट-कथा है रजत जयन्ती

पर दुख-कातर तपोधनों की विकट व्यथा है रजत जयन्ती

अमृत-मन्थनी प्रवंचना की नयी प्रथा है रजत जयन्ती

कथित कथन, चर्वित चर्वण की मंथी-मथा है रजत जयन्ती

अर्थ गुण के अन्तर्गत आने वाला व्यंग्य मिश्रित उपहास एक सटीक उदाहरण है –

मैं भी ग्यारह महीने/हवा खा आता कृष्ण मन्दिर की .... (बाल-बाल बचा हूँ मैं तो ....) किसी भी अमांगलिक कार्य अथवा वस्तु के लिये मंगल सूचक शब्द रखने की प्रथा है। किन्तु जहाँ जेलखाने के लिये कृष्ण मन्दिर का प्रयोग व्यंग्यपूर्ण है।

लाक्षणिक प्रयोगों के ऐसे उदाहरण नागार्जुन में बहुत मिलते हैं जहाँ आधार-आधेय अथवा अंगांगी सम्बन्ध आदि (शुद्धांलक्षणा) के आधार पर उल्लिखित वस्तु को प्रतीक बनाने की भी चेष्टा की गई है। जनवादी कवि की यह विशेषता होती है कि बहुसंख्य समाज को समाविष्ट करने के प्रयास में उसका दृष्टिफलक अत्यन्त व्यापक हो जाता है। 'शपथ' कविता का निम्न उदाहरण है -

खेत-खान में, मिल-मकान में/ पुतलीघर में, चा-बगान में
वर्कशाप में, बाट-घाट पर/स्कूल और कालेजों में भी
गाँव-गाँव में, नगर-नगर में/गली-गली में मोड़-मोड़ पर
कहाँ नहीं तेरी चर्चा है -

यहाँ जिन स्थानों की चर्चा हुई है, उनके माध्यम से जन-कवि 'जन' की व्यापकता, या कहूं, सर्वव्यापकता का बोध कराना चाहता है। पर्यायवाची शब्दों की आवृत्ति के दोष से यह कविता दूषित हो सकती है किन्तु बिना इस प्रकार की आवृत्ति के कवि का मनोगत भाव व्यक्त नहीं हो सकता था।

इसी संदर्भ में पुनरुक्ति पर विचार कर लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। शैली का यह उपकरण कविता को लोक-कला से जोड़ता है। लोक कवि के पास एक टेक होती है। जैसे काफिया और रदीफ हर स्वतन्त्र शेर को एक गजल का अंग बनाने में सहायक होता हैं उसी तरह टेक छोटे-बड़े छन्दों को जोड़कर गीत की एकता बनाए रखती है। हाँ यह टेक एक विशिष्ट भाव की बोधक होनी चाहिए। इसी प्रकार जनवादी

शैली में एक विशिष्ट विचार अथवा भाव के वाहक पद/पद समूह की आवृत्ति विशिष्ट प्रभाव को पैदा करने के लिये आवश्यक हो जाती है। नागार्जुन के काव्य में इस प्रकार की पुनरुक्ति के दो रूप मिलते हैं - संचयनमूलक और व्यवधान मूलक।

संचयनमूलक पुनरुक्ति में प्रत्येक पंक्ति में लगातार आवृत्ति होती चलती है। कवि की अपनी योजनानुसार किसी एक संचारी के उद्‌बोधन के लिये यह आवृत्ति चार-छह बार भी हो सकती है और पूरी कविता में भी हो सकती है। 'वह कौन था' एक लम्बी कविता है और उसमें अनेक संचारियों का समावेश हुआ है। उनमें से एक-हर्ष-के उद्‌बोधन के लिये सीमित संचयनमूलन पुनरुक्ति का उपयोग किया गया है -

अब आजाद होंगे नगर, आजाद होंगे गाँव/अब आजाद होगी भूमि
अब आजाद होंगे खेत / अब आजाद होंगे कारखाने

इसी का दूसरा रूप 'ऐसा क्या अब फिर-फिर होगा?' कविता में मिलता है-

ग्रामवासिनी-नगरवासिनी / माताओं-बहनों-बहुओं की
रूकी निगाहें, झुकी निगाहें / क्रुद्ध निगाहें, क्षुब्ध निगाहें
अरुण निगाहें, करुण निगाहें / जरी निगाहें, भरी निगाहें
तरल निगाहें, सजल निगाहें / व्यथित निगाहें, मथित निगाहें
स्तब्ध निगाहें, शून्य निगाहें। .....

इन पंक्तियों में भावशबलता के लिये 'निगाहें' संज्ञा के साथ विभिन्न विशेषणों का बड़ा सटीक उपयोग हुआ है। जिससे जन व्याप्ति का संकेत भी मिलता है।

संचयनमूलक पुनरुक्ति का प्रयोग कभी-कभी कवि ने अपनी बात पर बल देने के लिये भी किया है। लगता है जैसे वह किसी मंच पर खड़ा है, चारो ओर जनसमूह

है। उसके मन में एक विचार कौंध जाता है तो जब तक उसे चारों ओर वह दुहरा नहीं लेगा तब तक बात आगे कैसे बढ़ सकती है? अथवा, लगता है कवि अध्यापक बन गया है। सामने बैठे जिज्ञासु बात को पूरी तरह समझ सके, इसके लिये किंचित हेर-फेर के साथ बात को दुहराना आवश्यक हो जाता है। दोनों प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

१. कोई अदना हो यदि दिल्ली का दरोगा
तब क्या होगा, तब क्या होगा, तब क्या होगा

२. तुम्हें भला क्या पहचानेंगे बांदा वाले।
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे साहब काले।
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे आम मवक्किल।
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे शासन की नाकों पर के तिल।
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे जिला-अदालत के वे हाकिम
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे मात्र पेट के बने हुए हैं जो कि मुलाजिम
(ओ जन-मन के सजग चितेरे)

'चन्दू मैने सपना देखा' शीर्षक कविता संचयनमूलक पुनरुक्ति का विशिष्ट उदाहरण है।

ग्राम्य शब्द जनवादी शैली के प्राण होते हैं। उनका प्रयोग किसी भी रचना को जनता की धरोहर बनाने में सहायक होता है। नयी कविता में इसके उदाहरण मिल सकते हैं। हमारा संकेत उन सहज-स्वाभाविक प्रयोगों की ओर है जिन्हें कहने वाले और सुनने वाले, लिखने वाले और पढ़ने वाले दैनंदिन व्यवहार की भाषा का एक अंग मानकर चलते हैं, जिन्हें वे अपने हृदय के अत्यन्त निकट पाते हैं, जिनसे ग्रामीण धरती

की गंध आती है। ये शब्द प्रदेश या वर्ग विशेष से सम्बद्ध भी हो सकते हैं, तद्भव रूप भी हो सकते हैं और केवल भरती के भी। इनमें कभी-कभी शब्द का व्याकरण सम्मत रूप नहीं वरन् उच्चरित रूप जानबूझकर रखा जाता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है-

(१) मूंड रहे दुनिया-जहान को तीनों बन्दर बापू के (तीन बन्दर बापू के)

(२) छेंक रखी है राह (अच्छा किया उठ गए हो दुष्ट)

(३) खटते थे, अब तो और भी खटते हैं (बाढ़ ६७ - पटना)

(४) मुँह में तीन रंग का झंडा चाँपे बाघ खड़ा है (अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन)

(५) कुट्टी-कुट्टी करके / हल्दी-दही नमक मिझड़ाकर सुच्चा कडू तेल में तलने बैठी जब वह सकृत्प्रसूता (तालाब की मछलियाँ)

(६) धरती धरती है /पन्हाई हुई गाय नहीं (धरती)

(७) पोर-पोर में गसे थे टूसे (यह तुम थीं)

इस वर्ग में भुरुगवा, टिकोरे, नेह-छोह, चकल्लस, कित्ते, कुच्छों, ठो, निचाट आदि शब्दों को भी रखा जा सकता है।

मुहावरे और कहावतें अपने आप में पूर्ण वाक्य होते हैं और उनका उपयोग एक इकाई के रूप में होता है। उनमें हेर-फेर की गुजाइश नहीं होती। इसीलिये शैली वैज्ञानिक उन्हें वाक्यात्मक शैलीय उपकरणों से अलग मानते हैं। हमारे मतलब की बात इसमें बस इतनी है कि जो भी साहित्यकार अपने को 'जन' से जोड़कर 'जन' के लिये लिखता है वह मुहावरों और कहावतों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता वरन् एक सीमा तक उनके प्रति आग्रहशील रहता है। प्रेमचन्द और यशपाल इसके प्रमाण हैं।

किन्तु इन लोगों ने गद्य लिखा जिसमें मुहावरों आदि का समावेश सरलता से किया जा सकता है। नागार्जुन ने कविता में भी धड़ल्ले से मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है जिससे भाषा पर अपना असाधारण अधिकार सिद्ध होता है। कभी भाव या विचार की सटीक अभिव्यक्ति के लिए तो कभी व्यंग्य को और तीखा बनाने के लिए इनका उपयोग हुआ है।

यथा –

(१) हमें अंगूठा दिखा रहे हैं तीनों बन्दर बापू के (तीनों बन्दर बापू के)

(२) कर गये खतम खेल तुम अपने (रवि ठाकुर)

नागार्जुन के काव्य लेखन में व्यंग्यात्मक शैली पूरे हिन्दी साहित्य में अकेली है। कवि ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है, लेकिन व्यंग्यात्मक शैली में कवि पूर्ण रूप से सफल हुआ है। उनके कहने का लहजा, ढंग, वाक्यों का ऊबड़-खाबड़ आदि उनका अपना है। कवि की शैली में एक प्रकार का चमत्कार मिलता है, जो पाठक को अपनी ओर तुरन्त खीच लेता है, नागार्जुन के शैली सम्बन्धी कुछ प्रयोग के उद्धरण दृष्टव्य हैं। जैसे–

वर्णनात्मक शैली या इति वृतात्मक :–

वर्णनात्मक शैली में कवि की लम्बी कविताएँ सम्मिलित की जानी चाहिए। ऐसी कविताएँ जिनमें वस्तु चित्रण को प्रमुखता दी जाती है, वर्णनात्मक या इतिवृतांत्मक शैली की कविताएँ मानी जाती हैं। नागार्जुन की अधिकांश लम्बी कविताओं को इसी वर्ग में रखा जा सकता है, जिनमें या तो किसी जीवन चित्र इतिवृत्तात्मक रूप में अंकित हुआ है, या फिर किसी स्थिति पर कवि ने विस्तार पूर्वक प्रकाश डालने का प्रयास किया हो। ऐसी कविताओं में 'विजयी के वंशधर', 'जयति जयति जय सर्वमंगला', 'बन्धु डा०

जगन्नाथ', 'नेवला' और 'हरिजन गाथा' का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। हरिजन गाथा में कवि ने बिहार के एक पिछड़े हुए ग्राम बेलछी के हरिजनों के सामूहिक हत्याकाण्ड का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। जनता सरकार के सत्तारूढ़ होने के तुरन्त बाद २६ मई, १९७७ के दिन "आपसी भूमि विवाद को लेकर हुए इस हमले में दो सोनार एवं नौ हरिजन युवक जिन्दा जला दिये गये थे।"[1] नागार्जुन ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार से किया है -

ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि
महज दस मील दूर पड़ता हो थाना
और दरोगा जी तब बार-बार
खबरें पहुँचा दी गई हों संभावित दुर्घटनाओं की
और निरंतर कई दिनों तक
चलती रही हों तैयारियाँ सरेआम
(किरासिन के कनस्तर, मोटे-मोटे लक्कड़,
उपलों के ढ़ेर, सूखी घास-फूस के पूले
जुटाए गए हों उल्लासपूर्वक)
और एक विराट चिताकुंड के लिए
खोदा गया हो गड़ढ़ा हँस-हँसकर
और ऊँची जातियों वाली वो समूची आबादी
आ गई हो होलीवाले 'सुपर मौज' के मूड में
और, इस तरह जिंदा झोंक दिए गए हों

---

1. *अमृत प्रभात : २० मई, १९८० पृ०सं० १*

तेरह के तेरह अभागे मनुपुत्र

सौ-सौ भाग्यवान मनुपुत्रों द्वारा

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था ....

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था ....'

'एक मित्र को पत्र' कविता में भी इस शैली का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है -

यदि कदाचित्

जेठ औ आषाढ़ के बोझिल दिनों की

यह सिसकती सांझ

तुमको स्मृति दिलाये

हिमालय पर घिरे घन की

यदि कदाचित्

सदानीरा के किनारे

खड़े होकर

घ्यान में आ जाय वह क्षण

जब कि पहले-पहल हम-तुम

मिले थे औ' परस्पर को ताकते ही रह गये थे

साँस रोके खड़ी थी इंजन हमारी बात सुनती

यदि कदाचित्

मकई मडुआ साम-कावन धान-गम्हड़ी आदि

---

1. *खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, पृ०सं० 120*

बोए जा रहे हों

बागमती कमला कि गंडक कोसकी के

स्वर्णगर्भित अंचलों में

तो तुम्हारे कंठ से ही

महाकवि मेरा गरजने जा रहा है

दूत बनकर मेघ विरहिन को न आगे ठग सकेगा

नहीं कविकुल-गुरू धरा की ठोस मिट्टी छोड़ नभ

को ढ़क सकेगा

मंद-क्रम के छंद वे हो जाएँगे तब तीव्रगामी

नहीं होंगे दास, होगा नहीं स्वामी

मैं प्रवासी

मित्र, तुम तो देश में हो ....

शैली के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन शैलियों के मिश्रित प्रयोग भी कई जगह किये गये हैं। वस्तु वर्णन के साथ व्यंग्य का पुट अधिकांश कविताओं के जुड़ा हुआ है। नागार्जुन की उपर्युक्त पंक्तियों में भी यह पुट देखा जा सकता है।

उद्‌बोधनात्मक शैली :-

उद्‌बोधनात्मक शैली वहाँ देखी जा सकती है जहाँ कवि का चिन्तन पक्ष उभरा है और फलस्वरूप उसने कुछ उद्‌बोधन देने का प्रयास किया हो। इस शैली के दर्शन हमें वर्णनात्मक कविताओं में कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। किन्तु कवि की यह प्रवृत्ति नीरस या मात्र उपदेशनात्मक बनकर ही नहीं रह गयी है। अभिव्यक्ति का ढ़ंग ऐसा है

कि पाठक उससे सहमत होता चलता है। कहीं प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कविताओ में भी उद्‌बोधन यह रूप देखा जा सकता है। 'बसन्त की अगवानी' कविता के अन्त में माँ सरस्वती का स्मरण होने पर कवि ने लिखा है :

जग बसन्त की भगवानी में बाहर निकला
माँ सरस्वती ठौर-ठौर पर पड़ी दिखाई
प्रज्ञा की उस देवी का अभिवादन करने
आस्तिक-नास्तिक सभी झुक गए, माँ मुस्काई
बोली-बेटे, लक्ष्मी का अपमान न करना
जैसी मैं हूँ, वह भी वैसी माँ है तेरी
धूर्तों ने झगड़े की बातें फैलाई हैं
हम दोनों ही मिल-जुल कर संसार चलाती
बुद्धि और वैभव दानों यदि साथ रहेंगे
जन-जीवन का यान तभी आगे निकलेगा।[1]

कहीं कवि ने युवकों का अभिनन्दन करते हुए स्पष्ट कहा है -

लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो
सेतु बनो प्रज्ञा, प्रयत्न के मध्य
शांति को सर्व मंगला हो जाने दो।...[2]

इनके अतिरिक्त नागार्जुन की 'मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा'[3] तथा 'नित नये मिलन हैं'[4] - आदि कविताओं को उद्‌बोधन शैली का उदाहरण माना जा सकता है।

---

१. *सतरंगे पंखों वाली : (बसन्त की अगवानी), पृ० ३२*
२. *तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ०सं० ११०*
३. *तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ०सं० ६४*
४. *खिचड़ी विप्लव देखी हमने : नागार्जुन, पृ०सं० ११३*

जैसे -

तुम उनकी साजिशों को खत्म कर दोगे
तुम प्रवंचना की उनकी कुटिल चालों का अंत कर दोगे
हत्याएँ करने-करवाने की-
ठंडी फॉसियाँ देने-दिलवाने की
चुपचाप जहर घोलने-घुलवाने की-
कारागार की नरकीय कोठरियों में
मानवता को गलाने-गलवाने की-
यानी, उनकी एक-एक साजिश को
तुम खत्म कर दोगे
हमेशा-हमेशा के लिए!
मैं तुम्हारा ही पता लगाने के लिए
घूमता फिर रहा हूँ
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात!
आगामी युगों के मुक्ति-सैनिक, कहाँ हो तुम?
निपीड़ित-शोषित मानवता के उद्धारक, कहाँ हो तुम?

'नित नये मलन हैं' से एक उद्धरण दृष्टव्य है -

नित-नए मिलन हैं पुराने यारों के
घिनौने इंगित हैं रँगे सियारों के
दिखावा है, छल है
मल ही मल है

हल्ला है, शोर है, हुआँ-हुआँ है

कुआँ है, कुआँ है कदम कुआँ है

इधर नहीं बढ़ना-

विक्षुब्ध नौजवानों, होशियार!

इधर नहीं बढ़ना

X X X

बेसहारे भूमिहीनों, होशियार!

इधर नहीं बढ़ना-

दुखियारे गमगीनों, होशियार

क्रांति का कुहासा है इस ओर

भ्रांति का धुआँ है इस ओर

कदम कुआँ है इस ओर ....

व्यंग्यात्मक शैली :-

व्यंग्यात्मक शैली नागार्जुन-काव्य का प्रमुख आकर्षण है। उनकी अधिकांश कविताएँ इस शैली से ओत-प्रोत हैं। कहीं इसका प्रखर रूप उनके काव्य में दिखाई देता है। "स्वदेशी नेताओं के भ्रष्टाचार, पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण, अस्वस्थ रूढ़ परम्पराओं आदि सब पर तीखे व्यंग्य उन्होंने किये हैं। इस व्यंग्य में 'रामराज्य के सपने टूटने पर तेवर बदलती हुई हिन्दुस्तानी जनता की रोषभरी फुफ्कार का रूप गृहण कर लिया है।"[1] नागार्जुन के व्यंग्य में कहीं मीठी चिकोटी और कहीं तिक्तता से युक्त आक्रोश का रूप हमें दिखाई देता है। वी० नारायणन् कुट्टी के अनुसार, "स्वास्थ और मार्मिक व्यंग्य करने के लिये सच्चा अनुभव तीव्र अनुभूति और मानसिक स्वस्थ्य एवं

---

1. *डॉ० राम विलास शर्मा : युगधारा (कवर)*

तटस्थता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है, जिसके आभाव में व्यंग्य करने का प्रयास मात्र आक्रोश रह जाता है।"[1]

किन्तु नागार्जुन के व्यंग्य में इन सब गुणों के साथ आक्रोश भी देखा जा सकता है, जो कवि ने आशिव शक्तियों पर व्यंग करते हुये व्यक्त किया है। तेजी और गर्मी ने नागार्जुन के काव्य में आक्रोश का रूप ले लिया है। प्रायः शोषितों की असहनीय पीड़ाओं को देख, उसकी तीव्र प्रतिक्रिया उत्तरदायी परिस्थितियों के विरुद्ध व्यंग्य-मिश्रित आक्रोश का रूप ले नागार्जुन-काव्य में उभरी है। नेताओं को जनहित की स्पष्ट अवहेलना करता एवं मात्र अपनी स्वार्थ सिद्धि में संलग्न होता देख कवि ने इसे 'रामराज्य में रावण का नंगा नाच' निरूपित किया है, वह आक्रोश से पुकार उठा है-

रामराज्य में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है
सूरत शकल वही है, बिल्कुल बदला केवल ढ़ाँचा है
नेताओं की नीयत बदली, फिर तो अपने ही हाथों,
भारत-माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है। [२]

व्यंग्यात्मक शैली के विविध रूप हमें नागार्जुन में दिखाई देते हैं। किसी-किसी कविता में व्यंग्य, आक्षेप, हास्य, आक्रोश और प्रहार एक साथ दिखाई पड़ते हैं। व्यंग्य-रचना के लिए नागार्जुन ने विविध शैलियाँ अपनायी हैं। "चना जोर गरम" के लटके की शैली से लेकर मुक्त वृत्त के आधुनिकतम रूप को उन्होंने व्यंग्य-रचना का माध्यम बनाया है।

चीं-चीं चें-चें चटक-मटक है
घटकवाद की उठा-पटक है

---

१. वी० नारायण कुट्टी : हिन्दी की नई कविता।
२. हंस ('रामराज्य' शीर्षक कविता) : जून, १९४९, पृसं० ४९३, पद क्र० ६

जै-जै राम सटाक-सटक है

व्यंग्यात्मक शैली में 'तीनों बंदर बापू के' कविता से एक उद्धरण दृष्टव्य है -

छील रहे गीता की खाल

उपनिषदें हैं इनकी ढ़ाल

उधर सजे मोती के थाल

इधर जमें सतजुगी दलाल

मत पूछो तुम इनका हाल

सर्वोदय के नटवर लाल।

नाटकीय शैली :-

इनकी नाटकीय शैली बेहद सराही जा चुकी है। सौदा, प्रेत का बयान, मास्टर अमलेन्दु, एम०एल०ए० आदि इसी शैली की रचनाएं हैं। जैसे - जिन्होंने व्यंग्य रचना के क्षेत्र में नवीन प्रतिमान प्रस्तुत किये हैं।'

१. चार बीड़ा पान थमाकर बोले मिस्टर ओसवाल :

बिजनेस बिजनेस है!

एमोशनल होने से चलता नहीं काम

जाइए, अभी आप कीजिए आराम...

घिसे हुए रिकार्ड की थर्राती ध्वनि में

---

१. हरिनारायण मिश्र : समकालीन हिन्दी कविता में व्यंग्य विद्रूप, ग्रन्थ : (नई कविता) पृ० १०२, सम्पादक - वासुदेवनन्दन प्रसाद सिंह।

बोला आखिर मैं भी :

ठीक ही तो फरमाते हैं आप

मार्केट डल् है जेनरल बुक्ल का

चारों ओर स्लम्पिंग है; मगर! मगर, दो साल हो गए

बेटा जकड़ा है बोन-टी-बी की गिरफ्त में

पचास ठो रूपइया और दीजिएगा

बत्तीस ग्राम स्टपटोमाइसिन कम नहीं होता है

जैसा मेरा वैसा आपका

लड़का ही तो ठहरा

एँ हें हें कृपा कीजिएगा।

२. "ओ रे प्रेत" -

कड़ककर बोल नरक के मालिक यमराज

"सच सच बतला

कैसे मरा तू?

भूख से, अकाल से?

बुखार, कालाजार से?

पेचिश, बदहजमी, प्लेग, महामारी से?

कैसे मरा तू, सच-सच बतला।"

खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़

काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढ़ाँचा

नचाकर लम्बी चमचों - सा पंच गुरा हाथ

रूखी-पतली किट-किट आवाज़ में

प्रेत ने जवाब दिया :

"महाराज!

सच-सच कहूँगा

झूठ नहीं बोलूँगा

अब हम गुलाम नहीं

नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के।

भावात्मक शैली :-

नागार्जुन मुख्यतः यथार्थवादी रूझान के कवि हैं, पर कहीं-कहीं वे मानवीय रागों के प्रति भी समर्पित हुए हैं और ऐसे स्थलों पर उनकी शैली भावात्मक हो गई है। नागार्जुन की 'ओ जन-मन के सजग चितेरे' इसी शैली में रचित है। तालाब की मछलियाँ, में संग्रहीत 'जया', 'सिन्दूर तिलकित भाल', तथा 'दन्तुरित मुस्कान' भी इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं।

उदाहरणार्थ :-

नीचे देखा

तलहटियों में

छतों और खपरैलोंवाली

सादी-उजली लिपी-पुती दीवारों वाली

सुन्दर नगरी बिछी हुई है

उजले पालों वाली नौकाओं से शोभित

श्याम-सलिल सखर हैं बाँदा

नीलम की घाटी में उजला श्वेत कमल-कानन है बाँदा।

अपनी इन आँखों पर मुझको

मुश्किल से विश्वास हुआ था

मुँह से सहसा निकल पड़ा-

क्या सचमुच बाँदा इतना सुन्दर हो सकता है

यू०पी. का वह पिछड़ा टाउन कहाँ हो गया गायब सहसा

बाँदा नहीं, अरे यह तो गंधर्व नगर है .....

यह दंतुरित मुस्कान कविता से भावात्मक शैली का एक उदहरण दृष्टव्य है-

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान

मृतक में भी डाल देगी जान

धूलि-धूसर तुम्हारे ये गात ....

छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात

परस पाकर तुम्हारा ही प्राण

पिघलकर जल बन गया होगा कठिन पाषाण

छू गया तुमसे कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल

बाँस था कि बबूल?

तुम मुझे पाए नहीं पहचान?

देखते ही रहोगे अनिमेष।

थक गए हो?

आँख लू मैं फेर?

क्या हुआ यदि हो सके परिचित न पहली बार?

यदि तुम्हारी माँ न माध्यम बनी होती आज

मैं न सकता देख

मैं न पाता जान

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान

संवाद शैली :-

नागार्जुन ने संवाद शैली का भी कहीं कहीं प्रयोग किया है। 'पुरानी जूतियों का कोरस' तथा 'रत्नगर्भ' काव्य संग्रह से उदाहरण दृष्टव्य है -

१. कवि ....

हे बुद्बुद प्रियदर्शी, फिर भी

उब-डुब उब-डुब करने वाले।

किस मस्ती में झूम रहे तुम

अपने को यों भूले भाले?

बुदबुद्.....

हम क्षणिक सत्य, पर जीवन का

किंचित् भी हम को मोह नहीं

कुछ नफा नहीं, नुकसान नहीं

(पुरानी जुतियों का कोरस)

२. शुद्धोदन बोले -

"क्या आज कुमार

जन्मभूमि पर कृपा करेंगे सौम्य?

शीतल होगा यह सिंहासन आज

पाकर के उनका आह्लादक स्पर्श?

भद्रे, कहाँ से लाए हो सन्देश -

कितनी दूर यहाँ से है वह स्थान?

स्वागत करके ले आवें तत्काल

चलो चलें आगे जाकर हम लोग

प्रिय कुमार को, जीवन-धन के आह।"

रत्न-जटिल केयूर-किरण परिपूर्ण

दक्षिण हाथ उठाकर एक सदस्य

नृप से बोला -

-"महाराज, है कौन

महाप्राण वह पुरुष चराचर मध्य

उठकर शाक्य शिरोमणि अपने आप

किसके हेतु करेंगे अभ्युत्थान।"

(रत्नगर्भ)

द. शैली सम्बंधी अन्य प्रयोग :-

परम्परागत शैलियों के अतिरिक्त नागार्जुन ने कई नवीन शैलियों-लोकगीत शैली, समूह गान शैली, फेरी वाली शैली, में भी अनेक सुन्दर रचनाएँ की हैं।

लोकगीत शैली :-

नागार्जुन के 'तुमने कहा था' काव्य संकलन में संग्रहीत 'पावस तुम्हें प्रणाम', 'फूले कदम्ब', 'धन-कुरंग', 'मेघ बजे' और 'धूप में खिले पात' कविताओं को लोकगीत शैली के अच्छे उदाहरणों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ -

लोचन अंजन, मानस रंजन

पावस, तुम्हें प्रणाम

ताप-तप्त वसुधा दुख-भंजन

पावस, तुम्हें प्रणाम

ऋतुओं के प्रतिपालक ऋतुवर

पावस, तुम्हें प्रणाम

अतुल अमित अंकुरित बीजधर

पावस, तुम्हें प्रणाम

नेह-छोह की गीली मूरत

पावस, तुम्हें प्रणाम

(तुमने कहा था)

२.

फले कदम्ब

टहनी-टहनी में कंदुक सम झूले कदम्ब फूले कदम्ब

सावन बीता

बादल का कोष नहीं रीता

जाने कब से वो बरस रहा

ललचाई आँखों से नाहक

जाने कब से तू तरस रहा

मन कहता है, छू ले कदम्ब

फूले कदम्ब

झूठे कदम्ब

(तुमने कहा था १६६४)

३.

धिन धिन धा धमक -धमक

मेघ बजे

दामिनि यह गई दमक

मेघ बजे

दादुर का कंठ खुला

मेघ बजे

धरती का हृदय धुला

मेघ बजे

पंक बना हरिचंदन

मेघ बजे

हलका है अभिनन्दन

मेघ बजे

धिन धिन धा ......

(तुमने कहा था)

एक विशेष प्रकार की लोकगीत शैली में भी नागार्जुन ने कुछ सफल प्रयोग किये हैं। इस दृष्टि से उनकी निम्नलिखित कविता अपना विशेष महत्व रखती है -

पाँच-पूत भारत माता के दुश्मन था खूँखार
गोला खाकर एक मर गया, बाकी रह गये चार
चार पूत भारत माता के, चारों चतुर प्रवीन
देश निकाला मिला एक को, बाकी रह गये तीन
तीन पूत भारत माता के, लड़ने लग गये वो,
अलग हो गया उधर एक, अब बाकी बच गये दो
दो बेटे भारत माता के, छोड़ पुरानी टेक
चिपक गया है एक गद्दी से बाकी बच गया एक

एक पूत भारत माता का, कंधे पर था झण्डा

पुलिस पकड़ कर जेल ले गई, बाकी बच गया अण्डा।

फेरी वालों की शैली :-

नागार्जुन ने अपनी कवि-दीक्षा साम्यवादी विचारधारा से ग्रहण की है, इसीलिए इनकी रचनाओं में प्रचारात्मकता सर्वत्र देखी जा सकती है। इनकी प्रारम्भिक कविताओं में यह प्रचारक प्रवृत्ति अधिक थी। जिस तरह गली-गली घूमकर फेरी वाले अपना माल बेचते हैं, वैसे ही इन्होंने साम्यवादी नीतियों का प्रचार व कांग्रेस की कटुनिंदा गला फाड़-फाड़ कर की। नागार्जुन की 'चना जोर गरम' कविता फेरी वाली शैली का सुन्दर उदारहरण है -

चना जोर गरम प्यारे

मैं लाया मजेदार चना जोर गरम

चना खाएँ कांग्रेसी लोग

कि जिनमें दुनिया-भर के रोग

साधते सत्त-अहिंसा योग

लगते फिर भी सब कुछ भोग

पहनते हैं खद्दर का चोंगा

नहीं हैं देस-कोस का सोग

राज से न हो जाए वियोग

इसी से फैलाते हैं फोग

वोट पाने का है उद्योग

भिड़ाते हैं छल-बल का जोग

वतन को बना दिया बाजार

प्रजा को छोड़ दिया मझदार

चना जोर गरम.....

चना है बना मसालेदार

खाइये भी तो यह सरकार

नारेबाजी की शैली :-

नागार्जुन की परवर्ती कविताओं में एक नयी शैली के दर्शन होते हैं, जिसे- 'नारे-बाजी की शैली' नाम दिया जा सकता है। इस शैली में उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं। 'खिचड़ी विप्लव देखी हमने' संग्रह 'चन्दू मैनें सपना देखा', 'परेशान है कॉंग्रेसी', तथा 'जनता वाले परेशान हैं' कविताएँ इसी शैली में लिखी गयी हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

१. जनता वाले परेशान हैं, तंत्र-मंत्र से, त्राटक से

जनता वाले परेशान हैं, देवी जी के नाटक से

जनता वाले परेशान हैं, नई-नई हड़तालों से

जनता वाले परेशान हैं, आर०एस०एस० वालों से।

२. जे०पी० अब 'सम्पूर्ण संत' हैं, परेशान हैं कॉंग्रेसी

बाकी सब 'धोधा वसंत' हैं, परेशान हैं कांग्रेसी

इंद्रा डटकर बाह आईं, परेशान हैं कांग्रेसी

बलछी पहुँची 'जनता-माई', परेशान हैं कांग्रेसी

३.

चंदू, मैनें सपना देखा, कल-परसों ही छूट रहे हो

चंदू, मैनें सपना देखा, खूब पतंगे लूट रहे हो

चंदू, मैने सपना देखा, लाए हो तुम नया कलैण्डर

चंदू, मैने सपना देखा, तुम हो बाहर, मैं हूँ बाहर

चंदू, मैने सपना देखा, भभुआ से पटना आए हो

चंदू, मैने सपना देखा, मेरे लिए शहद लाए हो।

मंत्र शैली :-

नागार्जुन ने शैली के क्षेत्र में और भी कुछ नितान्त नवीन प्रयोग किये हैं। उनकी 'मंत्र' कविता मंत्र-शैली का एक अच्छा उदाहरण है। इस कविता में कवि ने मंत्रोच्चारण की भंगिमा में सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों पर तीखे व्यंग्य किये हैं-

ओं दलों में एक दल अपना दल ओं

ओं अंगीकरण, शुद्धीकरण, राष्ट्रीकरण

ओं मुष्टीकरण, तुष्टीकरण, पुष्टीकरण

ओं एतराज, आक्षेप, अनुशासन

ओं गद्दी पर, आजन्म बज्रासन

ओं ट्रिब्युनल, ओं आश्वासन

ओं गुट-निरपेक्ष सत्ता सापेक्ष जोड़-तोड़

ओं छल-छंद, ओं मिथ्या, ओं होड़ महोड़

ओं बकवास, ओं उद्घाटन

ओं मारण, मोहन, उच्चाटन।

निष्कर्ष

नागार्जुन के अलंकार एवं छंद विधान (गीत तथा शैली) पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि "कवि की अलंकार-योजना, अभिप्रेत भावना को वहन करने में पूर्ण सक्षम हैं और इसमें प्रभाविष्णुता उत्पन्न करने की भी यथेष्ट शक्ति है। उपमायें दैनिक जीवन से ली गयी हैं"।[1] इनके अप्रस्तुत विधान में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जीवन के दैनिक उपयोग में आने वाली सुपरिचित वस्तुओं को ही अधिकांशतः बतौर उपमान प्रस्तुत किये गये हैं। काव्य में छायावादी ढ़ंग का अप्रस्तुत विधान भी दिखायी देता है। अधिकांशतः अप्रस्तुतों का चयन प्रकृति, समाज और पुराणों से किया गया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

घिसे हुए पीतल-सी पांडुर
पूस मास की धूप सुहावन

इसमें नित्य की देखी-भाली वस्तुओं से उपमा देने के कारण अपनत्व की भावना की व्यंजना अधिक है। नागार्जुन कविता में शब्दों पर अधिक ध्यान देना चाहते थे। उनका विचार था कि काव्य-कला आज भावों के दलदल में दबी हुई है। इसी कारण उन्होंने शब्दालंकारों का अधिक प्रयोग किया है।

नागार्जुन ने अपने कवि-जीवन का प्रारम्भ परम्परागत छन्दों से किया है और बाद में सामयिक सन्दर्भों से जुड़कर नवीन छांदसिकता को स्वीकार कर लिया है। इनकी अधिकांश रचनायें शैली की दृष्टि से व्यंग-प्रधान हैं। नागार्जुन काव्य-लेखन में व्यंग्यात्मक शैली पूरे हिन्दी साहित्य में अकेली है। उनके कहने का लहजा, ढ़ंग, वाक्यों

---

१. डॉ० हरिनारायण मिश्र : नागार्जुन की कविता ('अवन्तिका' पत्रिका, सितम्बर-अक्टूबर, १९५६)

का ऊबड-खाबड़पन आदि उनका अपना है। कवि की शैली में एक प्रकार का चमत्कार मिलता है, जो पाठक को अपनी ओर तुरन्त खींच लेता है।

निःसंदेह नागार्जुन की शैली प्रवाहपूर्ण है। सर्वत्र ही उसमें स्थिति के अनुसार लचक दिखाई देती है। देशप्रेम या राष्ट्ररक्षा की भावना से युक्त कविताओं में ओज देखा जा सकता है। बुराइयों का खण्डन करते समय उसमें पैनापन आ गया है। इसी प्रकार श्रृंगार और प्रकृति-चित्रण से युक्त कोमल भावों को व्यक्त करते समय नागार्जुन की शैली शान्त, गम्भीर और तत्सम्बन्धी भावों को वहन करने में योग्य सिद्ध हुई हैं।
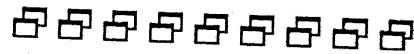
सप्तम अध्याय

उपसंहार

नागार्जुन के काव्य में शिल्पगत उपलब्धियाँ एवं सीमाएं

नागार्जुन हिन्दी और मैथिली के सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं। प्रगतिवादी कवि के रूप में उनका योगदान हिन्दी काव्य के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वे हिन्दी कविता के प्रमुख व्यंग्यकार हैं। व्यंग्य की विभिन्न शैलियों को अपनाकर उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक, भ्रष्ट नेताओं आदि पर करारा व्यंग्य किया है।

नागार्जुन में वस्तुतः प्रगतिशील और क्रान्तिकारी सत्याग्रह है, प्रत्यक्षता है, अभिधेयता है; बनाव या बुनावट रहित, हकीकत से सीधी मुलाकात है और चूँकि इस सामाजिक यथार्थ में सच्चाई है, बहुजनहित उसमें छिपा हुआ है, सम्पन्नों की सभ्यता और उनको सहलाने वाले बनाव : श्रृंगार, व्यक्तिग्रस्तता और हावभाव या कला का तिरस्कार है, वर्ग शत्रु के प्रति प्रतिशोध और तिलमिलाऊ तमाचा है। नागार्जुन जनकवि हैं बल्कि स्वयं जन ही हैं। उन्हें देखकर जन का बोध होता है। वह साधनहीन, सुखहीन, पदहीन, जन साधारण के रूप के वाहक हैं और ऐसा व्यक्ति स्वयं अपनी प्रतिष्ठा, ख्याति या कुछ साधन जुट जाने, इनाम-इकराम पा लेने से संतुष्ट नहीं होता क्योंकि जनदुःख, जन विक्षोभ को कविता में बुनने वाला रचनाकार या आंदोलक उस सिद्ध परम्परा से परिचित है जो प्रतिष्ठा को सत्य कथन में बाधक मानते थे।

रचना प्रक्रिया में कवि के व्यक्तित्व का सर्वाधिक मूल्य है, क्योंकि कवि व्यक्तित्व के अनुसार ही किसी रचना का स्वरूप निर्धारण होता है। साहित्यकार के इस व्यक्तित्व का महत्व आंकते हुए नामवर सिंह ने लिखा है – "साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रकट होती है, वह लेखक के व्यक्तित्व के ही माध्यम से आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की, लेखक के व्यक्तित्व का बहुत महत्व है और इस महत्व की महत्ता इस बात में है कि एक ओर इसका सम्बन्ध समाज से होता है, तो दूसरी ओर साहित्य से। साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इसमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है – समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[1]

नागार्जुन अपने जीवन और कृतित्व के सम्बन्ध में बेहद ईमानदार थे। वे जिस विचारधारा को उचित मानते थे, उसे केवल शाब्दिक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रखते थे, अपितु जहाँ तक सम्भव होता था, उसे अपने जीवन का मूल मंत्र मानते थे और उसी के आलोक में उन्होंने अपने साहित्य का ताना बाना बुना। उन्हें बचपन से ही आर्थिक आभावों के बीच रहना पड़ा, इसलिए उनके व्यक्तित्व में क्षोभ, आक्रोश, और विरोध का भाव प्रचुर मात्रा में समा गया। परिस्थिति और स्वभाव वश वे निरन्तर भ्रमणशील रहे, जिसके कारण उनका पारिवारिक जीवन सुव्यवस्थित ढ़ंग से नहीं चल सका। उनकी यायावरी वृत्ति के कारण, उनके परिवार को उनका सानिघ्य बहुत कम मिल पाया। वे महीनों घर से बाहर रहते थे और जब गाँव वापस आते थे, तो मेहमान की तरह दो-चार दिन के लिए। गाँव वालों का तो मानना था कि "नागार्जुन जैसे गृहस्थ से सन्यासी अधिक अच्छा है।"[२]

नागार्जुन परिवार के साथ भले ही सम्यक् न्याय न कर सके हों, किन्तु साहित्य के साथ उन्होंने कभी अन्याय नहीं होने दिया। वे एक पूर्ण कालिक साहित्यकार थे और साहित्य की विभिन्न विधाओं पर उन्होने अपनी लेखनी का उपयोग किया है। कवि और कथाकार-दोनों ही रूपों में उन्होने प्रचुर साहित्य सृजन करके अपने समर्थ व्यक्तित्व का परिचय दिया है। एक साहित्यकार के रूप में उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे प्रारभ्भ से लेकर अन्त तक प्रगतिशील आन्दोलन की मूल चेतना के साथ सम्पृक्त रहे और मार्क्सवादी विचार धारा के प्रति अपना पूर्ण समर्थन बनाए रखा। इस विचारधारा का समर्थन केवल रचनाओं के माध्यम से करके उन्हें तृप्ति नहीं मिली। वे लगातार जन आंदोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करते रहे और जरूरत पड़ने पर जेल जाने से भी नहीं घबराए। सर्वहारा के प्रति सच्ची सहानुभूति और पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध घृणा एवं आक्रोश का भाव नागार्जुन के जीवन और साहित्य की अन्यतम विशेषता है।

---

१. इतिहास और आलोचना : नामवर सिंह, पृ०सं० ४६

२. नागार्जुन : जीवन और साहित्य - डॉ० प्रकाश चन्द्र भट्ट, पृ०सं० २७

नागार्जुन का जीवन अभावों से टकराते हुए व्यतीत हुआ। फलस्वरूप निम्नवर्गीय पात्रों का चित्रण करते हुए उनके प्रति व्यक्त कवि की सहानुभूति बड़ी सहज और स्वाभाविक प्रतीत होती है। इसी को देख यह कहा जा सकता है कि उन्होंने साहित्य में जीवन की व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। जनता के जीवन से अलग हटकर नागार्जुन का साहित्य कभी नहीं रहा। सभी स्थितियों में वह अपने देश की जनता के साथ रहा है। इस देश की जनता के स्वर में स्वर मिलाकर उसे प्रेरणा देते हुए वह चला है। इसके साथ ही यह विशेषता उल्लेखनीय है कि नागार्जुन के काव्य में निराशा, कुंठा और पस्तहिम्मती नहीं वरन् इनके स्थान पर जीवन के प्रति आस्था, आशा और श्रमरत रहने का संकल्प व्यक्त हुआ है। आस्था और दृढ़ता के स्वर नागार्जुन के काव्य में यत्र-तत्र सर्वत्र मिलते हैं। जीवन के प्रति इसी आशावादी दृष्टिकोण से नागार्जुन का सम्पूर्ण काव्य ओतप्रोत है। प्रकृति और प्रणयपरक कविताओं में कवि का लक्ष्य उनसे जीवन को सँवारना रहा है।

सतत ही अशिव शक्तियों का संहार कर मानव कल्याण की कामना नागार्जुन काव्य में ध्वनित होती दीखती है। इन सबके साथ नागार्जुन का कवि देशप्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत है। देश की सीमा पर बढ़ आये साम्राज्यवादी दैत्यों को कुचल कर रख देने के लिये वह कृत संकल्प है। इस रूप में वह सबसे पहले अपने को भारतमाता का पुत्र मानकर मातृभूमि के कण-कण की रक्षा करने के लिए सन्नद्ध दिखाई देता है। सीमाओं की रक्षा के साथ ही कवि का ध्यान देश की आन्तरिक शांति, जनहित और निर्माण कार्यों की ओर भी गया है और उसने इन्हें भी उतना ही महत्व दिया है जितना देश-रक्षा को।

नवयुवकों के प्रति कवि का दृष्टिकोण बड़ा उदार दिखाई देता है, देश में नवयुवकों पर होते आ रहे शासकीय दमन से कवि क्षुब्ध है। उसका विचार है कि हम अहिंसा नारा सारे संसार में बुलन्द करते हैं, विएतनाम पर अमेरिकी बमबारी की निंदा

करते हैं, पर देश के भीतर जो हिंसा हो रही है उसका क्या हो? अफ्रेशियाई लेखक सम्मेलन (दिल्ली) में हिन्दी प्रतिनिधियों के नेतापद से बोलते हुए अपने इन्हीं विचारों को नागार्जुन ने व्यक्त किया। सम्मेलन-विवरण सम्बन्धी अपने लेख में श्री राजकुमार कुम्भज ने लिखा है : "दूसरे दिन जब भारतीय लेखकों की बैठक विज्ञान भवन के प्रमुख हॉल में हो रही थी, तब हिन्दी प्रतिनिधियों के नेता नागार्जुन ने कहा कि मंगोलिया, अफ्रीका और विएतनाम में होने वाली हिंसा के खिलाफ तो हम नारे लगा सकते हैं, उसके विरोध में तो हम प्रस्ताव स्वीकृत कर सकते हैं, लेकिन अपने देश की सरकार के द्वारा जो हिंसा की जा रही है, क्या वह हिंसा नहीं है? सरकारी हिंसा के प्रति हम चुप क्यों हैं? भारतीय शासन की गोली से आज सैकड़ों युवक मारे जा रहे हैं, उसके लिये भी तो हमें सोचना चाहिए।" श्री कुम्भज ने आगे लिखा है : "यह सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। समूचे सम्मेलन में केवल नागार्जुन ने ही इतनी महत्वपूर्ण बात को जोरदार शब्दों में रखने की कोशिश की।"[1] इन पंक्तियों से साफ पता चलता है कि नागार्जुन विद्रोही है। अनीतियों-विडम्बनाओं के भंजन करने में वह चूकते नहीं हैं।

नागार्जुन ने अपने साहित्य द्वारा जीवन की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया है। जीवन की पीड़ा और जन-चेतना की यह अभिव्यक्ति नागार्जुन में उसी प्रकार मुखरित हुई है जिस प्रकार निराला में। इसलिये यह कहा जा सकता है कि नागार्जुन निराला की परम्परा के समर्थ प्रतिनिधि कवि हैं।

जन-जागरुकता और सम-सामयिकता के बोध का उद्घोष नागार्जुन की कविता में भरपूर है। देश-विदेश की ऐसी कोई भी महत्वपूर्ण घटना नहीं छूटी होगी, जिस पर नागार्जुन की लेखनी न चली हो, और इन सबके साथ उनका दृष्टिकोण आशावादी और स्वस्थ रहा है। कवि युवक शक्ति का रचनात्मक कार्यों में उपयोग करना चाहता

---

१. *अफ्रेशियाई लेखक सम्मेलन : राजकुमार कुम्भज, नई दुनिया (दैनिक, ४ जनवरी, १६७१)*

है। विध्वंस की ओर नहीं अपनी क्रांति को सृजन की ओर उन्होंने उन्मुख किया है। भ्रष्टाचार, अव्यवस्थाओं, रूढ़ियों, शोषण और दूषित राजनीति का सफाया कर नागार्जुन का कवि सच्चे नेताओं के द्वारा सेवित प्रगतिशील और निर्माण कार्यों में व्यस्त भारत की तस्वीर बनाने में उत्सुक दिखाई देता है। वह आडम्बर का सख्त विरोधी है। जब तक नेता आडम्बरी रहेंगे, देश-सेवा का स्वप्न साकार न हो सकेगा।

इसके साथ ही नागार्जुन ने कविता को जन-सामान्य के बीच लाने का शुभ प्रयास किया है। उनका विचार है कि कविता जन-जन का कंठहार बने, और इसीलिये जनगीतों की शैली एवं प्रचलित ग्रामीण शब्दों एवं लोकोक्तियों को उन्होंने अपनाया है। लोकगीतों की शैली में रची उनकी अनेक कविताएँ बड़ी लोकप्रिय हुई हैं। इस दृष्टि से नागार्जुन का प्रयत्न सचमुच ही स्तुत्य है। कवि को इस दृष्टि से सफलता मिलने का एक कारण यह भी रहा है कि उसने समाज के निम्नस्तरीय पात्रों पर दृष्टि रखी है, उनकी वेदनाएँ, समस्याएँ चित्रित करने का प्रयास किया है। इस प्रकार समाज की पीड़ा को समाज में प्रचलित बोलचाल की भाषा में व्यक्त करने के अद्वितीय प्रयास की दृष्टि से नागार्जुन का काव्य एक महान उपलब्धि है।

नागार्जुन-काव्य में सांस्कृतिक शब्दों से युक्त तथा कहीं समासगर्भित शैली के भी दर्शन हमें होते हैं। कहीं उन्होंने शास्त्रीय बिम्ब और प्रतीक योजना का भी सफल निर्वाह किया है। इस प्रकार ठेठ बोलचाल के शब्द, अन्य भाषाओं के शब्द, संस्कृतनिष्ठ शब्द, अलंकार, प्रतीक एवं बिम्बात्मक सौन्दर्य से भी उनकी कविता सजी हुई है।

नागार्जुन ने मैथिली साहित्य और बाल-साहित्य भी रचा है। मैथिली उपन्यासों- 'पारो', 'नवतुरिया' और 'बलचनमा' में आंचलिकता के प्रस्फुटन के साथ मिथिला की रूढ़ सामाजिक परम्पराओं का परिचय भी मिलता है। मिथिला के रूढ़िभंजक मोर्चे को नागार्जुन ने उस समय सम्हाला जब पीड़ित जनों का एक पूरा वर्ग इन गलित परम्पराओं का समर्थन कर रहा था और इस प्रकार नागार्जुन ने बड़े साहस का परिचय

दिया है।

नागार्जुन ने प्रचुर मात्रा में बाल-साहित्य भी रचा है। इसके अन्तर्गत उनके द्वारा बालकों के लिए लिखी कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में मनोरंजन के साथ ही बच्चों को कहीं कविता लिखने की, कहीं आदर्श बालक बनने की प्रेरणाएँ मिलती हैं।

'एक व्यक्ति : एक युग' के द्वारा नागार्जुन ने महाप्राण निराला के जीवन और साहित्य पर संक्षिप्त रूप से कुछ लिखते हुए महान साहित्यकार के प्रति नेताओं की उपेक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। लेखक ने साहित्यिक क्षेत्रों में व्याप्त किंचित बुराइयों की ओर संकेत करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इससे साहित्य और साहित्यकार पनप नहीं सकेगा।

इनके उपन्यासों में हमने देखा है कि नागार्जुन प्रेमचन्द्र की ग्रामीण सांस्कृतिक परम्परा को अपना कर चले हैं लगता है, मानों प्रेमचन्द्र ने ही अपना प्रतिनिधित्व इन्हें सौंप दिया है। नागार्जुन के उपन्यासों में पात्रों द्वारा अभावग्रस्त जीवन को भोग कर, इसका बोध होने में, स्वाभाविकता वृद्धि में सहायक हुआ है। डॉ० शान्ति भारद्वाज के अनुसार, सजह जीवन के चितेरे नागार्जुन जीवन की अभिव्यक्ति में जितने सहज हैं, कलाकार के सामाजिक दायित्व के प्रति भी उतने ही सजग, उतने ही प्रगतिशील। उनकी रचनाओं में मार्क्सवाद की मान्यताएँ खोजी जा सकती हैं, लेकिन यह प्रभाव चेतना पर है, शिल्प पर नहीं। इसीलिये नागार्जुन के उपन्यास सही अर्थों में भारतीय जीवन के चित्र हैं।"[1] भारत की इसी पीड़ित जनता के जीवन को सुधारने के लिये उन्होंने मजदूरों-किसानों को संगठित कर संघर्षरत रहने और अपने अधिकारों के लिये पीछे न हटने की प्रेरणा दी है।

---

१. डॉ० शांति भारद्वाज : हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन, पृ० २३३

नागार्जुन आधुनिक हिन्दी कविता के बेजोड़ व्यंग्यकार हैं। व्यंग्य कविता को उन्होंने 'चना जोर गरम' से 'मंत्र' कविता तक विभिन्न शैलियों द्वारा पुष्ट बनाया है। व्यंग्य की विविध शैलियाँ हम नागार्जुन की कविताओं में पाते हैं छंद-वैविध्य की दृष्टि से भी नागार्जुन की कविताएँ महत्व रखती हैं। इन्हीं कारणों से हिन्दी कविता में नागार्जुन का विशिष्ट स्थान है।

कविता में शिल्प का विशेष महत्व होता है। कवि कविता में शब्दों के रख-रखाव, सजावट तथा वाक्य-निर्माण द्वारा जो कारीगरी करता है वही शिल्प होता है। शिल्प का सम्बन्ध पूरी तरह से कला से है। भाव, अनुभूति, संवेदना, विचार आदि का शिल्पन कर कवि कविता का श्रृंगार करता है। काव्य को कला और शिल्प की कसौटी पर परख कर उसकी श्रेष्ठता की जाँच की जाती है। शिल्प के माध्यम से कवि अपनी अभिव्यक्ति को प्रखर बनाता है और कविता को एक रूप देता है।

शिल्प-विधा द्वारा ही रचनाकार आत्म-अनुभूतियों की प्रखर अभिव्यक्ति करता है। यह गद्यात्मक या पद्यात्मक किसी भी रूप में हो सकती है, किन्तु शिल्प को प्रधानता देने पर दूसरी ओर काव्य को खतरा बढ़ने लगता है। नागार्जुन जैसा प्रगतिशील चेता इस तथ्य से बखूबी अवगत रहा है। इसी कारण शिल्प की प्रधानता इनकी कविताओं की विशेषता नहीं रही। अपने काव्य-विषय के अनुसार उन्हें शिल्प की तलाश रही। कवि का काव्य-संसार सामान्य जन रहा है, इसी कारण शिल्प भी उनका ही रहा है। कहीं पर छन्दबद्धता का रूप आया है तो कहीं कवितायें छन्दमुक्त हो गयी हैं। गेय पदों के साथ अगेयता, बोलियों एवं ग्राम्य भाषाओं के साथ संस्कृतनिष्ठ भाषा, नाटक, नौटंकी, लोकगीतों एवं लोक धुनों के साथ परिष्कृत छन्दबद्ध संस्कृत के श्लोक तुकान्त, अनुकान्त, दोहा, कुण्डलियों जैसी प्राचीन भारतीय वर्णन प्रणाली आदि का भरपूर प्रयोग इनकी कविताओं में हुआ है। शिल्प के स्तर पर नागार्जुन नयी कविता और साठोत्तरी कविता के रचनाकारों से अलग, विशिष्ट पहिचान इसी कारण बना सके।

रूप के स्तर पर नागार्जुन अनेक प्रयोग करते हैं एवं विषय प्रस्तुतिकरण के समय ब्यौरेवार सभी शिल्पों को अपनाते हैं। इस प्रयोग-शीलता को मद्देनजर रखते हुए डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं - "प्रयोग-वादियों ने प्रयोग का नारा दिया था, वस्तुतः अकेले नागार्जुन ने कविता के रूप विधानों में जितना प्रयोग किया है, सारे प्रयोगवादी मिलकर भी उसका दशमांश दिखाने में असमर्थ साबित हुए हैं।"

प्रगतिवादी कवियों का मुख्य लक्ष्य जन-चेतना को जाग्रत करना या उसे प्रतिबिम्बित करना रहा है। अल्प-शिक्षित जनता को प्रेरित करने के लिये उसके स्तर तक पहुँच कर कविता लिखने के कारण शब्दों की सजावट पर इनका ध्यान कम गया है।इस ओर विशेष सतर्क न रहने के कारण शिल्प-विधान की दृष्टि से जहाँ कहीं उनकी असावधानी भी प्रकट हुई है वहीं वे अपने ध्येय 'अशिक्षित श्रमिक जनता' को अपील करने में सफल भी रहे हैं।

नागार्जुन शिल्पवादी कवि नहीं हैं, किन्तु उनका शिल्प-विधान ठोस है। उनकी हिन्दी कविताओं में शिल्प-विधान की दृष्टि से अनेक कविताएँ उल्लेखनीय हैं - 'जनवंदना', 'पाषाणी', 'बादल को घिरते देखा' आदि और सद्यः प्रकाशित खण्डकाव्य 'भस्मांकुर' ने तो इस कवि के शिल्प-सौष्ठव का बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

नागार्जुन की कविताओं में रूपप्रकारिता कोई अलग वस्तु नहीं है। शिल्प और छन्द के प्रति नागार्जुन का कवि सजग रहा है पर आग्रही नहीं।

नागर्जुन की रचना में वैविध्य है पर उनके शिल्प-जगत में व्यंग्य का शिल्प भी है। इस शिल्प के अन्तर्गत नागार्जुन की भाषा का स्वरूप निरंतर बदलता रहा है। "नागार्जुन व्यंग्य से विद्रूपता की ओर चले आये। अपने जीवन संग्राम की व्याख्या में नागार्जुन ने इसी प्रमुख कलात्मक-प्राविधि को अपनाया।" [1] भाषा के विविध स्तर

---

१. रमेश कुन्तल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है, पृ० ४२६

नागार्जुन कविता को साँचे की कविता नहीं बनाते। यह उनकी कविता का एक जीवंत पक्ष है। पर इसी के संदर्भ में उनकी कविता पर कई तरह के आरोप भी लगाये जाते हैं। और उसे रूप की दृष्टि से कमजोर कविता भी कहा गया है, विशेषतया राजनीति-केन्द्रित कविताओं में। वस्तुतः इन आरोपों की वास्तविकता तब निराधार साबित हो जाती है जब हम नागार्जुन की कविता को वाचिक परंपरा और संवाद की परम्परा के संदर्भ में देखते हैं। भाषा के कोमल और खुरदरे होने का संबंध अगर उसकी अर्थवत्ता से है तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि नागार्जुन की कविता इस दृष्टि से श्रेष्ठ कविता है। अर्थ के अनुरूप भाषा को साधना नागार्जुन ही जानते हैं। इसलिये नागार्जुन की कविता की वस्तु-विविधता उनकी कविता की रूप-विविधता भी बन गयी है।

नागर्जुन की कविता जहाँ बातचीत और संवाद के रूप में हैं, वहाँ उसकी भाषा बोलचाल की भाषा है। बोलचाल की मुहावरेदानी, शब्दों - वाक्यों की लयात्मकता, स्वरों के आरोह-अवरोह ऐसी कविता के अर्थ का प्राण हो गये हैं। इसलिये इसे भाषा और रूप के प्रति असावधानी न मानकर सतर्कता भी माना जा सकता है, पर नागार्जुन सतर्कता के बजाय सहजता की रक्षा करते हैं, उसकी चिंता करते हैं। यह सहजता सपाटता की पर्यायवाची नहीं, यह सहजीवन की सहजता भी है। इसलिये यह विकास की सहज प्रक्रिया भी है। नागार्जुन की भाषा में सहजता का एक कारण उनकी वर्गीय बनावट भी है। प्रायः नागार्जुन जनसामान्य के बीच रहते हुये कविता करते हैं। इसलिये भाषा का वह रूप जिसे जनसामान्य ही परिमार्जित करता है, इस कविता का है। हिन्दी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है। [1] इस भाषा की कविताओं की व्यंजना व्यंग्य का ही मूल रूप है।

---

१. रामविलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद , पृ० १४०

नागार्जुन की काव्य भाषा और काव्य रूप के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसका एक स्वर व्यंग्यपरक है। हाँ, 'पानी में आग लगाओ, नदियाँ बदला ले ही लेंगी' आदि। कई बार यह व्यंग्य जब छंदों में ढ़ल कर आता है और टेक की तरह एक ही पंक्ति की आवृत्ति करता है तब उसका सौंदर्य वस्तु की प्रेषणीयता के साथ लयात्मक हो जाता है। इस व्यंग्य की परख वहाँ होती है, जहाँ कवि राजनीतिक और सामाजिक अंतःवस्तु के सत्य को प्रकट करता है। इसे पत्रकारिता या भाषण-बाजी कहकर काव्य की उपस्थिति से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके मूल में एक तरफा बयान नहीं संवाद और जवाब-सवाल का मिला-जुला आस्वाद है।

कवि की निश्छल मानवीय संवेदना अनुभूतिपरक कविताओं में व्यक्त हुई हैं, जहाँ व्यंग्य नहीं, भाषा का लालित्य और संगीत है। नागार्जुन ऐसे अवसरों पर मिथकीय प्रयोग भी करते हैं, प्रकृति के संभार को भी समेटते हैं। ऐसी कविताएँ पुराने छंदों का नया अविष्कार भी हैं और मुक्तछंद का भी। बादल को घिरते देखा है, सिंदूर तिलकित भाल, वह दंतुरित मुस्कान जैसी बहुत-सी कविताएँ नागार्जुन की इसी अनुभूति का विस्तार है। इतना ही नहीं, नागार्जुन एक ही कविता में छंदबद्धता और मुक्तछंद या मुक्तछंद की कई-कई लयों का प्रयोग करते हैं। 'पुरानी जूतियों का कोरस' इस दृष्टि से एक अच्छी कविता है। नागार्जुन की छंदबद्ध कविताओं में क्लासिकल छंदों के साथ लोक-धुनों की लय भी मिलती है। संस्कृत, पालि-प्राकृत, बंगला, मैथिली, हिन्दी की जीवंत कविता के जानकार और पारखी नागार्जुन की कविता में प्राचीन छंदों के साथ खिलवाड़ भी नये छंदों की रचना करता है। वे पुराने छंद-रूपों में नयी वस्तु को ढ़ालने की कला में निपुण हैं। अन्नपचीसी के दोहे इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कवित्त, सवैया, कुंडलियाँ, बरवै आदि छंद नागार्जुन की कविता में मिल जाते हैं। बरवै तो उनका घरू और दुलरूवा छंद है। नागार्जुन के यहाँ गीतिशैली की कविताएँ कम नहीं हैं। ये गीत नुक्कड़ और जनगीत शैली के हैं तो गम्भीर स्वभाव के भी। 'नागार्जुन के काव्य-संसार

के प्रगीतनायक का निष्कवच-फक्कड़ व्यक्तित्व उनके प्रगीतों को विशिष्ट रंग तो देता ही है, निश्चित सामाजिक अर्थ भी ध्वनित करता है।"[1] प्रकृति के गीत नागार्जुन के यहाँ संगीत की लय पर चलते हैं। विविध भावों को कवि शब्दों की ध्वन्यात्मकता से मूर्त करता है।

नागार्जुन की कविता में बिंबों की उपस्थिति उसे संप्राणता प्रदान करती है। बाद के बिंब, चरित्रों की बिंब रचना उनकी कविता में सहज ही उपलब्ध हैं। नागार्जुन के बिंब उनकी कविता की यथार्थवादी चेतना को और अधिक प्रखर बनाते हैं। कई बार तो कवि इन बिंबों के माध्यम से सामाजिक वर्गगत वास्तविकताओं को व्यक्त करता है। इस बिंब-निर्माण की कला में नागार्जुन मानवेतर सृष्टि को मूर्त और जीवंत बनाते हैं। यहाँ तक कि एक ही व्यक्तित्व में कई-कई बिंबों की कल्पना करते हैं। सिंदूर तिलकित भाल तथा प्रिय व्यक्तियों पर केन्द्रित कविताएं इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यह ध्यातव्य है कि नागार्जुन हर्ष, प्रेम, वात्सल्य, क्रोध आदि भावों को बिंबरूप बनाते हैं। इस प्रकार नागार्जुन अपने बिंबों के मूर्त चित्रों के लिए मिथकीय और लोक-प्रतीकों का बहुतायत में प्रयोग करते हैं। 'अकाल और उसके बाद' परस्पर विरोधी बिंबमूर्तियों का इतने सुगठित रूप में व्यक्त करने वाली बेजोड़ कविता है :

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आंगन के ऊपर कई दिनों के बाद

---

१. *नामवर सिंह : वाद-विवाद-संवाद , पृ० १०६*

चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।[1]

अपनी कविता के शिल्प पक्ष के प्रति नागार्जुन की सजगता शब्दों के प्रति उनकी जिम्मेदारी को व्यक्त करती है। सरलता और प्रवाह्यता, सघनता और सांद्रता नागार्जुन की कविता में सुविचारित रूप से आयी है। उनकी इस जिम्मेदारी का प्रमाण 'माँजो और माँजो' कविता में देखा जा सकता और इसी गवाही पर कहा जा सकता है कि नागार्जुन भाषा और शब्दों के प्रति लापरवाह नहीं हैं। यह अवश्य है कि नागार्जुन उस भाषा में शक्ति उत्पन्न करते हैं जो जीवन में संघर्ष करते और संघर्षरत समाज के बीच रहते पायी जाती है। इस भाषा की मारक क्षमता ही नागार्जुन की कविता में व्यंग्य हो गयी है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृत, पालि और प्राकृत के शब्दों से उनकी कविता पहरेज करती हो, उर्दू और फारसी के शब्दों की उपेक्षा करती हो, नये शब्दों का निर्माण न करती हो। नागार्जुन के यहाँ अनेक भाषाओं के शब्द खराद पर चढ़े हैं। इसलिये भी कि परम्परागत कसौटी पर नागार्जुन के शिल्प का पूरा मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। वस्तुतः सच्चा प्रगतिशील साहित्य केवल भूत और वर्तमान के लिए ही नहीं, बल्कि भविष्य की सोद्देश्यता से संयुक्त होता है। मनुष्य और जीवन की रचनात्मक क्रीड़ा इसका बुनियादी प्रस्थान होती है।[2]

कविता की जरूरत यदि मनुष्य समाज के लिये अपरिहार्य है तो हिंदी साहित्य के लिए नागार्जुन की कविता अपरिहार्य है। बीसवीं शताब्दी के विश्व को और मनुष्य की संघर्ष-चेतना तथा सौंदर्य-चेतना को यदि किसी एक ही भारतीय कवि में खोजना चाहें तो वह नाम है, नागार्जुन।

---

१. नागार्जुन : चुनी हुयी रचनाएँ -२, पृ० ८४
२. एम० क्रोप्चेंको : द राइटर्स क्रिएटिव इंडीविजुअल्टी एण्ड द डेवलपमेंट ऑफ लिटरेचर, पृ० २०८

नागार्जुन ने जिस तरह का जीवन जिया है, उससे उनका अनुभव संसार बहुत ही व्यापक और विस्तृत हुआ। जीवन और रचना का संबंध बिंब-प्रतिबिंब जैसा होता है। लेकिन कोई भी रचना उस व्यक्तित्व के बगैर नहीं होती जिसे एक रचनाकार अर्जित करता है। कुछ-कुछ स्वनिर्मित और कुछ-कुछ अर्जित यह व्यक्तित्व ही रचना की रीढ़ होता है। नागार्जुन की घुमक्कड़ी और फक्कड़पन के प्रमाण उनकी रचनाओं में सतह पर भी मिल सकते हैं। विषय, स्थान, घटनाएं, लोग जिस बड़ी तादात में नागार्जुन के साहित्य में मिलते हैं; वे निश्चय ही उल्लेखनीय हैं। लेकिन जाहिर है कि रचनात्मकता या व्यक्ति केवल विषय ऐसा उसके वैध्विध्य से निर्धारित नहीं होती। पुरानी शब्दावली में जिसे निरीक्षण की सूक्ष्मता और दृष्टि की ताजगी वगैरह कहा जाता है, वह नागार्जुन में जगह-जगह मिलती है। उनके जीवन-प्रवाह का एक प्रभाव शायद यह भी हो कि नागार्जुन किसी एक विषय या व्यक्ति से कभी नहीं बंधे। नित्य-नवीन और परिवर्तनशील जीवन, निजी और सामाजिक परिदृश्य ही उनका शाश्वत केन्द्र मालूम होता है। कमोवेश शायद इसी वजह से नागार्जुन किसी एक शैली, रीति, छंद या भंगिमा में आसक्त या आबद्ध नहीं हुए। उनके रचना संसार में न केवल हिन्दी भाषा का अनोखा मूल आस्वाद है बल्कि हिन्दी से जुड़ी तमाम भाषाओं, उपभाषाओं और संस्कृत, बांग्ला आदि अनेक पुरानी और नयी भाषाओं का रस भी मिलता है। चार भाषाओं में जबरदस्त ढ़ंग की रचनाशीलता अपने-आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

चाहें तो इस फक्कड़पन और घुमक्कड़पन में हम उनकी सतत् जागरुक मेधा, हाजिर जबाबी, व्यंग्य-विनोद की पैनी-धार इत्यादि का स्फुरण देख सकते हैं। नागार्जुन की यह विशेषता बरबस ध्यान खींचती है कि लगातार खुलते रहने पर भी पुराने और नित नये लोगों से उनके हार्दिक संबंध बने रहते हैं या बनते जाते हैं। इस तरह का जीवन कभी-कभी मूल्यहीनता की ओर भी ले जा सकता है। लेकिन नागार्जुन के अपने मानवीय मूल्य आज भी अक्षम्य हैं। अनुभव का यह विस्तार उन्हें हर तरह के

कठमुल्लेपन से मुक्त होने में मदद करता रहा है। बुनियादी मानवीय चिंताओं के विरुद्ध किसी भी चिंतन समुदाय या दल-बदल के साथ वे रह नहीं पाते। अनेक अर्थों में वे राहों के अन्वेषी रहे हैं और आज भी हैं।

बाबा की परम्परा का संकेत ये पंक्तियाँ देती हैं -

काश, / आँखे पीठ की ओर होतीं
काश /पीठ के कान होते
काश / सिर खिसक-खिसककर
कभी-कभी / दिल के नीचे आ लगता।

उपेक्षितों और दौड़ में पीछे रहे लोगों के प्रति उनके मन में जो पीड़ा थी, उसी का जीवंत दस्तावेज है नागार्जुन की कविताएं एवं गद्य साहित्य। आज जब बाबा नहीं हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि वह जिन मूल्यों के लिये जीवन भर जूझते रहे, उनकी रक्षा हो।

नागार्जुन की कविता में सबसे सराहनीय बात जीवन के प्रति उनका स्वस्थ दृष्टिकोण है। अपनी रचनाओं में इन्होंने शाप से अधिक वरदान को, ईर्ष्या से अधिक सद्भावना को, घृणा से अधिक स्नेह को और युद्ध से अधिक शांति को स्थान दिया है। कर्म की शक्ति में उनका अटूट अगाध विश्वास है।
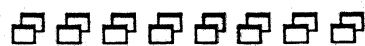
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आलोच्य कवि : नागार्जुन विरचित ग्रन्थ

१. अभिनन्दन - वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, १९७९

२. आज के लोक प्रिय - (सं०डॉ० प्रभाकर माचवे) राजपाल
हिन्दी कवि नागार्जुन एण्ड सन्ज - दिल्ली, पहला संस्करण, १९७७

३. इमरतिया - राजपाल एण्ड सन्ज -दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६८

४. उग्रतारा - राजपाल एण्ड सन्ज -दिल्ली, तीसरा संस्करण, १९७०

५. एक व्यक्ति-एक युग- परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण सितम्बर, १९६३

६. ऐसे भी हम क्या, - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८०
ऐसे भी तुम क्या

७. गीत गोविन्द - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७९

८. जमनिया का बाबा - किताब महल - इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९६८

९. तालाब की मछलियाँ- अनामिका प्रकाशन-पटना, प्रथम संस्करण, १९७५

१०. तीन अछदी - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७९

११. तुमने कहा था - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८०

१२. दुखमोचन - राजकमल चौधरी, नई दिल्ली, नौवां संस्करण, १९७६

१३. नई पौध - किताब महल-इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, १९७७

१४. नागार्जुन रचनावली - यात्री प्रकाशन

१५. पत्रहीन नग्न गाछ - यात्री प्रकाशन-पटना, परिमार्जित संस्करण, १९६९

१६. पारो - सम्भावना प्रकाशन-हापुड़, प्रथम संस्करण, १९७५

१७. पुरानी जूतियों का कोरस - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८३

१८. बलचनमा - किताब महल-इलाहाबाद, पंचम संस्करण, १९७६

१९. बाबा बटेसर नाथ - राजकमल प्रकाशन-दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९७१

२०. भस्मांकुर - राजकमल प्रकाशन-दिल्ली, द्वितीयावृत्ति, १९७२

२१. मर्यादा पुरुषोत्तम - आर्गूस पब्लिशिंग कं०-नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५७

२२. मेघदूत - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७९

२३. रतिनाथ की चाची - किताब महल, इलाहाबाद-तृतीय संस्करण, १९६७

२४. रत्नगर्भ - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८४

२५. रामायण की कथा - अजन्ता प्रेस-पटना, प्रथम संस्करण, १९५१

२६. वरुण के बेटे - राजपाल एण्ड सन्ज-दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९७५

२७. विद्यापति के गीत - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७९

२८. सतरंगे पंखों वाली - यात्री प्रकाशन-कलकत्ता , प्रथम संस्करण, १९५९

२९. सयानी कोयल - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८०

१४. नागार्जुन रचनावली - यात्री प्रकाशन

१५. पत्रहीन नग्न गाछ - यात्री प्रकाशन-पटना, परिमार्जित संस्करण, १९६९

१६. पारो - सम्भावना प्रकाशन-हापुड़, प्रथम संस्करण, १९७५

१७. पुरानी जूतियों का कोरस - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८३

१८. बलचनमा - किताब महल-इलाहाबाद, पंचम संस्करण, १९७६

१९. बाबा बटेसर नाथ - राजकमल प्रकाशन-दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९७१

२०. भस्मांकुर - राजकमल प्रकाशन-दिल्ली, द्वितीयावृत्ति, १९७२

२१. मर्यादा पुरुषोत्तम - आर्गूस पब्लिशिंग कं०-नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५७

२२. मेघदूत - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७९

२३. रतिनाथ की चाची - किताब महल, इलाहाबाद-तृतीय संस्करण, १९६७

२४. रत्नगर्भ - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८४

२५. रामायण की कथा - अजन्ता प्रेस-पटना, प्रथम संस्करण, १९५१

२६. वरुण के बेटे - राजपाल एण्ड सन्ज-दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९७५

२७. विद्यापति के गीत - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७९

२८. सतरंगे पंखों वाली - यात्री प्रकाशन-कलकत्ता , प्रथम संस्करण, १९५९

२९. सयानी कोयल - वाणी प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८०

३०. हजार-हजार बाहों वाली - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति, १९८२

३१. हीरक जयंती - आत्माराम एण्ड संज-दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६२

(ख) सहायक ग्रंथ :-

१. नागार्जुन एक लम्बी जिरह - विष्णु चन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली, दरियागंज, प्रथम संस्करण- २००१

२. नागार्जुन : विचार सेतु - महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन, सिविल लाइन, कसारीडीह-दुर्ग (म०प्र०), प्रथम संस्करण- १९९९

३. जनकवि नागार्जुन - प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

४. नागार्जुन रचनावली - शोभाकान्त, (सात खण्डों का पूरा सेट) राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - प्रथम संस्करण : २००३

५. नागार्जुन की काव्य-यात्रा - डॉ० रतन कुमार पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक-वाराणसी, प्रथम संस्करण :१९९८

६. संत साहित्य में प्रतीक विधान- डॉ० मुहम्मद अहसन, भारत प्रकाशन मंदिर-अलीगढ़, प्रथम संस्करण : १९८३

७. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य-बोध के विविध आयाम - डा० छोटे लाल दीक्षित

८. हिन्दी साहित्य का विकास - डॉ० बहादुर सिंह : विवेक पब्लिशिंग हाउस, धमाणी मार्केट - जयपुर

९. नागार्जुन की कविता में सौन्दर्य बोध का स्वरूप - डॉ० महेश प्रसाद शुक्ल, सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : १९९९

१०. अलंकार पारिजात - नरोत्तम दास स्वामी - लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशन- आगरा-३

११. नागार्जुन का काव्य-एक पड़ताल- श्री भगवान तिवारी, भारत प्रकाशन-लखनऊ, प्रथम संस्करण : २०००

१२. नागार्जुन के उपन्यासों और कविताओं में लोक जीवन का चित्रण और प्रयोग - गंगेश कुमार दीक्षित

१३. नागार्जुन की कविता - अजय तिवारी, प्रथम संस्करण : १९९३, वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली

१४. नागार्जुन - सुरेशचन्द्र त्यागी, आशिर प्रकाशन-सहारनपुर संस्करण : मार्च १९८४

१५. आचार्य शुक्ल : प्रतिनिधि निबन्ध - सं० सुधाकर पाण्डेय, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, छात्र संस्करण : १९७१

१६. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश बाजपेयी, आत्माराम एण्ड संस-दिल्ली, प्रथम संस्करण : १९६३

१७. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास - डॉ० केदार नाथ सिंह, ग्रंथम्-कानपुर, स० भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली- प्रथम संस्करण : १९७१

१८. आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा - डॉ० राम कुमार सिंह, ग्रन्थम, कानपुर संस्करण, नवम्बर, १९६५

१९. आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान - डॉ० नरेन्द्र मोहन नेशनल पब्लिशिंग हाउस-दिल्ली, प्रथम संस्करण : १९७२

२०. आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प - डॉ० ज्ञान चन्द्र गुप्त अभिनव प्रकाशन-दिल्ली, प्रथम संस्करण : १६७५

२१. इतिहास और आलोचना - नामवर सिंह, नया साहित्य प्रकाशन-इलाहाबाद, संस्करण-फरवरी : १६६२

२२. एक साहित्यिक की डायरी - गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन-नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण : १६७६

२३. कला और संस्कृति - सुमित्रानन्दन पंत, किताब महल-इलाहाबाद संस्करण : १६६५

२४. कविता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य - मत्स्येन्द्र शुक्ल, सम्भावना प्रकाशन, सुल्तानपुर-प्रथम संस्करण : १६७५

२५. छायावादोत्तर काव्य - डॉ० सिद्देश्वर प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण : १६६६

२६. छायावादोत्तर काव्य में बिम्ब विधान - डॉ० उमा अष्टवंश, आर्य बुक डिपो-नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : १६७४

२७. छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप - डॉ० सुधा गुप्ता, वाफना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण : १६७२

२८. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की-सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि - डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय, रचना प्रकाशन-इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : १६७२

२६. नई कविता - डॉ० कांति कुमार, म०प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल - प्रथम संस्करण : १६७२

३०. नई कविता और अस्तित्ववाद - डॉ० राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण : १६७८

३१. नई कविता : नए कवि - विश्वम्भर मानव, लोक भारती प्रकाशन-इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण : १६६८

३२. नई कविता, नये धरातल - डॉ० हरिचरण शर्मा, पदम् प्रकाशन-जयपुर, प्रथम संस्करण : १६६६

३३. नये प्रतिनिधि कवि - डॉ० हरिचरण शर्मा, पंचशील प्रकाशन-जयपुर, प्रथम संस्करण : १६७६

३४. नागार्जुन का रचना संसार - डॉ० विजय बहादुर सिंह, संभावना प्रकाशन, हापुण, प्रथम संस्करण : १६८२

३५. नागार्जुन, जीवन और साहित्य- डॉ० प्रकाशचन्द्र भट्ट, सेवा सदन प्रकाशन, रामपुरा, जि० मन्दसौर (म०प्र०) प्रथम संस्करण : १६७४

३६. परिप्रेक्ष्य - डॉ० रणजीत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर संस्करण : अप्रैल, १६६६

३७. प्रगतिवाद - डॉ० शिवकुमार मिश्र, राजकमल प्रकाशन-दिल्ली प्रथम संस्करण : १६६६

३८. प्रगतिवादी काव्य - श्री उमेशचन्द्र मिश्र, ग्रन्थम-कानपुर संस्करण : फरवरी, १६६६

३६. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - डॉ० कृष्णलाल 'हंस' म०प्र० हिन्दी ग्रंथ एकादमी, भोपाल संस्करण : १६७१

४०. प्रगतिशील हिन्दी कविता - डॉ० दुर्गा प्रसाद झाला, अभिनव प्रकाशन, कानपुर संस्करण : फरवरी १६६७

४१. ये सपने ये प्रेत - डॉ० रणजीत, नवयुग ग्रंथ कुटीर-बीकानेर, राजस्थान, प्रथम संस्करण : १६६४

४२. हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम - डॉ० रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन-दिल्ली प्रथम संस्करण : १९७८

४३. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ० रणजीत, हिन्दी साहित्य संसार, प्रगतिशील प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, १९७१

४४. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन - डॉ० ब्रज भूषण सिंह 'आदर्श', रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : १९७०

४५. प्रतीकवाद - पद्मा अग्रवाल

४६. प्रतीक-शास्त्र - परिपूर्णानन्द वर्मा

४७. प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र - राजनारायण

४८. नये प्रतिनिधि कवि - हरिचरण वर्मा

४९. प्रगतिशीलता और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता - डॉ० रणजीत

५०. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि-कवि - डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ
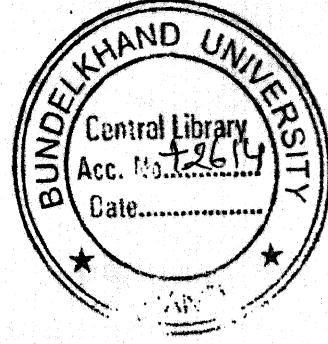
१.	अमृत प्रभात	:	इलाहाबाद
२.	आजकल	:	दिल्ली
३.	कौमी बोली	:	हैदराबाद
४.	जनशक्ति	:	पटना
५.	झंकार	:	प्रयाग
६.	दीपक	:	पंजाब
७.	धर्मयुग	:	बम्बई
८.	नयापथ	:	लखनऊ
९.	नया साहित्य	:	इलाहाबाद
१०.	पहल	:	जबलपुर
११.	विशाल भारत	:	कलकत्ता
१२.	सरस्वती	:	इलाहाबाद
१३.	सामयिक	:	कलकत्ता
१४.	हंस	:	बनारस
१५.	कल के लिये	:	बहराइच